हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली
देव आस्था एवं विश्वास
संकलन, शोध एवं संपादन
डॉ. श्यामा वर्मा
सूनृता गौतम

हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली

देव आस्था एवं विश्वास

हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली

देव आस्था एवं विश्वास

संकलन, शोध एवं संपादन
डॉ. श्यामा वर्मा
सूनृता गौतम

ISBN : 978-81-86755-85-3

प्रकाशक : सचिव
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला, 171001

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : 230 ₹

आवरण : जगदीश हरनोट

टाइप सैटिंग : रविंद्र नाथ

मुद्रक : मीनाक्षी एंटरप्राइज़िज़
11807, पंचशील गार्डन, दिल्ली-110032

A book : Himachali Sanskritik Shabdavalee
DEV ASTHA EVAM VISHVAS
Edited by : Dr. Shyama Verma, Sunrita Gautam
Published by : Secretary
Himachal Academy of Arts, Culture and
Languages, Shimla-171001

First Edition : 2016
Price : Rs. 230/-

आमुख

वीरभद्र सिंह

मुख्यमन्त्री, हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

वेद हमारी संस्कृति के मूल स्रोत हैं। वेदों में देव शब्द सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के रूप में परिलक्षित है। यहाँ देवों की आकृति मनुष्य के समान है। उनके शारीरिक अवयव अनेक स्थलों पर उन प्राकृतिक दृश्यों के रूपात्मक प्रतिनिधि हैं, जिनके वे वस्तुतः प्रतीक हैं। इस प्रकार सूर्य के बाहु उसकी किरणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं और अग्नि की जिह्वा तथा अंग उसकी ज्वाला के द्योतक हैं। देवों का भोजन भी मानवों के समान ही दूध, घी, अन्न आदि बताया गया है। वे आमिषभोजी भी होते हैं। उनका सबसे अधिक प्रिय पेय है सोमरस। इन सबको मनुष्य, यज्ञ के द्वारा देवताओं को प्रस्तुत करता है, जिससे वे पुष्ट होते हैं और मानवों के कल्याणार्थ अनेक कर्मों का संपादन स्वयं करते हैं। वे अपने उपासक के लिए अत्यंत उपकारी हैं और अपने भक्तों का कभी अमंगल नहीं होने देते। इसी पारस्परिक भावना से वैदिक काल से आज तक देवताओं और मुनष्य का अटूट संबंध रहा है। इनकी मान्यता आज भी यथावत् बनी हुई है। अतः आज भी हिमाचल प्रदेश में कई वैदिक देवता और ऋषि पूजे जाते हैं। ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के सत्तानवें सूक्त में क्षेत्रपति नामक एक देवता की स्वतंत्र सत्ता मानी जाती है, जिसकी पूजा क्षेत्रों के सस्यसंपन्न होने के लिए की जाती है। इसे भी लोक में 'थनपाल' नाम से पूजा जाता है।

इन वैदिक देवताओं और ऋषियों के साथ-साथ हिमाचल के विभिन्न भागों में स्थानीय देवता और गृह देवता का भी पूजन होता है। इनकी पूजा अलग-अलग क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से की जाती है। आज के युग में संस्कृति के कुछ क्षेत्रों में थोड़ा-बहुत आधुनिकीकरण तो हुआ है, लेकिन देव संस्कृति पूर्ववत् चली आ रही है। यह परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितना यहाँ का मानव जीवन और समाज। नई तकनीक के ज़माने में पुरानी संस्कृति के खो जाने के भय से हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी ने 'हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक शब्दावली' नाम से एक योजना तैयार की है, जिसके अंतर्गत प्रादेशिक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर पुस्तकें प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। अकादमी ने इस योजना के अधीन वर्ष 2011 में एक पुस्तक 'संस्कार खंड' शीर्षक से प्रकाशित की है। इसी क्रम में वर्तमान में 'देव आस्था एवं विश्वास' पुस्तक प्रकाशित की गई है। आशा है प्रस्तुत शब्दावली सुधी विद्वानों और हिमाचल की संस्कृति पर शोध करने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

प्राक्कथन

डॉ. प्रेम शर्मा

उपाध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।

गीता के दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने हिमालय को अपना स्वरूप कहा है। आदिकाल में यह अनेक ऋषि-मुनियों की तपस्स्थली रही है। इसी के प्रभाव से कालिदास ने अपने महाकाव्य कुमारसम्भवम् में हिमालय को देवात्मा कहा है। देवस्वरूप इसी हिमालय के आंचल में स्थित हिमाचल में अनेक देवी-देवताओं का वास माना जाता है। इन देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना स्थान भेद से अलग-अलग रीति-नीति से की जाती है। ये रीति-नीतियाँ परंपरागत हैं। इनमें भूल-चूक होने पर देवता रुष्ट हो जाते हैं और भक्तजनों को इनके कोप का भाजन बनना पड़ता है, तब देवता ही इसका कारण व निवारण करता है। यहाँ के देवताओं में यह विशिष्टता है कि ये मनुष्य की तरह अपनी प्रजा से बात करते हैं और प्रजा का भी इनके प्रति इतना अपनत्व है कि ये देवता से अपना सुख-दुख बाँटते हैं। इनकी अपने देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा है। इनका विश्वास है कि ये सुख-दुख इन्हें देवता के कारण ही भोगने पड़ते हैं। दुःख की स्थिति में ये देवता के समक्ष जा कर निरीह प्राणी की भाँति रोते हैं, बिलखते हैं और देवता को कष्ट से छुटकारा दिलाने के लिए मजबूर करते हैं।

यहाँ की देव परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितना यहाँ का मानव। यहाँ हर गाँव या ग्राम्य समूह का अपना देवता है। हर देवता का वर्ष में कोई न कोई मेला-उत्सव-त्योहार मनाया जाता है। इसके लिए जो मान्यताएँ, परंपराएँ, वर्जनाएँ निर्धारित हैं, उनका आज भी उसी प्रकार निर्वहन होता है, जिस प्रकार पुराने समय में होता था।

हिमाचल अकादमी द्वारा इस विरासत और संपदा को नई पीढ़ी हेतु सुरक्षित रखने के उद्देश्य से हिमाचल की सांस्कृतिक शब्दावली संबंधी संकलन, शोध एवं संपादन की योजना आरंभ की गई है, जिसका दूसरा खंड 'देव आस्था एवं विश्वास' प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है यह खंड समाज के हर वर्ग के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

पुरोवाक्

शशि ठाकुर हि.प्र.से.

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश

एवं उपसभापति, अकादमी कार्यकारी परिषद्

देव शब्द 'दिव्' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'चमकना'। अतः जो प्रकाशमान है, तेजस्वी है, वह देव है। विश्वपटल पर देवभूमि के नाम से विख्यात हिमाचल प्रदेश के कोने-कोने में देवी-देवताओं का वास है। यहाँ वैदिक देव इंद्र, सूर्य, रुद्र तथा पौराणिक देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा से ले कर प्रकृति और महापुरुषों की भी लौकिक देवताओं के रूप में पूजा होती है। इन देवताओं के अपने-अपने मंदिर हैं और हर मंदिर की अपनी पहचान है। पौराणिक देव मंदिरों में देश के अन्य भागों की तरह देवमूर्तियाँ स्थापित हैं, जिनकी वैदिक रीति से पूजा होती है, जबकि लौकिक देवताओं के मंदिरों में प्रायः कोई मूर्ति स्थापित नहीं होती, बल्कि प्रतीकात्मक रूप में कोई पिंडी या अन्य देव चिह्न स्थापित होता है। इनके स्वर्ण, रजत, कांस्य या अष्टधातु से निर्मित मुखौटे होते हैं, जिन्हें मोहरे कहते हैं। इन्हें रथों में सजा कर मेलों के अवसर पर देव प्रांगण में नचाया जाता है, जब इनमें दिव्य शक्ति का संचरण होता है। प्रजा देवदर्शन कर इनके साथ अपना सुख-दुख साझा करती है। दुख की स्थिति में देवता इन्हें कष्टों से मुक्ति का उपाय बता कर रक्षा का आश्वासन दिलाता है।

मान्यता है कि जितने शक्तिशाली देवता हैं, उतने ही शक्तिशाली असुर भी हैं। असुर की श्रेणी में भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी आदि आते हैं। लोक विश्वास के अनुसार अमावस्या, पूर्णिमा, अर्धरात्रि और दोपहर के समय इनकी शक्तियाँ अधिक प्रभावी होती हैं। सायण ने 'असुर' शब्द की व्युत्पत्ति 'अस्यति क्षिपति सर्वान्' कर इसको प्रबल बताया है अर्थात् जो सबको फेंक देता है, वह असुर कहलाता है। इसी से इनकी शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। जब कभी मनुष्य इनके प्रकोप से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, तब देवता ही उन्हें इनसे बचने का उपाय बताता है। इस प्रकार लोक में यदि समाज की देव पर आस्था है तो यहाँ भूत-प्रेत के अस्तित्व को भी नकारा नहीं जा सकता। ये दोनों समानांतर चलने वाले विश्वास हैं। ऐसे विश्वासों से जुड़ी देव संस्कृति के संरक्षण के लिए हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी ने हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक शब्दावली के अंतर्गत 'आस्था एवं विश्वास' पुस्तक को प्रकाशित करने का निर्णय ले कर एक सराहनीय कार्य किया है। पाठक इस संकलन से निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे।

प्रस्तावना

अशोक हंस

सचिव, हिमाचल अकादमी

हिमालय के सुरम्य आंचल में स्थित हिमाचल प्रदेश की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। समृद्ध सांस्कृतिक संपदा और प्राकृतिक सौंदर्य के कारण यह धरती पर स्वर्ग की परिकल्पना को चरितार्थ करता है। तभी इसे देवभूमि की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इसके हिमाच्छादित पर्वत शिखर, देवदार-चीड़ के घने जंगल, कहीं गर्म जल के कुंड तो कहीं ठंडे पानी के चश्मे जहाँ पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वहीं देवी-देवताओं की विचित्र परंपराएँ उन्हें अचंभित करती हैं। यही परंपराएँ न केवल भारतीयों को बल्कि विदेशियों को भी देव-संस्कृति पर शोध के लिए प्रेरित करती हैं।

हिमाचल की पूर्ण संस्कृति देव संस्कृति पर आधारित है। पहाड़ों का जनजीवन इसी के गिर्द घूमता है। यहाँ के लोग प्रत्येक कार्य देवानुमति से ही करते हैं। कार्य आरंभ करने से ले कर उसके संपन्न होने तक ये कई-कई बार इसकी शरण में जाते हैं। काम न बनता देखकर देवता से 'पूछ' डाली जाती है। यह इसका समाधान बता कर अपनी प्रजा को चिंता मुक्त करता है।

यहाँ का समाज जितना देवता पर आस्था रखता है उतना ही भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी आदि के प्रकोप पर भी विश्वास करता है। इस प्रकार के प्रकोपों से छुटकारा पाने के लिए देवता का ही सहारा लिया जाता है। ऐसे देवकृत्यों में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, वे साधारण शब्द न होकर अपने में व्यापक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ लिए हुए होते हैं। ऐसे शब्द समझने में विस्तृत व्याख्या माँगते हैं, जैसे 'खेल' शब्द का साधारण अर्थ मनोरंजन के लिए किया जाने वाला कार्य है, परंतु 'देव-आस्था' के अंतर्गत इस शब्द के अर्थ में सांस्कृतिक विशिष्टता आ गई है। तब यह गूर द्वारा प्रदर्शित देव खेल है। इसमें गूर कमर से घुटने तक चोले को पहन तथा शेष शरीर नंगा रख, एक हाथ में घंटी और दूसरे हाथ में धड़छ (धूप पात्र) लेकर धीमी गति से मूक अभिनय के साथ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की ओर गंभीर मुद्रा में नाचता हुआ चारों दिशाओं की पूजा करता है। फिर घंटी व धड़छ को कारदार के पास थमा कर बारी-बारी से लोहे, साँकल और कटार के साथ चहुँ ओर नृत्य करता हुआ यह दर्शाता है कि उसने आदिकाल में अपने शत्रुओं को कैसे परास्त किया था। इसी प्रकार किसी धार्मिक आयोजन में जब

भजन-कीर्तन होता है और भेंटें गाई जाती हैं तो जिन लोगों पर भूत या प्रेतात्माओं का साया होता है, वे सिर हिला कर झूमने लगते हैं, इसे भी खेल कहा जाता है। ऐसे सांस्कृतिक शब्दों के संरक्षण के लिए हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा 'हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली' योजना का संचालन किया गया है, जिसके अंतर्गत वर्ष 2011 में 'संस्कार खंड' प्रकाशित किया गया है। इसी शृंखला में अब दूसरा खंड 'देव आस्था एवं विश्वास' तैयार है।

इसके प्रथम भाग में देवी-देवताओं से संबंधित सांस्कृतिक शब्दों की व्याख्या दी गई है तथा दूसरे भाग में भूत-प्रेतों से संबंधित शब्दों को लिया गया है। इस संकलन के लिए प्रदेश के विद्वान् साहित्यकारों से परामर्श लिया गया है और अनेक सर्वेक्षकों ने शब्द भेज कर सहयोग दिया है। सोमसी, हिमभारती, विपाशा, हिमप्रस्थ आदि पत्रिकाओं और हिमाचली संस्कृति से संबंधित पुस्तकों तथा गज़ेटियर्स से भी शब्दों के संदर्भ लिए गए हैं। तदुपरांत अकादमी की अनुसंधान अधिकारी (शब्दकोश) डॉ. श्यामा वर्मा और अनुसंधान अधिकारी (शब्दकोश) श्रीमती सूनृता गौतम ने शोध करके संकलित सामग्री का आलेख तैयार किया, जो संपादित, प्रकाशित रूप में पाठकों के समक्ष है।

अनुसंधायकों और पाठकों को यह बताना उचित है कि किसी भी देश-विदेश और वर्तमान संदर्भ में हिमाचल प्रदेश की विभिन्न बोलियों के पारिभाषिक एवं सांस्कृतिक शब्द व्यापक हैं। अतः इस प्रकाशित पुस्तक में बहुत सारे शब्दों के छूट जाने की संभावना तथा त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। आशा है कि विद्वज्जन इस संबंध में अपनी अमूल्य राय से अकादमी को अवगत करवाएँगे।

यह भी उल्लेखनीय है कि अकादमी द्वारा जहाँ अथक परिश्रम से वर्ष 1989 में 'पहाड़ी-हिंदी शब्दकोश' का प्रकाशन किया गया है, वहीं वर्तमान में 'हिंदी-पहाड़ी पर्यायवाची शब्दकोश' पर भी संकलन, शोध एवं संपादन कार्य जारी है।

श्री वीरभद्र सिंह, माननीय मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष अकादमी ने इस पुस्तक में आमुख शामिल करने की अनुमति प्रदान की है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं। साथ ही हम कृतज्ञ हैं अकादमी के माननीय उपाध्यक्ष डॉ. प्रेम शर्मा तथा श्रीमती शशि ठाकुर, निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग एवं उप सभापति, अकादमी कार्यकारी परिषद् के, जिन्होंने क्रमशः अपना प्राक्कथन और पुरोवाक् प्रकाशित करने की सहमति प्रदान की है।

विश्वास है अनुसंधायकों और पाठकों के लिए यह एक आधार पुस्तक होगी।

अनुक्रम

संकेत चिह्न

दे.	देखिये
' '	वाक्य में आया पहाड़ी शब्द जिसकी यथा स्थान व्याख्या की गई है।
( )	वाक्य में आये पहाड़ी शब्द का हिंदी अर्थ
बोल्ड फेस	वाक्य में आया पहाड़ी शब्द जिसकी व्याख्या नहीं है, इसका वर्णक्रम में इंदराज कर दे. शब्द आया है।
इटैलिक	शब्द व्याख्या की पूर्ति के लिए प्रयुक्त पहाड़ी वाक्य तथा गीत।

देव आस्था

देव आस्था

अजयपाल : एक वीर जिसे मुंडलीख का सैनिक माना जाता है। मुंडलीख जिसे गुग्गा के नाम से भी जाना जाता है, कहते हैं एक बार यह अपनी पत्नी सुरजिला के प्रेम में सब कुछ भूल गया और कहीं चला गया, तब अजयपाल पाँच अन्य वीरों के साथ उसे खोजने निकला और उसे अपने देश वापस लाने में सफल हुआ। उच्चारण भेद से इसे **अर्जीयपाल** और **अजियपाल** भी कहते हैं। इस वीर की लोगों के घरों में ही पूजा होती है। ज़िला कांगड़ा के कोहड़ गाँव में इसका मंदिर है। इस नाम से ज़िला कुल्लू में ग्राम झौकड़ी और नरोगी फाटी पीज में वीर देवता हैं, जो कुल्लू दशहरा में भी आया करते हैं।

अरग : ईश्वर के लिए अर्पण किया गया जल। भारतीय संस्कृति में अर्घ्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि सरिता में स्नान करने के पश्चात् अंजलि से अपने आराध्य को अर्घ्य अर्पित करते थे। वही परंपरा आज भी प्रचलित है। अर्घ्य अर्पित करके भक्त के मन में सुख-शांति और संतुष्टि की अनुभूति होती है। लोग स्नान के बाद कुंभ, कमंडलु, लोटा, ताम्रपात्र आदि में जल ले कर अपने आराध्य को अर्घ्य अर्पित करते हैं। अर्घ्य अर्पित किये जाने वाले जल में गोदुग्ध, दही, अक्षत, गोरोचन, मधु, कुंकुम, कुशाग्र, चंदन, पुष्प आदि का सामवेश किया जाता है। व्रतों के पारायण में भी सूर्य और चंद्रमा को अरग देने की प्रथा है।

अरुहर : दे. रुहर पियाणा।

आँडो : पहाड़ी शैली में निर्मित मंदिर के 'कुरड़' पर लगा पीतल या ताँबे का कलश। इसे देवयज्ञ 'शांत' और 'जागरा' के अवसर पर लोहे की लंबी कील की सहायता से 'कुरड़' पर स्थापित किया जाता है। यह आँडो दोषी व्यक्ति से दंड के रूप में लिया जाता है। दे. कौलश।

आगल़ : सं. अर्गला। देवता को कंधे पर उठाने और नचाने के लिए रथ के बीच से गुज़ारी गई लकड़ी की छड़ें। दे. ज़माण।

आच्छण : दक्षिणा। गाँव में आए देवता को प्रत्येक परिवार द्वारा दिया गया अन्न आच्छण कहलाता है। इसकी कोई निर्धारित मात्रा नहीं होती। लोग अपनी सामर्थ्य एवं श्रद्धानुसार इसे टोकरे और शूर्प में भर कर देते हैं। दे. देऊफेरा।

आपना : अल्पना। गेहूँ के आटे अथवा गोलू मिट्टी से बनाये गये गोलाकार निशान जो देवी-देवता की यात्रा पर जा रही स्त्रियाँ मार्ग में पत्थर आदि पर बनाती हैं।

आरती : वह पात्र, जिसमें कपूर या दीपक रखा जाता है, उसे आरती कहते हैं। दीपक युक्त इस पात्र को हाथ में लेकर देवी-देवता की मूर्ति के समाने घुमाते हुए पूजन-अभिनंदन में जो स्तोत्र पढ़ा जाता है, उसे भी आरती कहते हैं। आरती हमारी पूजा पद्धति का प्रमुख अंग है। देवालयों, मंदिरों और घरों में प्रतिदिन प्रातः व सायंकाल में आरती करने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। देवी-देवताओं की आरती मुख्यतः घी का दीप जलाकर की जाती है। सामूहिक आरती में स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बच्चे, युवक-युवतियाँ सभी शंख-घंटी आदि विविध वाद्यों की ध्वनि के साथ आरती करते हैं। आरती हो जाने के पश्चात् श्रद्धालुजन आरती की लौ के ऊपर दोनों हाथों से नमन कर अपने-अपने मस्तक व मुखमंडल पर अत्यधिक श्रद्धाभक्ति के साथ लगाते हैं तथा आरती के पात्र में रुपए-पैसे भी डालते हैं। यह राशि पुजारी पूजा-अर्चना के कार्य में लागते हैं।

इंदुम छोरतेन : भोट परंपरा के अनुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। राजगिरि नामक स्थान में भगवान बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त द्वारा संघभेद पैदा किये जाने पर भगवान बुद्ध ने संघ का पुनर्नियोजन किया था, यह स्तूप उसी का प्रतीक माना जाता है।

इकतारा : एक लोकवाद्य। यह कांगड़ा, बिलासपुर, शिमला, ऊना, हमीरपुर, चंबा तथा लाहौल स्पिति आदि क्षेत्रों में प्रचलित है। ऊना में इसे 'तुंबा' तथा चंबा में **किंजरी** कहते हैं। इकतारा वास्तव में प्राचीन भारत में प्रचलित 'पिनारू' नामक वाद्य था, जिसमें केवल एक तार होता था, जिसे अंगुलि से छेड़कर बजाते थे। इसकी लंबाई लगभग 108 इंच होती है। एक सिरे से 8 इंच की दूरी पर लगभग 3 इंच व्यास का कद्दू का खोल लगा होता है। कद्दू के ऊपर भेड़ की खाल को मढ़ा होता है। इस चपटे हिस्से को 'तबली' कहते हैं। कद्दू वाले खोल को तुंबा कहते हैं। तबली पर एक पुल होता है, जिस पर से होते हुए तुंबे के किनारे से भेड़ की खाल से निर्मित तार को डांड के दूसरे सिरे तक ले जाकर खूँटी से बाँधा जाता है। लोकगायक इकतारे से आधार स्वर प्राप्त करने के लिए खूँटी से पकड़ कर तार को अपने गले के गुणधर्म के अनुसार कसते हैं। बाएँ हाथ के अंगुष्ठ, कनिष्ठिका और मध्यमा से इकतारे को पकड़ कर तर्जनी से आघात कर के ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इसके निरंतर छेड़ने से लोक गायकों को आधार स्वर मिलता है, जिसकी सहायता से उनका गायन चलता है।

उआरना : ऐसा बकरा या मेढ़ा जिसे देवयात्रा आदि से लौटने पर देवरथ के ऊपर

से फेंका जाता है और दूसरी ओर गिरते ही काट दिया जाता है, को उआरना कहते हैं। मान्यता है कि यात्रा से लौटते समय देवता के साथ कई प्रेतात्माएँ आती हैं, अतः उन्हें बलि देते ही वे उस पर झपट पड़ती हैं। इस तरह उन्हें मंदिर में प्रवेश करने से रोका जाता है और देवता अपने मंदिर में सुरक्षित प्रवेश करता है।

उच्छव : उत्सव। देवता संबंधी उत्सव, मेले, त्योहार आदि जो देवता की उपस्थिति में मनाए जाते हैं, को उच्छव कहते हैं।

उछुङ् : गोन्पा के सभी वरिष्ठ लामा उछुङ् कहलाते हैं। इनका प्रमुख कार्य मठ में की जाने वाली पूजा एवं अनुष्ठानों का संचालन करना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विहार का लामा भी उछुङ् कहलाता है।

उज़त : 'खाँपो' का सहायक लामा। खाँपो के दो सहायक लामा होते हैं, जिसमें से बड़े लामा को उज़त कहते हैं। उज़त को मुख्य लामा मनोनीत करता है। यह उसके साथ मिलकर गोन्पा का संचालन करता है।

उढल : ऐसा देवता जिसको मानने वाले उसकी पूजा से बहिर्मुख हो गए हों, को उढल कहते हैं। जब किसी प्राणप्रतिष्ठित देवता की पूजा करना बंद कर दिया जाता है तो वह बजाए अपने भक्तों की रक्षा करने के, उन्हें तरह-तरह से तंग करना आरंभ करता है ताकि उसकी प्रजा को अपनी भूल का अहसास हो। वह उन्हें मानसिक व शारीरिक कष्ट पहुँचाता है और रोगी किसी भी औषधि से ठीक नहीं हो पाता। वह उनकी सुख-समृद्धि हर लेता है। तब तांत्रिक को पूछ कर कारण का पता लगाया जाता है और उढल की पुनः स्थापना कर विधिवत् नित्य पूजा की जाती है, तभी कष्ट से छुटकारा मिलता है।

उभरना : गूर में देवशक्ति का संचरण होना और उसके फलस्वरूप शरीर में सामान्य कंपन होना। उभरने से पूर्व गूर द्वारा पूरी गंभीरता और एकाग्रता के साथ दैवीशक्ति से तारतम्य जोड़ा जाता है। ऐसी स्थिति में गूर देवता की मूर्ति, 'घोंडी-धड़छ' या देवता का रथ सामने रखता है और ध्यान लगाता है। देवशक्ति के आगमन में देर हो सकती है लेकिन आती अवश्य है। आने पर उसे कंपन होने लगता है, जिसे उभरना कहते हैं। तब उसकी आँखें लाल हो जाती हैं और आवाज़ तेज़, कदाचित् उसकी टोपी गिर जाती है, बाल बिखर जाते हैं, तब वह अपने देवता की महानता का गुणगान करता है। शारीरिक मुद्राओं से वह देवता का यशोगान करता है। वर्तमान स्थिति, समस्या, कष्ट, दुःख, बीमारी का आकलन कर उसका समाधान बताता है। एकत्र हुए श्रद्धालु उस वक्त उससे अपने समस्याओं से संबंधित प्रश्न पूछते हैं क्योंकि ऐसा माना जाता है कि उस समय

गूर में देवता का प्रवेश हुआ होता है। उभरना को **छेरिना, हिंगरना** और **मिटणा** भी कहते हैं।

उभाणा : किसी के अशुभ की मनौती। अपने शत्रु का अनिष्ट चाहकर किसी देवी-देवता के पास मन्नत करना कि हे देवता! फलाँ व्यक्ति का नाश हो जाए तो मैं तुम्हें बलि दूँगा। इसे उभाणा कहते हैं। मनौती पूर्ण होने पर उस व्यक्ति को देवता को इच्छित सामग्री अवश्य चढ़ानी पड़ती है अन्यथा उसी का अहित होना आरंभ हो जाता है।

उमज़द : बौद्ध मठाधीश। उसके कुछ विशेषाधिकार होते हैं जो अन्य लामाओं को प्राप्त नहीं होते, यथा– फोवा लगाना तथा विहार का संचालन करना आदि। उमज़द की नियुक्ति निर्वाचन पद्धति से तीन वर्ष के लिए की जाती है जो आवश्यक होने पर पुनः तीन वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकती है। इसके निर्वाचक मंडल के सदस्य 'उछुङ्' लामा तथा गाँवों के मुखिया होते हैं।

उसरना : देवता का प्रभाव उतरना। 'उभरने' के बाद गूर का अपनी मूलावस्था में आना। इसके बाद गूर किसी समस्या का समाधान नहीं बताता है। दे. उभरना।

ओड़ी : भू देवता। सेरी अर्थात् खेतों के खंड विशेष में स्थित प्राकृतिक सबसे बड़ी चट्टान अथवा देखने में विचित्र या सपाट पत्थर को 'थनपाल' यानी भू-देवता माना जाता है, लेकिन कई स्थानों पर सेरी में कोई चट्टान या विशिष्ट पत्थर नहीं होता, तब लोग भू देवता के रूप में काफी लंबा परंतु चौड़ा या मोटा पत्थर लेकर उसका आधा भाग भूमि में गाड़ देते हैं और आधा भाग भूमि से बाहर रखते हैं, जिसे ओड़ी कहते हैं। इस की 'थनपाल' की तरह पूजा होती है। लोग नई फसल का हलवा, सत्तू या भोजन बनाकर इसे चढ़ाते हैं, भू-देवता के रूप में पूजने के उद्देश्य से लोगों द्वारा ओड़ी स्थापित की जाए यह आवश्यक नहीं। भूमि में स्वतः गड़ा इस प्रकार लम्बा पत्थर भी ओड़ी ही कहलाता है और जिस पर लोग फूल, दूब आदि चढ़ाते हैं।

कंकणि : तोरणद्वार। यह किन्नर जनपद के बौद्ध लोगों की धार्मिक आस्था का प्रतीक है। इसका संबंध प्राचीन भारतीय संस्कृति से है। जिस प्रकार प्राचीन काल में किसी बड़े व्यक्ति का स्वागत करने के लिए नगरवासी अपने नगर के तोरणद्वार पर जाते थे और उसे वाहन से उतार कर पैदल स्वागत-सत्कारपूर्वक नगर में प्रवेश कराते थे, ठीक उसी प्रकार हिमालय क्षेत्र की बौद्ध जनता भी अपने विशिष्ट अतिथियों को गाँव में प्रवेश कराती है। विदाई के समय गाँव से बाजे-गाजे के साथ कंकणि तक छोड़ने की प्रथा आज भी प्रचलित है। ये कंकणियाँ किन्नौर, लाहुल आदि बौद्ध बहुल क्षेत्रों के कई गाँवों में देखी जा सकती हैं। ये ऐसे मार्गों

पर बनाई जाती हैं जहाँ से आम लोगों का आना-जाना होता है। कंकणि का निर्माण मार्ग के दोनों किनारों पर दीवारें खड़ी करके उन के सहारे छत डालकर किया जाता है। दीवारें इतनी ऊँची बनायी जाती हैं कि इनके नीचे से गुज़रने पर छत से सिर न टकराए। छत के ऊपर स्तूप बनाया जाता है और छत के भीतरी भाग में ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य का मंडल निर्मित होता है, जिसके चारों ओर अक्षोभ्य का धारणी मन्त्र, जो 'ऊँ कंकणि कंकणि' से आरंभ होता है, लिखा होता है। संभवतः इस मंत्र के कारण ही इन बौद्ध तोरणद्वारों का नाम कंकणि पड़ा होगा।

कछौंटी : मंदिर परिसर का एक विशेष कक्ष जहाँ मंदिर में आए श्रद्धालु अनौपचारिक बातचीत करते हैं।

कटवाल : देवता का एक कार्यकर्ता। इसका काम देव संस्था की बैठक बुलाना होता है। यह देवयात्रा व मेले में देवता की छड़ी उठाता है। ऐसा माना जाता है कि जिस युग में नारायण देव वास्तविक शासक थे, उस समय कटवाल उनके आदेशों का पालन करवाते थे।

कटार : आधा फुट से एक फुट तक का दुधारा शस्त्र जो पीछे से चौड़ा और आगे को पतला व तेज़ होता जाता है। इसमें चौड़े भाग की ओर पकड़ने के लिए दस्ता बना होता है। गूर इसका प्रयोग 'देऊखेल' में करता है। कटार का प्रयोग तांत्रिक विद्या में भी होता है। कहते हैं कि चेला अपने तंत्र बल से कटार की तीखी धार बाँधकर अपने शरीर पर चलाता है। परंपरानुसार लड़के के विवाह के समय भी दूल्हे के हाथ में कटार दी जाती है। संभवतः इसके पीछे आत्म रक्षा का भाव हो चूँकि पुराने समय में वधू एवं दहेज को लूटने की वारदातें हुआ करती थीं, इस प्रयोजन के लिए कटार साथ रखने की प्रथा चली हो।

कठार : काष्ठागार। देवता संबंधी अन्न का भंडार। यह प्रायः काठ का बना छोटा मकान होता है, जहाँ 'ग्राही' करने पर एकत्रित अन्न को तब तक इकट्ठा करके रखा जाता है जब तक कि उसे प्रयोग में नहीं लाया जाता।

कठियाला : देव समिति का एक सदस्य। यह वंशागत होता है। इसका काम हारियान से राशन इकट्ठा करवा कर उसे देवता के ख़जाने में जमा करना होता है। भंडारी की अनुपस्थिति में यह भंडार की रक्षा करता है और पहरा देता है। देवता के भंडारे या मंदिर निर्माण के लिए प्रजा की ओर से देय अन्न और निश्चित धन राशि को एकत्र करके खजांची या कारदार के पास देना कठियाला का काम है। यह भंडारे के समय थाली, गिलास, बर्तन आदि का भी ख़याल रखता है।

कड़ीलणौ : कीलना। किसी देवस्थान में जाकर अपने शत्रु के नाश की कामना

करके मंदिर की दीवार या स्तम्भ में कील गाड़ने को कड़ीलणौ कहते हैं, जिससे शत्रु का विनाश होता है।

कड़ीस : दे. कुरड़।

कणाश : देव-भाषा। वह भाषा जो साधारण जन को समझ नहीं आती। इसे एक देवता द्वारा अपने संबंधी देवता से गुप्त बात करते हुए गूरों के माध्यम से बोला जाता है। जब कोई देवता 'देऊफेरा' या 'देवयात्रा' या दूर के मेले के लिए जा रहा होता है तो मार्ग में यदि उस देवता से संबंधित मंदिर आये या चाहे दूर से ही दिखाई दे तो भी गूर कणाश देता है। इस अवसर पर पहले रणसिंघा बजता है फिर 'घोंडी-धड़छ' के साथ गूर कणाश देता है। मलाणा की भाषा को, जहाँ जमलू देवता का राज्य है, को भी कणाशी कहते हैं।

कमंडल : पीतल का बना एक पात्र, जिसमें देवता के मुख-मोहरे धोने के बाद एकत्र हुए जल को रखा जाता है। इस जल को आचमनी द्वारा श्रद्धालुओं को चरणामृत के रूप में दिया जाता है।

करंडी : दे. कोंडी।

करंडू : दे. कोंडी।

कराउक : देवता की प्रबंध समिति का एक सदस्य। मंदिर में जब कोई देव कार्य होता है या देवता को कहीं बाहर निकलना होता है तो कारदार कराउक के माध्यम से लोगों को सूचना देता है। तब लोग मंदिर में इकट्ठे होकर उस कार्य से संबंधित बैठक करते हैं। यदि देवता ने किसी दूसरे गाँव में जाना हो तो वहाँ के लिए कराउक एक-दो दिन पहले संदेश भेजता है ताकि प्रजा देव संबंधी औपचारिकताएँ पूरी कर रखें। यूँ तो कराउक वंश परंपरा से बनता है परंतु यदि उस वंश में आगे कोई लड़का न हो तो कराउक दूसरे परिवार से चुना जाता है।

करीश : रक्षा। किसी व्यक्ति पर दुरात्मा की छाया पड़ जाने पर देवता द्वारा उसकी रक्षा किया जाना और कष्ट को दूर करना करीश कहलाता है।

कर्मिष्ठ : देवता का एक कार्यकर्ता जो परंपरा से वंशानुगत होता है। यह पद कई देवताओं के पास होता है और कइयों के पास नहीं। यह तीर्थयात्रा के दौरान 'कोंडी' उठाने में पुजारी की सहायता करता है। कई स्थानों में भादों महीने में 'डेहरे' के पास रोज़ धूप जलाने का प्रचलन है, जिसे कर्मिष्ठ ही निभाता है। जब देवता मेलास्थल में होता है तो दिन का पहरा भी यही देता है।

कलौणू वीर : केलू (देवदार) वृक्षों के घने क्यार अर्थात् कम क्षेत्र में फैले जंगल को

कलौण या कड़ौण कहते हैं। यह देवी-देवताओं का प्रिय क्षेत्र होता है और इसमें रहने वाले वीर देवताओं को कलौणू के नाम से जाना जाता है। हालांकि हरेक का प्रभाव क्षेत्र उस गाँव तक ही सीमित होता, जिस गाँव का वह जंगल होता है।

कवारा : पवित्र किया गया आटा। यह देवता के लिए रखे गए घी की कुछ बूँदों को गेहूँ के आटे में मिलाकर तैयार किया जाता है। यात्रा या मेले के बाद जब देवता मंदिर या भंडार में प्रवेश करता है अथवा जब देवता को कोई अपने घर आमंत्रित करता है तो इस पवित्र किए गए आटे को ऊपर फेंक कर छितराया जाता है। विश्वास किया जाता है कि इससे वायुमंडल में विचरण कर रही दुष्ट शक्तियाँ प्रभावहीन हो जाती हैं। जब किसी नए पशु को खरीद कर घर लाया जाता है तो डाकिनी-शाकिनी के प्रकोप से बचाने के लिए प्रवेश से पूर्व उस पर भी यह आटा फेंका जाता है। इसे **पातल़** भी कहा जाता है।

कशड़ी : ग्राम देवता को अर्पित किया जाने वाला घृत। जब भी किसी के घर में गाय-भैंस ब्याती है तो उसका घी तब तक प्रयोग में नहीं लाया जाता जब तक उसे देवता को अर्पित नहीं किया जाता। इसकी एक निर्धारित मात्रा होती है, इस लिए मिट्टी का एक विशेष पात्र, जिसे घीड़ा कहते हैं, इसी प्रयोजन के लिए रखा जाता है। जब वह सद्यप्रसूता गाय के घी से भर जाता है तो उसे देवता को चढ़ाया जाता है। उसके बाद ही घर में घी का प्रयोग किया जाता है।

काइलू वीर : यह चंबा क्षेत्र का एक प्रसिद्ध वीर है। गद्दी स्त्रियाँ गर्भ धारण करते ही काइलू के नाम पर कुछ पैसे और गले का हार मनौती के रूप में सुरक्षित रखती हैं। बच्चा होने के दो या तीन मास बाद पुरोहित एक पत्थर की मंत्र द्वारा पूजा करके उसे काइलू के नाम से अखरोट या कैंथ के वृक्ष के नीचे स्थापित कर देता है। तब काले सिर वाले सफेद बकरे के दायें कान में चीरा लगाकर उसके लहू को नौ से बारह गज़ लंबे कपड़े पर छिड़क दिया जाता है और कुछ पैसों तथा रोटियों के साथ इसे काइलू को चढ़ाया जाता है। उसके बाद वह स्त्री उस वस्त्र को स्वयं तब तक प्रयोग करती है जब तक कि वह फट न जाए।

काकपूजा : नव वर्ष के अवसर पर की जाने वाली पूजा विशेष। लाहौल की गाहर घाटी में तिब्बती तीसरे महीने की तीसरी तिथि को तथा गाहरी के प्रथम मास पुंसल की तीसरी तिथि को नव-वर्ष का प्रारंभ माना जाता है। गाहर में इसे एक पर्व के रूप में मनाया जाता है। इस उपलक्ष्य में ग्राम देवताओं की पूजा के अतिरिक्त जो एक विशेष कार्य किया जाता है वह है– काकपूजा। इस दिन लोग प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर केन (मक्खन मिश्रित सत्तू) से ग्राम-देवताओं की पूजा करते हैं तथा उजाला होने से पूर्व ज़ोर-ज़ोर से पोस-पोस कहकर कौओं का

आह्वान करते हैं। इन दिनों सब कुछ बर्फ से ढके होने पर भी लोगों के आह्वान पर कौए आ जाते हैं। लोग उन्हें 'मार दड़ केन' (घी-सत्तु) के पिंड अर्पित करते हैं और वे बड़े चाव से इनका भोग लगाते हैं। क्योंकि इसी दिन से नव वर्षारंभ होता है, इसलिए वहाँ के लोगों में यह विश्वास है कि जो व्यक्ति उस दिन ब्राह्ममुहूर्त में उठता है, उसके वर्षभर सारे कार्य शीघ्र एवं सरलतापूर्वक निष्पन्न हो जाते हैं।

काच़ा कुआरा शोटरा : देवता को चढ़ाया जाने वाला कच्चा भोग। देवयात्रा या मेले के दौरान जब कोई देवता किसी घर अथवा किसी गाँव के सामने से गुज़रता है या कोई देवता घर से इतनी दूर हो कि वहाँ जा कर उसे पूजना संभव न हो तो देवता के सम्मान में उस दिशा में छत पर से या बरामदे से आटा हवा में उड़ाया जाता है, जिसे काच़ा कुआरा शोटरा देना कहते हैं।

काचेन : लामाओं की एक विशिष्ट उपाधि जो लगभग पचीस वर्षों तक तिब्बत के बौद्ध मठों में पढ़ाई करके प्राप्त की जाती है।

काच्छ : आचमनी। कलछी की शक्ल का चम्मच, जिसमें पूजा के समय जल लेकर आचमन किया जाता है।

कायथ : देवता की आय तथा व्यय का लेखा-जोखा, रखने वाला व्यक्ति कायथ कहलाता है। देवता के पुराने बही-खाते इसी के पास रहते हैं। जब देवसंस्था की सभा होती है तो उसमें वह हिसाब-किताब की रिपोर्ट देता है। यह पद उत्तराधिकार में प्राप्त होता है।

कार : रेखा; ऐसी सीमा, मर्यादा, आज्ञा आदि जिसका उल्लंघन या अतिक्रमण न किया जा सके। इसी प्रकार कार किसी देवता की विशेष प्रकार की पूजा है, जिसमें मंदिर के लोगों के साथ-साथ गाँव के लोग देव-मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए भाग लेते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में भादों महीने में घर की दीवारों पर चारों ओर गोबर से तीन अंगुल मोटी कार दी जाती है और ऐसा माना जाता है कि इससे घर में भूत-प्रेत, डायनों, चुड़ैलों आदि का प्रभाव नहीं पड़ता।

कार डालना : देवता से प्रश्न पूछने की एक विधि। कार डालने के लिए देवता को कंधे पर उठाया जाता है। उठाने वाले सीधे खड़े रहते हैं। जिस व्यक्ति ने कार्यसिद्धि हेतु प्रश्न पूछना होता है वह मन में विचार करके देवता से पूछता है कि मेरा कार्य सिद्ध होगा या नहीं अथवा मैं सही हूँ या गलत। अगर देवता अपने आप आगे की ओर झुक जाए तो इसका अर्थ होता है कि कार्य सिद्ध होगा और यदि वह पीछे की ओर धक्का मारे तो माना जाता है कि कार्य में सफलता नहीं मिलेगी।

कारदार : मूलतः कारदार राजाओं के समय में कर इकट्ठा करके सरकारी ख़ज़ाने में जमा करता था लेकिन आजकल यह देवता का मुख्य कारकुन है। यह पद कुलक्रमागत होता है। देवता के प्रत्येक कार्य की ज़िम्मेदारी कारदार की होती है। देवता के सभी कार्य उस द्वारा करवाए जाते हैं। मन्दिर का प्रबंध, मुरम्मत, निर्माण आदि, भूमि से देवता के भाग की वसूली, मेलों का आयोजन, मेलों में व्यवस्था बनाए रखना कारदार का काम है। सरकार के दरबार में देवता की पैरवी करना भी इसी का उत्तरदायित्व है। देवता की संपत्ति और अधिकारों की रक्षा करना भी इसका कार्य होता है। कार्य के बदले में इसे देवता के भंडार से कुछ अन्न और धन मिलता है। इसे आउटर सराज कुल्लू में **क्राउक** व किन्नौर में **मोहतमिम** कहते हैं।

कारी काटणा : देवदोष से छुटकारा पाने का एक उपाय। कारी काटने के लिए देवता के सभी कार्यकर्ता मंदिर में जाते हैं। कुछ मंदिरों में तो कारी वहीं काटी जाती है लेकिन कुछ में मंदिरों के साथ बने देउरे में यह कार्य किया जाता है। वहाँ देवता को ले जाया जाता है। 'देऊ पाणे' वाला और जिसे 'देऊ पाया' जाता है, दोनों देवता के कारिंदों सहित उस स्थान पर आकर सर्वप्रथम आपस में समझौता करते हैं। उसके बाद कारी काटी जाती है। कारी काटने के लिए दोषी व्यक्ति को एक बकरा, एक सेर घी, चौदह बाटी आटा लाना पड़ता है ताकि उपस्थित सभी लोगों को एक समय का भोजन खिलाया जा सके। उसे देवता के निमित्त अठारह तोले चाँदी का दंड देना पड़ता है, तब वह देवदोष से मुक्त हो जाता है।

कारेस गीथङ : देवी-देवताओं के विशेष गीत। इनमें पृथ्वी की स्थापना और देवता के प्रकट होने का वर्णन होता है। इन गीतों को विशेष अवसरों पर कुछ निश्चित लोग नहा-धोकर एक बंद कमरे में गाते हैं। इसे शू-गीथङ भी कहते हैं।

कालवीर : श्मशान का वीर। यह श्मशान में पहरा देता है। इसका रूप बड़ा भयानक होता है। पुराने समय में इसके लिए हर घर में एक काली बकरी सुरक्षित रखी जाती थी और जब कभी यह वीर किसी घर में प्रवेश करता था तो बर्तन उलट-पुलट होने लगते थे, तब उसे यह बकरी भेंट की जाती थी। उसकी बलि देते ही वह घर छोड़कर चला जाता था।

कालावीर : यह एक भयानक वीर है। इसे काला भूत भी कहते हैं। यह जब भी दिखाई देता है तो नंगे और काले शरीर तथा बड़े-बड़े नेत्रों वाला दिखाई देता है। लोकविश्वास है कि सोते समय भी इसके नेत्र खुले ही रहते हैं।

कालिया वीर : यह दूध-घी में बरकत देने वाला वीर है। लोग नई ब्याई गाय का

दूध इसके मंदिर में चढ़ाते हैं। विश्वास है कि कालिया वीर अपना भेस बदलता रहता है और अनेक बार 'छलेडा' भी करता है जिसके प्रकोप से व्यक्ति बीमार पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में उसे काले बकरे की बलि दी जाती है। जब किसी व्यक्ति या चेले में नारसिंह की खेल आती है तो वह अपने साथी कालिया वीर का भी नाम लेता है कि मेरे साथ कालिया वीर भी है परंतु गाथाओं में कालिया का नाम गुग्गा जाहरपीर के साथ आता है, जिसने सेराल के साथ विवाह करने में गुग्गे की सहायता की थी।

काहल़ : एक देव वाद्य। यह चाँदी या ताँबे की धतूरे के फूल के आकार की बनी होती है। लाहौल और किन्नौर में इसे नरकाल कहते हैं। यह ओंठ से सटाये जाने वाले सिरे से लगातार आगे की ओर फैलता जाता है। इसके दो भाग होते हैं, जिसमें तीन गाँठें होती हैं। बजाते समय दोनों भागों को मध्य से मिलाया जाता है। महासु क्षेत्र में पिछले भाग को ध्याना कहते हैं। इसे बजाने के लिए बाहर और अंदर दोनों ओर फूँक देनी पड़ती है। बाहर को भारी और अंदर को पतली ध्वनि निकलती है। ध्वनि का नाद ऊँचा होता है जो दूर-दूर तक सुना जा सकता है, विभिन्न स्थानों पर काहल़ का रूप तो लगभग एक जैसा होता है परंतु लंबाई स्थान-स्थान पर भिन्न है। महासु-सिरमौर क्षेत्र की करनाल सबसे छोटी होती है, जिसकी लंबाई लगभग एक मीटर होती है।

लाहुल क्षेत्र की काहल़ सबसे लंबी होती है जो लगभग तीन मीटर होती है। इसे बजाते समय सिरे को भूमि पर या किसी सहारे पर टिकाते हैं। कुल्लू और किन्नौर की काहल़ मध्यम परिमाण की होती है। इसकी लंबाई लगभग डेढ़ मीटर होती है, अग्रभाग 85 सें. मी. और पश्च भाग 65 सें. मी.। होंठ पर सटाये जाने वाले बटनाकार सिरे की परिधि 7 सें. मी. और व्यास 2.5 सें.मी. होता है। काहल के अगले सिरे की परिधि 115 सें. मी. और व्यास 37 सें. मी. होता है। काहल का वादन देव यात्राओं, लोकनृत्यों तथा विवाहादि उत्सवों में किया जाता है। इसका वादन शुभ संदेश का सूचक होता है। कुल्लू में ग्रामवासियों को ग्रामसभा से बुलाने के लिए देवप्रांगण से काहल वादन होता है जिसे सुनकर आवश्यक से आवश्यक कार्य को छोड़ कर परिवार के प्रमुख को सभा में तुरंत उपस्थित होना पड़ता है।

काहिका : नरमेध यज्ञ का प्रतिरूप एक लोकानुष्ठान तथा उसमें बनाया गया मंडप। जहाँ इस यज्ञ का आयोजन होना निश्चित हुआ हो, वहाँ चार कोनों पर गढ़े खोदकर 'नौड़' उसमें जंगल से लाए गए देवदार के चार छोटे वृक्षों को इस प्रकार खड़ा करता है, जिससे लगभग चार मीटर का वर्गाकार मंडप बन जाता है। उन

वृक्षों पर श्वेत वस्त्र ताना जाता है, इसे काहिका कहा जाता है। इसके नीचे बैठकर 'नौड़' काहिका के अनुष्ठान की सारी कार्यवाही करता है।

किंदरी : यह लकड़ी का बना वाद्ययंत्र है, जिसका आकार सारंगी जैसा होता है। इसमें केवल चार तारें होती हैं इसलिए इसका अगला भाग सारंगी से कम चौड़ा होता है। अगले हिस्से के सिरे में चार खूँटियाँ लगी होती हैं जिनसे तारें स्वर में मिलाई जाती हैं। खूँटियों वाला सिरा घोड़े या शेर के मुँह के आकार में कुछ मुड़ा हुआ बना होता है। इसकी तारें भाँग की रस्सी के बारीक धागे की बनी होती हैं। इसे पतली लकड़ी के धनुषाकार गज़ को तारों पर रगड़कर बजाया जाता है और दूसरे हिस्से पर जो आगे से कम चौड़ा होता है, तारों पर बाएँ हाथ की उंगलियों से धुन विशेष को बजाया जाता है। इसकी ध्वनि सारंगी या वायलन जैसी होती है। गाते समय इसे संगत के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसे दुतारा भी कहा जाता है। यह किन्नौर में बनाई जाती है।

कीड़े वाला : दे. सिंढू।

कुंधड़ी : श्रद्धालुओं द्वारा देवता के निमित्त निश्चित मात्रा में घी रखने का मिट्टी का पात्र। निर्धारित त्योहार के दिन इसमें संजोया घी देवता को चढ़ाया जाता है, जिससे हलवा-प्रसाद बनाकर सभी में बाँटा जाता है। कुंधड़ी का पूरा लेखा-जोखा कठियाला रखता है। कुंधड़ी को **घीड़ा** भी कहते हैं।

कुपड़ : मंदिर के बाहर का खुला मैदान। दे. सौह।

कुरड़ : पहाड़ी शैली के मंदिर की छत के शिखर पर लगा देवदार का बड़ा शहतीर, जिस पर कलश, त्रिशूल आदि लगे होते हैं। इसे छत पर विशेष पूजन और बलि आदि के अनुष्ठान के साथ स्थापित किया जाता है। इसके पुराने होने या सड़ जाने की स्थिति में जब इसे पुनः बदला जाता है तो बकरे की बलि देकर ही चढ़ाया जाता है। इसे **बदोर, कड़ीस** और **क्रोंशा** भी कहते हैं।

कुलज : कुलदेवता। कुल का अपना एक विशिष्ट देवता होता है जिसे कुलज या कुल देवता कहते हैं। एक कुल में अनेक परिवार होने पर भी सभी परिवारों का एक ही कुलज होता है। कुलज की स्थापना कहीं कुल के ही किसी एक घर में और कहीं-कहीं घर से बाहर 'देहरी' में होती है। इस स्थल को पूर्ण रूप से पवित्र रखा जाता है। यहाँ पर कुलज का स्वर्ण या रजत निर्मित मोहरा, घंटी, शंख, धूपदान, कटार, त्रिशूल, गुग्गुल इत्यादि में से कोई एक या सभी निशान रखे जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में प्रतिदिन प्रातःकाल इसकी पूजा की जाती है लेकिन कुछ में प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है, वहाँ वर्ष में किन्हीं विशेष अवसरों पर ही पूजा

होती है और इसे रोट, भोग या प्रसाद चढ़ाया जाता है। इस स्थान पर किसी अन्य देवी या देवता की प्रतिष्ठा नहीं की जा सकती। घर में कोई भी शुभकार्य करने से पहले कुल देवता की अनुमति व आशीर्वाद लेना अनिवार्य समझा जाता है।

कुलज़ा : कुलदेवी। भिन्न कुलों या वंशों की अपनी-अपनी देवी होती है। अधिकांश कुलों ने नवदुर्गाओं में से किसी एक रूप को, जो भी उनके पूर्वजों द्वारा मान्य किया गया है, कुलज़ा के रूप में स्वीकार किया है। उस कुल में किसी भी पर्व अथवा अवसर विशेष पर कुलज़ा को सर्वप्रथम आमंत्रित किया जाता है और वह भी सदा उन पर अपनी कृपा दृष्टि बनाए रखती है। कुछ वंशों में कुलज़ा उस कुल की सती स्त्री होती है, जिसकी पूजा पीढ़ी-दर-पीढ़ी की जाती है। अनेक क्षेत्रों में श्रावण मास की पूर्णिमा इसकी पूजा का विशिष्ट दिन है। उस दिन पास की नदी से एक अथवा ग्यारह या तेरह विशेष प्रकार के चपटे पत्थर लाए जाते हैं। उन्हें आँगन में सजा दिया जाता है। कुल की मुख्य स्त्री उनकी पूजा करती है। इस अवसर पर कुलज़ा को ववरू, मीठी रोटी, धान की वाली, चावल आदि चढ़ाए जाते हैं। कई स्थानों पर पत्थर का चबूतरा बनाकर चार-पाँच फुट की ऊँचाई पर ताक सा बनाकर उसमें कुलज़ा के प्रतीक स्वरूप पत्थर का मोहरा बना कर रखा जाता है। कुलज़ा शब्द संस्कृत कुलजा का तद्भव रूप है। सं. कुलजा का अर्थ कुलवधू है। कुलवधू के सती होने के कारण कुलज़ा का विशेष अर्थ कुलदेवी होने पर यहाँ अर्थादेश हुआ है।

कुशा : पूजा-अर्चना आदि धार्मिक कार्यों में इसका प्रयोग अतीत से अब तक किया जा रहा है। यह एक पवित्र घास है। इसकी पावनता के विषय में पुराणों में एक कथा बताई गई है कि महर्षि कश्यप की कद्रू और विनता नाम की दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों महर्षि की खूब सेवा करती थीं। एक वार ऋषि ने उनकी सेवा से प्रसन्न हो कर उन्हें वरदान माँगने को कहा। कद्रू ने ऋषि से एक हज़ार पुत्र और विनता ने दो प्रतापी पुत्र माँगे। महर्षि ने तथास्तु कहकर उन्हें वरदान दे दिया और स्वयं अपनी साधना में तल्लीन हो गये। तब कद्रू के पुत्र सर्प रूप में हुए, जबकि विनता के दो प्रतापी पुत्र हुए। किंतु विनता को किसी कारणवश कद्रू की दासी बनना पड़ा। विनता के पुत्र गरुड़ ने जब अपनी माँ की दुर्दशा देखी तो उसने दासता से मुक्ति का प्रस्ताव कद्रू के पुत्रों के सामने रखा। उन्होंने कहा कि यदि वह उन्हें स्वर्ग से अमृत लाकर दे तो वे विनता को दासता से मुक्त कर देंगे। गरुड़ ने उनकी बात स्वीकार कर अमृत कलश स्वर्ग से ला कर उन्हें दे दिया और अपनी माँ को दासता से मुक्त करा दिया। यह अमृत कलश कुश नामक घास

पर रखा गया था, जहाँ से इन्द्र इसे पुनः उठाकर ले गये और कद्रू के पुत्र अमृत पान से वंचित रह गये। उन्होंने गरुड़ से इसकी शिकायत की कि इन्द्र अमृत कलश उठाकर ले गये। गरुड़ ने उन्हें समझाया कि अब अमृत कलश मिलना तो संभव नहीं, हाँ, यदि वे उस घास (कुश) को जिस पर अमृत कलश रखा था, को जीभ से चाटें तो उन्हें आंशिक लाभ मिलेगा। कद्रू के पुत्र कुशा को चाटने लगे, जिससे कि उनकी जीभें चिर गईं और वे छटपटाने लगे। इस कारण आज भी सर्प की जीभ दो भागों वाली चिरी हुई दिखाई पड़ती है, किंतु कुश घास की महत्ता अमृत कलश रखने के कारण बढ़ गई और भगवान् विष्णु के निर्देशानुसार इसे पूजा कार्य में प्रयुक्त किया जाने लगा। कुश का प्रयोग पूजा करते समय जल छिड़कने, उँगली में पवित्री पहनने, विवाह में मंडप छाने तथा अन्य मांगलिक कार्यों में किया जाता है। कुल्लू में कुशा को **जौभ** भी कहते हैं।

कूजा : दे. झारी।

कूत : दे. चंगोड़ी।

कूरभौत : जब किसी देवी या देवता को कोई अपने घर बुलाता है तो उसे देवताओं के कारकुनों को नज़राने के रूप में अनाज देना पड़ता है, जिसे कूरभौत कहते हैं। इसमें अनाज के साथ घी भी दिया जाता है। अनाज में प्रायः चावल दिये जाते हैं। स्थानीय चावल, जैसे– धान चीणा, काउणी और ढांगर आदि भी दिये जा सकते हैं।

केलंग : यह गद्दी लोगों का देवता है। इस देवता को कलिहार नाग के नाम से भी जाना जाता है। इसका कोई निश्चित देवालय नहीं होता। इसे शीतल जल और देवदार वृक्षों के नीचे निवास करना अच्छा लगता है। इसे सुंदर स्त्रियों तथा मांस-मदिरा से लगाव होता है। यह देवता गर्भपात कराता है, अतः सुंदर गर्भवती स्त्री इस देव की छाया से दूर रहती है। वह अपने पति के हाथों एक लोहे का त्रिशूल देवता को समर्पित करवाती है तथा अपने गर्भ की रक्षा के लिए सदैव अपने साथ लोहे की दाँती रखती है। कहा जाता है कि यह देवता लाहुल घाटी से चंबा पहुँचा और चमत्कारों के कारण जनमानस की आस्थाओं का प्रतीक बन गया। इस देव की आराधना करने के लिए सर्वप्रथम इसे दूध चढ़ाया जाता है, इसके उपरांत बकरा काटा जाता है। धूप जलाकर भिन्न-भिन्न देवताओं को ज़ोर से पुकार कर ढोल, नगाड़े तथा घंटों की ध्वनि की जाती है। इतने में चेला अपने वस्त्र उतार देता है। वह बलि के बकरे का कच्चा मांस खाता है तथा चीख कर अपने शरीर पर लोहे की ज़ंजीरें मारता है और देवता को पुकार कर अस्पष्ट सी भाषा में लोगों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देता है। कभी-कभी वह अपनी छाती

पर लगभग 20 किलो का पत्थर मारता है और भक्त केलंग देव की जय के नारे लगाते रहते हैं।

कैला वीर : कुल्लू के हरिजनों में कैला नाम का वीर बड़ा लोकप्रिय है। विश्वास के अनुसार यह गोरखनाथ के चेलों में से एक है और यह गुग्गा का साथी रहा है। गुग्गा के मंदिरों में उसे गुग्गा के साथ दिखाया जाता है परन्तु गुग्गा घोड़े पर होता है और कैला वीर ज़मीन पर खड़ा दर्शाया जाता है।

कैलू : एक वीर। जहाँ तक नाम का संबंध है इसे केलू वृक्ष से जोड़ा जाता है, हालांकि इसकी 'भारथा' इस बात का ज़रा भी संकेत नहीं देती। कुल्लू में प्रचलित भारथा के अनुसार यह नारायण के साथ आया है और कुछ सामान्य अंतर के साथ उसका जीवन वृत्तांत वही है जो नारायणों का है परंतु परंपरा और आस्था के अनुसार इस नाम का संबंध केलू वृक्ष से संभव है। इस वृक्ष की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं– लंबी व धनी शाखाओं से घिरा लंबा-ऊँचा वृक्ष और लंबी आयु। यह वृक्ष जितना पुराना होगा उतनी ही घनी और लंबी उसकी शाखाएँ होंगी। इसके अतिरिक्त यह एक सदाबहार वृक्ष है। इस तरह के विशिष्ट वृक्ष पर ही जो वीर वास करता है वह कैलू वीर कहलाता है। इसका मंदिर प्रायः अन्य देवताओं के मंदिरों से छोटा होता है, जिसे डेहरा या डेहरी कहा जाता है।

इसमें पूजा की वस्तु प्रायः स्थायी रूप से पड़ा पत्थर होता है, जिसे पिंडी या मूर्ति कहते हैं। इसकी पूजा वर्ष में दो बार– मार्गशीर्ष और बैसाख मास में होती है। ज्योतिष शास्त्र में मार्गशीर्ष को अच्छा मास नहीं माना जाता और अनेक देवताओं के पास इस मास कोई आयोजन नहीं होता परन्तु नारायण देवता के पास मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को 'मुंधर-पुन्नू' के रूप में मनाते हैं और वहाँ मेले लगते हैं। नारायणों में कृष्ण नारायण का प्रमुख स्थान है और भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा भी है, मासानां मार्गशीर्षोऽहम्। उस दिन वीर कैलू के उपासक मंदिर में जाकर भोजन तैयार करते हैं, वीर को प्रसाद चढ़ाते हैं और स्वयं भी प्रसाद ग्रहण करते हैं परंतु यदि मार्गशीर्ष पूर्णिमा मंगलवार को हो तो उस दिन वीर-पुजाई नहीं होती तब पूजा एक दिन पहले या बाद में की जाती है। वीर कैलू भारथा में बताता है कि एक बार मंगलवार को उसने भूल से टुटू (कटफोड़ा) पक्षी का घोंसला उजाड़ा था, अतः यह दिन उसके लिए अशुभ है। बैसाख मास में बैसाखी के आस-पास सलाहर (सिला आहार) त्योहार के अवसर पर वीर कैलू को पूजने वाला हर घर का स्वामी मंदिर में जाकर गेहूँ के आटे का पेड़ा चढ़ाता है, जिसमें जौ की नई फसल के एकाध कच्चे दाने भी डाले जाते हैं। इसे गाय का पहला घी चढ़ाया जाता है। यह वीर गाय का उपासक है। इसका गूर 'उभरने' से पहले गोमूत्र हथेली में लेकर

पीता है। वीर का कहना है कि कपिला गौ ने उसे वीरता का वरदान दिया है। इसके अतिरिक्त कतरूसी यानी कृष्ण नारायण अपनी भारथा में बताता है कि उसने गोमूत्र तथा गोबर को पवित्रता प्रदान की क्योंकि गौ ने उसे धरती के गोल होने का रहस्य बताया था। वीर कैलू नारायण का अंगरक्षक है, इसलिए हो सकता है कि नारायण ने उसे गोमूत्र का चरणामृत लेना ज़रूरी बताया हो। वीर भूमि के मालिक भी होते हैं। ज़िला शिमला में इसे महासू देवता का वज़ीर माना जाता है और सिरमौर क्षेत्र में शिरगुल का पहरेदार।

कोंडी : सिर पर उठाए जाने वाले देवताओं की पालकी। यह बाँस की बनी बड़ी टोकरी होती है, जिसके ऊपर अर्धवृत्ताकार छड़ी संयुक्त होती है। इस छड़ी के ऊपर छत्र सजाया जाता है। इसे **करंडी, करंडू** या **कौरड़ू** भी कहते हैं। इसी प्रकार की एक अन्य कोंडी में धूप, गूर की टोपी, 'शेष' के चावल, 'छोदे' की थाली तथा शंख रखा होता है। यह देवरथ के साथ चलती है। किसी-किसी अवसर पर देवरथ के स्थान पर केवल यही कोंडी बाहर निकलती है।

कोंडू : दे. कोंडी।

कोइलो वीर : यह वीर आग का स्वामी है। इनके चेलों में जब भी उसकी शक्ति का प्रवेश होता है तो वे जलती आग में कूद पड़ते हैं। आग पर नंगे पैर चलते हैं और भभकता हुआ कोयला चबा जाते हैं। जब कभी किसी मकान में आग लग जाए तो इनके नाम पर भेड़ उस आग में फेंक दी जाती है। लोकविश्वास है कि इससे आग बुझ जाती है या आग से कम हानि होती है। कोइलो वीर के पास साँप के काटे का भी उपचार होता है।

कोठी : देवता का अन्न भंडार। दे. भंडार। ग्राम प्रशासन में कुछ फाटियों के समूह को भी कोठी कहते हैं। कोठी ग्राम प्रशासन का चौथा चरण है। पहला चरण घर, दूसरा गाँव, तीसरा फाटी और चौथा कोठी है। कोठी बहुत बड़ा क्षेत्र होता है। कुल्लू में कुछ देवता कोठी के अधिपति होते हैं।

कोपों : एक वाद्ययंत्र। यह मुख्यतः अखरोट की लकड़ी का बना होता है। इसके एक सिरे पर तुंबा लगा होता है। तुंबे के मुख जिसे तबली कहते हैं, को बकरे की खाल से मज़बूती से मढ़ा जाता है। यंत्र के दूसरे सिरे पर सिंह आदि किसी जानवर की मुखाकृति बनाई जाती है, जिसके चारों ओर छः खूँटियाँ लगी होती हैं। प्रत्येक खूँटी के साथ बकरी की अंतड़ी का बना बारीक लंबा धागा कसा जाता है। इन धागों को दूसरी ओर बने तुंबे की खाल के ऊपर से गुज़ार कर किनारे पर या नीचे बनी एक या अधिक कीलों के साथ कस दिया जाता है। धागों को

तुंबें के मुख पर लगी खाल से अलग रखने के लिए खाल के ऊपर और धागों के नीचे लकड़ी, हाथी दाँत या हड्डी की बनी एक घोड़ी कस दी जाती है। इस वाद्ययंत्र के धागों को टकरा कर हर तरह का संगीत उत्पन्न किया जा सकता है। इसका वादन गीत की संगत के लिए किया जाता है।

कौऊ करिंदे : देवता के कार्यकर्ता। इनमें देवता का कार्य परंपरागत बँटा होता है। देवता के हर आयोजन में इनकी उपस्थिति अनिवार्य होती है, जिसमें ये अपने-अपने कार्य को पूरी श्रद्धा से करते हैं।

कौरड़ू : दे. कौंडी।

कौलश : कलश। यह स्वर्ण, रजत, पीतल, ताँबे, मिट्टी, लकड़ी या लोहे से निर्मित होता है। इसका आकार घड़े की भाँति होता है। इसकी उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि विश्वकर्मा ने समुद्रमंथन से निकले अमृत को धारण करने के लिए इसका निर्माण किया था, जिसमें देवताओं की पृथक्-पृथक् कलाएँ समायोजित की गई थीं। कलश के मुख पर ब्रह्मा, ग्रीवा में शंकर, मूल में विष्णु तथा मध्य में मातृगणों का वास होता है। हिंदू संस्कारों की प्रारंभिक प्रतिष्ठा में पुष्प-पल्लव, नारियल से सुसज्जित जलपूरित कलश की स्थापना सफलता के संबल रूप में मानी जाती है। इस के पीछे यही धारणा है कि प्रमुख त्रिदेव कलश में प्रतिष्ठित हो गये हैं। भारतीय संस्कृति में विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों में कलशों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसी क्रम में मंदिरों के शीर्ष भाग पर स्वर्ण कलशों की स्थापना का अद्‌भुत महत्त्व है, जो हमारी अगाध आस्था का परिचायक है।

क्राउक : दे. कारदार।

क्रोंशा : दे. क्रूरड़।

क्रो : ताँबे का कलश, जिसके ऊपर लाल वस्त्र में लिपटा नारियल स्थापित होता है, को क्रो कहते हैं। इसे देवता का प्रतीक माना जाता है। जब कहीं देव यज्ञ होता है तो निमंत्रित देवता के क्रो देवयज्ञ में जाते हैं और उन्हें वरिष्ठता अनुसार स्थान प्राप्त होता है।

खंगलैर : गूर-चेले द्वारा काँपते-काँपते लोहे की साँकलों से अपनी पीठ को कूटने तथा अपना रोष प्रकट करने की क्रिया को खंगलैर कहते हैं।

खंजरी : एक वाद्ययंत्र। इसे कंजिरा भी कहते हैं। यह एक ही मुख से युक्त होता है। इसे बायें हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से बजाया जाता है। इसका व्यास छः इंच तथा लंबाई तीन या चार अंगुल की होती है। इसे बकरी के मेमने की

खाल से मढ़ा जाता है। इसके पिंड में पाँच या छः द्वार होते हैं, जिनमें दो-दो ताम्र या लोहे के हलके सिक्के छन-छन जैसे नाद की उत्पत्ति के लिए लगाए जाते हैं। खंजरी का प्रचलन चंबा, सिरमौर, शिमला और सोलन क्षेत्र में अधिक है।

खंडो : दे. फोबरङ्।

खंडोया : दे. खांडा।

खटौड़ू : काष्ठ निर्मित 10 या 11 इंच लंबी कीलियाँ जो देव मंदिरों की छतों के साथ झालर के रूप में लगाई जाती हैं। हवा चलने पर आपस में टकरा कर ये मधुर ध्वनि उत्पन्न करती हैं। ये मंदिर की विशेष पहचान हैं, चूंकि रिहाइशी मकानों में प्रायः खटौड़ू नहीं लगते।

ख़तक : यह सूत अथवा रेशम से बना गुलूबंद के माप का एक वस्त्र होता है, जो शुभावसरों पर देवमूर्तियों पर चढ़ाने, अतिथियों, मित्रों, संबंधियों तथा विशिष्ट व्यक्तियों को भेंट करने में प्रयुक्त होता है।

खपर : खप्पर। काली के हाथ में रहने वाला रुधिरपात्र और काली माँ के मंदिर में रखा कमंडल की आकृति का एक पात्र, जिसमें देवी को चढ़ाई जाने वाली मदिरा रखी जाती है।

खरोण : देवोत्सव। यह उत्सव मनौती पूर्ण होने पर मनाया जाता है। मनौती पूर्ण होने पर सम्बंधित व्यक्ति द्वारा ग्राम देवता को अपने घर में आमंत्रित किया जाता है। उसकी पूजा के बाद सभी लोगों को प्रीति भोज दिया जाता है और उसी दिन देवता अपने मंदिर को लौट जाता है। इसे **खीण, अखण** भी कहते हैं।

खलातरा : देवता के गाँव के दौरे पर निकलने पर वहाँ के लोगों द्वारा खलियान में किया जाने वाला नृत्य खलातरा कहलाता है। जिस गाँव में देवता रात को ठहरता है, वहाँ के लोग एकत्र होकर खलियान में नाचते हैं। इन खलातरों में पुरुष ढोल-नगाड़ों के साथ ताल मिलाकर नाचते हैं जबकि औरतें नाटी-नृत्य करती हैं।

खल़ोठ : दे. आच्छण।

खाँडा : खड्ग। लोहे की सीधी, लंबी और चौड़ी दुधारी तलवार। यह देवता का सबसे पवित्र निशान माना जाता है। यह देवयात्रा में नहीं ले जाया जाता। इसे केवल तभी निकाला जाता है जब विशेष पूछ होती है। 'धूप पीणा' के बाद देव मंदिर के प्रांगण में देवता का गूर इसे हाथ में पकड़ कर रथ के साथ नाचता है। यह प्रायः देवता की कोठी या भंडार में ही रखा जाता है। कुल्लू क्षेत्र में जिन देवताओं के रथ नहीं हैं उनके केवल खाँडे होते हैं, जैसे मलाणा के जमलू देवता

का खाँडा है। मलाणा में इसे **टुंडाच** और किन्नौर ने **खंडोया** कहते हैं।

खाँपो : मुख्य लामा। प्रत्येक गोन्पा में एक मुख्य लामा होता है जिसका चयन गाँव वाले करते हैं। इसके कार्यकाल की कोई निश्चित अवधि नहीं होती। जब तक गाँववासी चाहें, तब तक वह इस पद पर रह सकता है, परन्तु डंखार और ताबो गोन्पाओं में मुख्य लामा केवल तीन वर्ष के लिए ही चुना जाता है। इस निश्चित अवधि के बाद साधारणतया दूसरे दर्जे के पद पर कार्य करने वाला लामा ही मुख्य लामा का कार्यभार संभाल लेता है।

खार : देवता का एक कारकुन, जो 'कोंडी' उठाता है। इसका चुनाव देवता स्वयं करता है। एक देवता के पास लगभग सात-आठ खार होते हैं, जो बारी-बारी 'कोंडी' को उठाते हैं। देवयात्रा के दौरान इन्हें कई नियमों का पालन करना पड़ता है, जैसे नंगे पाँव चलना, चमड़े आदि की कोई वस्तु साथ न रखना।

खिंडु : खाना खिलाने के लिए बाँटे गए 'देऊलू'। 'देऊफेरा' पर निकला देवता दिन और रात के भोजन के समय जिस गाँव में पहुँचे, उस गाँव वाले देवता के साथ आए लोगों को खाना खिलाने के लिए आपस में बाँटते हैं। इसे 'खिंडु पाणा' कहते हैं।

खीण : दे. खरैण।

खुंड-मुंड : पशुओं का देवता। यह पशुओं की रक्षा करता है। घर के आँगन में इसकी स्थापना की जाती है। कृषक हर नई फसल आने पर इसकी विशेष पूजा करते हैं। इसे प्रसन्न करने के लिए पशु बलि भी दी जाती है। इसके रुष्ट हो जाने पर पशुधन की हानि होती है या महामारी का प्रकोप हो जाता है। यह यक्ष देवता का प्रतिनिधित्व करता है।

खुंबली : देव कार्य सम्बंधी बैठक। इसमें गाँवों के प्रतिष्ठित लोग शामिल होते हैं, जिसमें गाँव के देवता से सम्बंधित यज्ञानुष्ठानों, धर्मस्थलों की पवित्रता, गाँव या उस क्षेत्र की सुख-समृद्धि के बारे में निर्णय लिए जाते हैं। खुंबली में लिया गया कोई भी निर्णय सबके लिए मान्य होता है। देव दोष के भय से भी लोग इस निर्णय के प्रति अपनी असहमति प्रकट नहीं करते। किन्नौर में इसे **खोमलिङ्** कहते है।

खेड़पट्टा : नारसिंह, परियाँ आदि पहाड़ी देवी-देवताओं के चिह्न स्वरूप बनाए गए चाँदी के आभूषण, जिन्हें ऐसी स्त्रियाँ पहनती हैं, जिनमें इन देवी-देवताओं की चेतना प्रवेश करती हो।

खेतरपाल : दे. थनपाल। कुछ क्षेत्रों में इसे रावण का राक्षस कहते हैं। इस स्थिति में यह पशुओं का शत्रु है, उन्हें चिपक जाता है और वे कमज़ोर होते जाते हैं। यह केवल राम और हनुमान से डरता है।

खेलपात्तर : किसी घर में जब कोई असाध्य रोग फैल जाता है तो लोकविश्वास के अनुसार उस घर में किसी देवी-देवता की पिंडी दबी होने का संदेह किया जाता है। ऐसे रोगों का निदान ढूँढने हेतु घर में एक विशेष लोकानुष्ठान खेलपात्तर आयोजित किया जाता है। इसमें जोगी एकतारे पर देवता की स्तुतियाँ गाता है। घड़े और थाली की ताल पर गूर नाचता और स्वयं को साँकल से पीटता है। 'गणाव' को ढूँढने के लिए गड़वी छोड़ी जाती है। जहाँ गड़वी रुक जाती है वहीं देवता के दबा पड़ा होने का संकेत समझा जाता है। उस स्थान की खुदाई कर देवता की मूर्ति निकाल कर उसकी प्राण प्रतिष्ठा करके पूजा की जाती है, जिससे रोग से मुक्ति प्राप्त होती है।

खोट : देव दोष, पितर दोष या कोई अन्य दोष। इस प्रकार के किसी भी दोष के कारण मनुष्य ऐसे रोग से ग्रस्त होता है, जिसका कोई औषधोपचार नहीं होता। ऐसा होने पर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह अवश्य कोई खोट है। तब पंडित, ज्योतिष, गूर या किसी जानकार से इसका पता किया जाता है। वह अपनी विशेष प्रकार की गणना से जानता है कि व्यक्ति को किसका खोट है। खोट का पता लगने पर वही इसके इलाज बताता है।

खोपड़ा : मंदिर के मुख्यद्वार के सामने बना 2 x 2 मीटर का चबूतरा, जिस पर बैठ कर देवता का 'माली' लोगों की समस्याओं का समाधान करता है।

खोमलिङ् : दे. खुंबली।

खोरी छडणा : एक तांत्रिक उपचार। यदि किसी घर में कलह रहती हो, परिवारजन रोग से बार-बार ग्रस्त हों, माल-मवेशी मर जाते हों, धन-धान्य की हानि हो तो यह समझा जाता है कि घर में कहीं जादू गड़ा है। ऐसी स्थिति में प्रभावित परिवार चेले से इस संबंध में पूछ डालता है। तब चेला चुपके से कोई दिन निश्चित करके जादू की खोज आरंभ करता है। वह काष्ठ की 'माणी' (अन्न मापक पात्र) में जौ, सरसों तथा ताँबे का सिक्का, जिस पर हनुमान का चित्र बना होता है, को मंत्रित करके डालता है। एक व्यक्ति इस माणी को ज़ोर से पकड़े रखता है। चेला मंत्र बोलना आरंभ करता है। मंत्रशक्ति से यह पात्र गतिशील होकर चलना आरंभ कर देता है। जिसने माणी को पकड़ा होता है वह उस पात्र के वेग से घिसटता चला जाता है। माणी जिस स्थानविशेष पर जाकर बार-बार रुके, अनुमान लगाया जाता

है कि जादू यहीं दबाया गया है। उस स्थान को खोदने पर वहाँ तांत्रिक क्रिया में प्रयुक्त दो-तीन हड्डियाँ, सरसों, जौ, सिंदूर, कोयले तथा सिर के बालों का गुच्छा आदि निकलते हैं। अन्य सामग्री भी हो सकती है। इन सभी वस्तुओं को जूतों से कुचलकर प्रभावहीन करके अज्ञात स्थान पर फेंक दिया जाता है। कभी-कभी कई दिन की खोज के बाद भी जादू का पता नहीं चलता है लेकिन इस विद्या का अच्छा ज्ञाता इसमें सफल हो ही जाता है। कई बार चोरी का पता लगाने के लिए भी खोरी छोड़ी जाती है। माणी के अभाव में पीतल के लोटे का प्रयोग भी किया जा सकता है।

खोली : मंदिर का मुख्य द्वार जो पूर्व दिशा की ओर होता है। यह पूर्णतः प्रस्तर निर्मित होता है।

ख्वाजा पीर : जलदेवता। ख्वाजा का निवास नदी में माना जाता है। वर्षा ऋतु में जिस दिन नदी में सबसे ज़्यादा पानी आता है, उस दिन ख्वाजा पीर बाढ़ के पानी में आगे-आगे चलता है। लोकविश्वास के अनुसार ख्वाजा पीर के चलने के साथ-साथ पूरे बैंड-बाजे बजते हैं। यह रात्रि के समय ही चलता है और कई व्यक्तियों को इन बाजों की ध्वनि सुनाई देती है। नदी किनारे की ज़मीन की रक्षा के लिए ख्वाजा की पूजा की जाती है। किसान हर वर्ष इसे पाँच पाव का रोट, नई फसल का भाग, दलिया आदि भेंट करता है। कई लोग अपनी गायें भी ख्वाजा के संरक्षण में रख देते हैं। उनके ब्याने पर बाईसवें दिन पूजा के उपरांत सर्वप्रथम ख्वाजा को दही-खीर आदि भेंट करके ग्वालों को खिलाया जाता है और गाय के दुधारू होने की कामना की जाती है।

गटड़ी डालना : दे. गैटी।

गढ़िया : कुल्लू में जो देवता 'कोठी' के अधिपति होते हैं, वहाँ पर भादों मास में देवता के मंदिर में दीया जलाने का काम गढ़िया करता है। यह पूरे भादों मास में पूरी कोठी के हर घर में जाता है। इन घरों में देवता के निमित्त घी, गुड़ तथा आटा रखा होता है। यह सभी घरों से इसको इकट्ठा करता है तथा रोज़ प्रातः देव मंदिर में भोग चढ़ाता है व शाम को दीया जलाता है। महीने के बाद जो घी और आटा इत्यादि बच जाता है, वह इसका पारिश्रमिक होता है।

गण : कुचाली सम्प्रदाय से संबंधित देवता। ये संख्या में 108 बताए जाते हैं और 'गूण' तथा 'खूण' के लिए प्रसिद्ध हैं। इनको पूजने पर ये गूण यानी सभी मनोरथ सिद्ध करते हैं और रुष्ट होने पर खूण यानी कुल नाश करते हैं। मंडी जनपद की जनता इन्हें आधि-व्याधि से बचने के लिए पूजती है। इन गणों की उत्पत्ति के

विषय में धूरजट्ट ने भारभाषणी में लिखा है—

इशो विशो संभरी भवार। ईणा मीणा डोडो क्वार।। 1।।

ईतो वशो डोडो लहार। डिशो डिहणो आफो डवार।। 2।।

टैंखरी इजो बैखरो बाब। नौ उगम रे जरमो ताब।। 3।।

जोगणी ज़हण झोई झठोथा। गुरो गोरखा पड़ो पठोथा।। 4।।

गूणे खूणे शोभले भाव। उढड़े शुढड़े सभी सताओ।। 5।।

अर्थात् डोडो क्वार नामक भयानक वन तथा संभरी भवार नामक ढंकार में इनका मूल निवास है। यहाँ लोहे की खानों से लोहा निकालते समय लोहार उनकी कृपा पर निर्भर रहते हैं। वहाँ डिहण नामक एक घोर अंधकार युक्त गुफा में माता टैंखरी और पिता बैखरो से इन्होंने जन्म पाया। टैंखरी ने नौ बार गर्भ धारण करके एक बार में गर्भ में बारह भ्रूणों को पालकर कुल 108 बच्चे पैदा किए। ये जहाँ भी स्थान ग्रहण करते हैं वहाँ एक साथ ही रहते हैं।

इन गणों पर चौंसठ योगिनियों की कृपा है, आज भी ये उनकी सेवा में रत रहते हैं। गुरु गोरखनाथ से भी इन्होंने आशीर्वाद प्राप्त किया है, तभी ये उपद्रव नहीं करते, अन्यथा ये बुरे कार्यों में प्रवृत्त रहने वाले थे। एक बार गुरु गोरखनाथ व उनके चेलों पर झपटने के कारण गुरु ने इनका कर्णछेदन कर दिया, जिससे उनकी राक्षसी वृत्ति समाप्त हो गई और ये मानव मात्र का कल्याण कर पूजनीय बन गए। रुष्ट होने पर ये खूण (कुलनाश) पर उतर आते हैं, अतः इन्हें कभी भी अप्रसन्न नहीं करना पड़ता। यही कारण है कि स्थानीय जन प्रत्येक कार्य करने से पहले इनकी पूजा करते हैं।

गणना : देवदोष या अन्य दोष का पता करने के लिए गूर, पंडित या किसी जानकार द्वारा की जाने वाली विशेष गिनती। यह गिनती सरसों, गेहूँ या चावल के दानों से की जाती है।

गणाव : देवता की मूर्ति या पिंडी या कोई चिह्न जो कहीं दबा पड़ा हो, उसे गणाव कहते हैं।

गद्दी वीर : एक वीर। इसके मुख पर गद्दी चरवाहों की भाँति सफेद दाढ़ी, सिर पर सफेद टोपी और शरीर पर सफेद चोला होता है, जिस पर काले रंग का डोरा बंधा होता है। भेड़-बकरियों की सुरक्षा के लिए गद्दी इसकी पूजा करते हैं। गद्दियों और पुहालों के दराट में भी वीर का वास माना जाता है। यह उनका रोज़मर्रा का हथियार होता है, जिसे वे हमेशा साथ रखते हैं। यह न केवल लकड़ियाँ और

झाड़ियाँ आदि काटने के लिए ज़रूरी है, अपितु यह जंगलों में भूत-प्रेत, राक्षसों आदि से भी उनकी रक्षा करता है।

गरः दे. धामी।

गांठीदार : कोषाध्यक्ष। यह देवता की आय-व्यय का लेखा-जोखा रखता है।

गा-ओ : मंजूषा। यह चाँदी या ताँबे की बनी पेटिका होती है, जिसके चारों ओर खिड़कियाँ होती हैं। इसमें भगवान् बुद्ध की मूर्ति को स्थापित किया जाता है। इसकी घर में तथा गोन्पाओं में ऊँचे एवं पवित्र स्थान पर रखकर श्रद्धापूर्वक आराधना की जाती है। आकार में छोटा होने से यात्रा के समय इसे बैल्ट के सहारे कंधे से पीठ पर पहन लिया जाता है। कहा जाता है कि प्रत्येक घर में उक्त मंजूषा का होना अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में बौद्ध मतानुयायी की पहचान पर प्रश्नचिह्न लग जाता है, अतः सभी बौद्ध मतानुयायी इसे अपने घरों में रखकर नियमित रूप से पूजा करते हैं।

गाडू ढालना : मंदिर का अभिषेक करना। मुख्य मंदिर और 'पघुरी' के 'कुरड़' लगाते समय देवता का गूर छत पर चढ़ कर मंदिर का अभिषेक करता है। इसे गाडू ढालना कहा जाता है। इस समय छत पर दो बलियाँ दी जाती हैं।

गुग्गा : एक वीर। भारतीय लोकविश्वास में गुग्गा से संबंधित सर्वाधिक पाठांतर हैं परंतु हर गाथा में उसकी वीरता का वृत्तांत सर्वोपरि है। इसलिए गुग्गा को वीरों में एक ऊँचा स्थान प्राप्त है। एक गाथा के अनुसार गुग्गे ने बचपन में अपने ऊपर आक्रमण करते हुए सर्प का विष पी लिया था, इसलिए उसे गुग्गा-ज़हरिया पीर कहते हैं। दूसरी गाथा के अनुसार एक डाइन ने गुग्गे को बचपन में मार दिया था, लेकिन वह अपनी शक्ति से पशुओं के रेवड़ के बीच पुनः पैदा हुआ। जब गायें उससे डर कर इधर-उधर भागने लगीं तो ग्वाले ने उसके सिर पर डंडा मारा। उससे उसका आधा भाग भूमि में धँस गया। धँसा हुआ भाग लखदाता कहलाया तथा बाहर रहा भाग ज़ाहर पीर कहलाया। तीसरी गाथा के अनुसार यह अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान का समकालीन था जो मुहम्मद गौरी के साथ युद्ध में 1192 में मारा गया था। चौथी कथा के अनुसार गुग्गा अपने 45 बेटों और साठ भतीजों के साथ महमूद गज़नबी के साथ युद्ध में लड़ता हुआ मारा बताया गया है। पाँचवें पाठांतर में यह कहा जाता है कि गुग्गे ने अपने दो भतीजों को मारा और उसे दोनों भतीजों के साथ नरक में जाने का दंड मिला। छठी गाथा के अनुसार गुग्गा आछला, काछला और बाछला बहिनों में से बाछला का पुत्र है जो गोरखनाथ की कृपा से पैदा हुआ था। हिमाचल में यह गाथा अधिक प्रचलित है।

गुग्गे की प्रदेश भर में स्थान-स्थान पर मढ़ियाँ हैं। इनके मुख्य थड़ों में से एक थड़ा सलोह ज़िला कांगड़ा में है, जहाँ ओपरा और साँप के काटे हुए का उपचार होता है। यहाँ मंदिर में गुग्गा, गुगड़ी और गोरखनाथ की मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहाँ पर हर वर्ष भाद्रपद मास में बहुत बड़ा छत्र बाँधा जाता है और गुग्गा नवमी के दिन भारी मेला लगता है। इस रात जगराता होता है। गुग्गा नवमी से नौ दिन पूर्व गुग्गा पूजा आरंभ हो जाती है। टौर नामक बेल के पत्तों और कपड़ों से गूँथा छत्र गुग्गे का प्रतीक होता है। इसमें बीच में डोरियाँ और मोरपंख सजाए होते हैं। एक व्यक्ति इस छत्र को उठाए रहता है, एक दबातरा लेकर गुग्गा गाथा, जिसे गगालें कहते हैं, गाता है। एक अन्य चँवर लेकर चलता है और इस तरह वे घर-घर फिरते हैं। मंडी ज़िला के बल्ह क्षेत्र में प्रचलित गुग्गा गाथा की दो पंक्तियाँ—

से बो हांजी केसा बां घड़िया गुग्गा राणा जन्मेया।
से बो हांजी सिरा रे बालां गणूये गुग्गामल जन्मेया।।

गुज्जू : एक देव वाद्य। लकड़ी के बने इस वाद्ययंत्र की आकृति डमरू सदृश होती है जिसके दोनों ओर सूत की पतली रस्सियों से बकरे की खाल के पुड़े चढ़ाए जाते हैं। रस्सी की सहायता से गले में लटका कर इसे एक तरफ से लकड़ी की छड़ी से बजाते हैं और दूसरी तरफ से उँगली से रगड़ देते हैं, जिससे विचित्र गूँज पैदा होती है। यह शिमला तथा साथ लगते ज़िलों में हुड़की, दमामा, टणकोरा आदि के साथ बजाया जाता है।

गुडाल : गूर का अंगरक्षक। जब देवता यात्रा पर निकलता है तो यह उसका 'देऊलू' बनकर साथ जाता है और देवता के किसी धार्मिक जुलूस में रथ के साथ गूर के आगे चलता है। इसने गूर के समान ही वस्त्र पहने होते हैं और हाथ में स्वर्ण या रजत जड़ित गदा धारण की होती है।

गुण : गुण शब्द का प्रयोग गूर या पुजारी द्वारा दिए गए आशीर्वाद के लिए किया जाता है। जब देवी-देवता किसी मेले या जातरा पर जाता है तो वहाँ श्रद्धालु देवता से आशीर्वाद माँगते हैं। तब देवता का गूर दैवीशक्ति जागृत करने के लिए मंत्रोच्चारण करता है और भक्त की हथेली पर कुछ अक्षत रखता है। श्रद्धालु उन्हें गिनता है। इन चावल के दानों को गुण कहा जाता है। यदि ये अक्षत विषम संख्या में हों तो ऐसा माना जाता है कि उसे देवता का आशीर्वाद प्राप्त है और यदि ये सम संख्या में हों तो उसे इससे विपरीत माना जाता है। इसी प्रकार यदि देवता अपने मूल कक्ष में, जो उसके 'भंडार' में ही दूसरी या तीसरी मंज़िल में होता है, विराजित हो और कोई दुःखी व्यक्ति अपने दुःख निवारण हेतु उसके पास आए, तब भी गूर दैवी शक्ति जागृत कर उस प्रश्नकर्ता के हाथ पर गुण रखता है।

गुर्ज : लोहे की लगभग तीन फुट लंबी छड़। इसका अगला सिरा तेज़ होता है और पिछले सिरे के छेद में से एक कड़ा गुज़ारा होता है, जिसमें लोहे के पतले पत्ते भी लटके होते हैं। यह 'देऊखेल' का मुख्य शस्त्र होता है। देऊखेल में गूर इसे अपने फैले हुए दोनों हाथों के अंगूठे और तर्जनी के मध्य टिकाकर इसका प्रदर्शन करता है। कहीं यह गुर्ज देवता की अपनी होती है और कहीं-कहीं यह सहायक देवता की होती है। देवयात्रा एवं अन्य देवकार्य में यह साथ रहती है। इसको सहायक देवता का गूर ही उठाता है। गुर्ज को लोहा भी कहते हैं।

गुर्जाई : देव यात्रा के दौरान चंवर उठाने वाले व्यक्ति। देवता विशेष के जन्म मास में मनाये जाने वाले जागरा उत्सव में उस देवता का प्रतीक चिह्न या पालकी पूरे प्रभाव क्षेत्र में एक गाँव से दूसरे गाँव में जाती है और देवता एक-एक रात वहीं विश्राम करता है। संबंधित गाँव में उस रात बकरे कटते हैं, घी, दाल व पटांडे बनते हैं। नाच-गाना होता है और देवता की सभी मूर्तियों को पूजा में सजा कर उनका सार्वजनिक पूजन किया जाता है। पालकी में देवता की बड़ी स्वर्ण प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य गणों की अष्टधातु की प्रतिमाएँ भी स्थापित होती हैं। पालकी को दो आदमी उठाते हैं जिसके आगे-आगे चंवर हाथ में थामे दो व्यक्ति चलते हैं, जिन्हें गुर्जाई कहा जाता है।

गुळे : देव न्याय की एक विधि। इसमें किसी प्रकार की चोरी या अन्य कोई नुकसान होने पर संदेहास्पद क्षेत्र के प्रत्येक परिवार से गुळे यानी अन्न के दाने एकत्र किये जाते हैं। इस प्रकार इकट्ठे किये हुए दानों को देवासन या देवस्थल पर फेंक कर देवता से अपराधी को निश्चित समय में उपयुक्त दंड देने का आग्रह किया जाता है। यदि अपराधी के घर से गुळे आये हों तो उसे निश्चय ही दंड मिलता है।

गुसैंतण : गुसाईं के लिए आयोजित अनुष्ठान। इसे शिवरात्रि पर विशेष विधि से और नई फसल के आने तथा अन्य उपलक्ष्यों पर साधारण विधि से संपन्न किया जाता है। इसके आयोजन पर कहीं-कहीं रात भर 'मसादे' गाए जाते हैं। इसका मंडप प्रायः 'नुआले' की तरह ही बनाया जाता है। फूलमाला की चौरासी लड़ियों के स्थान पर गलगल के पत्तों और फूलों से गूँथी एक डोरी लटकाई जाती है। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि ऊनी डोर घट के केन्द्र में बने कैलास के ऊपर ही लटके।

गूर : देऊ परंपरा में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति या कारकुन। यह देवता का प्रवक्ता है। देवता अपनी बात या तो कुछ संकेतों द्वारा स्वयं या फिर गूर के माध्यम से कहता है। इसे देवता स्वयं चुनता है। 'हुळकी', 'देऊखेल' आदि अवसर पर

असंख्य वाद्ययंत्रों से गुंजायमान वातावरण में यदि दर्शकों में से किसी के शरीर में भारी प्रकंपन आ जाए और वह अत्यधिक उछल-कूद करे तो वह अपनी टोपी को दोनों हाथों से जकड़ता है। उसके सहयोगी भी उसकी टोपी सिर से गिरने से बचाने का प्रयत्न करते हैं, परंतु फिर भी यदि टोपी गिर ही गई तो समझा जाता है कि देवता का आध्यात्मिक प्रभाव उसमें प्रवेश कर गया है और वह कुछ उपबंधों के अधीन गूर चुन लिया गया है, टोपी न गिरने देने का प्रमुख कारण यही है कि गूर चुन लिये जाने पर उसे कुछ कठोर वर्जनाओं का पालन करना पड़ता है, यथा— वह सारी उम्र बाल नहीं कटा सकता, बालों में तेल नहीं लगा सकता, बालों में केवल मक्खन और घी का ही प्रयोग कर सकता है, अंडे नहीं खा सकता, वह तंबाकू-सिगरेट नहीं पी सकता, चमड़े के जूते नहीं पहन सकता, रजस्वला स्त्री के हाथ का और उसके घर में भोजन नहीं खा सकता, विवाहित स्त्री को यदि नंगे सिर देख लिया तो एक समय का भोजन छोड़ना पड़ता है, उसे मंत्र की 140 से 220 मालाएँ प्रतिदिन फेरनी पड़ती हैं।

टोपी गिरते ही उसके कोट-कमीज़ के बाजू उतार दिए जाते हैं। उन्हें नीचे खिसका कर कमर में बाँध दिया जाता है, उसका पायजमा उतार कर उसे भीड़ में से धकेल कर अन्य गूरों के पास पहुँचा दियां जाता है। तब उसे गूर नहीं 'बाठर' कहते हैं लेकिन देवता के अगले आयोजन में उसे 'रुहर पिलाया' जाता है। तब वह पूरा गूर बन जाता है। इस प्रकार एक देवता के पास कई गूर होते हैं और मेले में प्रत्येक गूर को उपस्थित रहना पड़ता है। कुछ देवताओं की औरतें भी गूर होती हैं। ये प्रायः देवी काली की गूर होती हैं। मंडी ज़िला के कमरूनाग देवता के गूर को **लाठी** कहा जाता है। गूर को **ग्रोक्च़, पटालस, माली** और **लबदक** भी कहते हैं।

गृह वीर : हिमाचल में कुछ ऐसे वीरों की मान्यता है जो किसी नाम विशेष से नहीं जाने जाते। वे केवल वीर नाम से प्रसिद्ध हैं। जो वीरता से समाज विशेष की रक्षा करे वह वीर है। इसलिए पहाड़ों में घर-घर में वीर हैं। उनके कोई अलग मंदिर नहीं हैं। घर के किसी कमरे में विशेषतया मकान की सबसे ऊपरी मंज़िल में, दीवार में बनाए गए स्थान पर वीर को स्थापित किया जाता है जिसका कोई चिह्न विशेष होता है, जैसे—त्रिशूल, खांडा, एक-तीन या पाँच लड़ी की साँकल आदि। इन्हें गृहवीर या अनामी वीर कहा जा सकता है। घर में उसका स्थान गृहदेवता सा होता है। घर-परिवार में यदि कोई बीमारी या कष्ट आ जाए तो उससे उसके निवारण की कामना की जाती है। प्रत्येक फसल आने पर नए अन्न का भोजन सबसे पहले उसे भेंट किया जाता है। किसी-किसी घर में इसकी प्रतिदिन पूजा की जाती है। इन वीरों की धारणा किसी जाति, वर्ग या संप्रदाय विशेष से नहीं

है। तथाकथित निम्नवर्ग के घरों या गाँवों में भी ऐसे वीर स्थापित हैं, भले ही उनका नाम विशेष नहीं है।

गैटी : देवता से प्रश्न पूछने की एक विधि। इसमें गूर जब आसन पर बैठता है तो प्रश्न डालने वाला व्यक्ति तीन गैटी यानी कंकड़ों पर अलग-अलग उत्तर सोचकर इन्हें गूर के सामने रखता है। गूर देवशक्ति के आवेश में आकर तीनों में से एक कंकड़ को उठाने के लिए कहता है। प्रश्नकर्ता द्वारा उस कंकड़ में सोचा गया उत्तर ही देवता की ओर से सही समझा जाता है। प्रश्न डालने की इस विधि को कई जगह **गटड़ी डालना** भी कहते हैं।

गोन्पा : गोन्पा का अर्थ है– एकांत स्थान। जनजातीय क्षेत्र किन्नौर तथा लाहुल में यह बौद्ध मठ या विहार का बोधक है। यहाँ के निवासियों के मन पर तथा जीवन में बौद्ध धर्म के गहन प्रभाव के कारण यहाँ पर लगभग सभी प्रमुख आवासीय क्षेत्रों में इन गोन्पाओं की सत्ता पाई जाती है। ये प्रायः किसी बड़ी जनसंख्या वाले गाँव से कुछ दूर किसी पहाड़ी की ढलान या कक्ष में बनाए जाते हैं। ये गोन्पा वहाँ की जनता के सांस्कृतिक जीवन के प्रमुख केंद्र हैं तथा सैकड़ों वर्षों से यहाँ के लोगों के धार्मिक जीवन को प्रभावित करते रहे हैं। आधुनिक शिक्षा का प्रसार होने से पहले यही वहाँ की जनजातियों के शिक्षा-केंद्र थे। विशेषरूप से लामा तथा चोमो (भिक्षुणियाँ) अपनी धार्मिक शिक्षा इन्हीं केंद्रों से प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त ये तिब्बती कला के मूल्यवान संग्रहालय हैं। इनकी दीवारों और भीतरी छतों पर चित्रित धार्मिक चित्र तथा लकड़ी एवं धातु पर की गई नक्काशी तिब्बती कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

ग्य-लिङ : शहनाई। यह बौद्ध पूजा पद्धति का प्रमुख वाद्य माना जाता है। यह धातु का बना नली के आकार का होता है जिसका एक सिरा पतला और दूसरा सिरा खुला होता है। यह शहनाई की तरह होता है। इसकी आवाज़ मधुर होती है। बौद्धों की प्रत्येक तांत्रिक पूजा में तथा वरिष्ठ लामाओं और विशिष्ट व्यक्तियों के स्वागत के अवसर पर भी इसका प्रयोग होता है।

ग्यासी : गृह देवी, जिसका चित्र रसोईघर में दीवार पर गोल आकार के काले रंग के घेरे के बीच श्वेत व रक्त बिंदुओं से बनाया होता है। यह शिशुओं की अधिष्ठात्री देवी कहलाती है।

ग्राही : संग्रहण। जब कभी देवता के पास विशेष आयोजन पर व्यय करने के लिए अपना अन्न-धन न हो या इनकी कमी हो तो देवता की 'हार' से अन्न और धन विशेष मात्रा में एकत्र किया जाता है। इस क्रिया को ग्राही कहते हैं।

ग्रेंग : अपने इष्ट देवता के नाम रखे गए पैसे। बीमार होने पर अपने इष्ट के नाम कुछ पैसे यह संकल्प करके रखे जाते हैं कि अमुक व्यक्ति की बीमारी दूर हो जाए तो ये पैसे उसे चढ़ा दिये जायेंगे।। रोग से मुक्ति के बाद इन पैसों में कुछ और पैसे डाल कर ये देवता को भेंट कर दिए जाते हैं। यदि मनौती पूरी न की जाए तो इष्ट देवता के क्रोध का भाजन बनना पड़ता है।

ग्रोक्च़ : दे. गूर।

घंटा : मंदिरों आदि में लगाया जाने वाला काँसे का लंगरदार बाजा तो लंगर हिलाने से बजता है। पूजा के समय मंदिरों में लगे घंटों, जिन्हें चंद्रघंटा या विजय घंटा कहा जाता है, को भक्तगण अन्य वाद्यों के साथ बजाते हैं। इस कार्य के लिए हाथ से बजने वाले घंटों का भी प्रयोग मंदिरों और घरों में किया जाता है। पूजा के समय घंटा नाद करना आवश्यक माना गया है। भगवान विष्णु के मंदिरों में रखे हस्त-घंटा के शिखर पर गरुड़ की आकृति बनी होती है और इसे पूजा के बाद शंख के साथ रखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि गरुड़ साँप का घोर शत्रु होता है अतः वह उस स्थान को सर्पमुक्त रखता है। लोकविश्वास है कि जहाँ पर घंटा होता हे वहाँ आकाशीय बिजली नहीं गिरती क्योंकि इसकी ध्वनि बादलों की गर्जन से मिलती है।

घड़ौम : देवी-देवता के डेहरे, मंदिर, भंडार, गर्भगृह आदि के निर्माण कार्य को घड़ौम कहा जाता है। इस कार्य के दौरान सभी कारिंदों को अति पवित्रता और शुद्धता का ध्यान रखना होता है।

घणासा : लोहे का दराट। जब देवता किसी बलि पशु को स्वीकार करता है तो इसी घणासे से उसे काटा जाता है।

घमीरी : गर्भगृह। देव मन्दिर की वह कोठरी जिसमें पिंडी या मूर्ति स्थापित रहती है। यह देवता का स्थावर स्थान होता है जिसे पिंड-प्राण भी कहते हैं। यहाँ अन्य कोई सामान नहीं रखा जाता।

घांडे : दे. घोंडी।

घाट पाणा : देवी-देवता के मुख-मोहरे, आभूषण, वाद्ययंत्र, नेज़ा-निशान आदि जब बहुत पुराने हो जाते हैं या चोट लगने व अन्य कारणों से इसका स्वरूप बिगड़ जाता है तो देवता की अनुमति से इन्हें पिघला कर पुनः सांचे में ढाल कर नया रूप दिया जाता है। मुरम्मत या नए बनाने की इस प्रक्रिया को घाट पाणा कहते हैं। इस घाट पाणे के कार्य के दौरान सभी कारीगर, शिल्पकार तथा काम में शामिल

अन्य व्यक्ति व्रत रखते हैं तथा सायंकाल में ही केवल एक समय भोजन करते हैं। खाना खाने के बाद कार्य रोक दिया जाता है। इन्हें इन दिनों अति पवित्रता और शुचिता का ध्यान रखना पड़ता है।

घीड़ा : दे. कुंधड़ी।

घृतमा : घृत लेपन। मकर संक्रांति के दिन जब देवता स्वर्ग प्रवास पर जाते हैं तो कुछ क्षेत्रों के मंदिरों में उनकी मूर्तियों पर घी लगाकर उन्हें पूरी तरह से ढक दिया जाता है। तत्पश्चात् उस पर कतला (कपड़ों से चिपटने वाला घास जिसे कुछ क्षेत्रों में झिंझड़ू कहते हैं) लगा दिया जाता है और मूर्ति को *तामसू* (पतीला) से ढक दिया जाता है ताकि चूहा मूर्ति पर से घी न खा सके। इस घृत लेपन को घृतमा कहा जाता है। देवताओं के स्वर्ग से वापस आ जाने पर तामसू को हटा दिया जाता है। इसे हटा कर यदि यह देखा गया कि घी को चूहे ने कहीं से खाया है तो इसे अपशकुन माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि फसल वर्ष भर में अच्छी नहीं होगी और बीमारी आदि विपत्तियाँ आएँगी और यदि चूहे या अन्य किसी जीव ने घी को न छेड़ा हो तो अच्छा शकुन माना जाएगा। इसी तरह यदि घृतमा पर जौ, कनक, धान आदि के अंकुर फूटे हो तो शुभ शकुन माना जाता है। इस घृत को मूर्ति पर से उतार कर प्रसाद के रूप में देवता की प्रजा में बाँटा जाता है।

घेपङ : यह लाहुल का मुख्य देवता है, जिसका मन्दिर चन्द्रा घाटी में सिस्सू के समीप खंगसर गाँव में स्थित है। कहते हैं लाहुल में जौ का बीज यही देवता लाया था। यह विश्वास किया जाता है कि पहले लाहुल में राक्षसों का बोलबाला था। वे नहीं चाहते थे कि यहाँ मनुष्यों का वास हो। इसलिए जब घेपङ देवता अन्न के बीज लेकर बारालाचा दर्रे को पार करके लिंगटी के मैदान में पहुँचा तो राक्षसों ने उसे रोक लिया और उसके साथ युद्ध करने लगे। इस युद्ध में बहुत सा बीज नष्ट हो गया परंतु कुछ बीज घेपङ देवता ने मुँह में छिपाकर लाहुल पहुँचाया। इसके साथ ही लाहुल में अन्न की उत्पति हुई और इनसान फलने-फूलने लगा।

घेपङ को कुल्लू के मलाणा ग्राम के देवता जमलू का छोटा भाई माना जाता है। यह देवता प्रत्येक तीन वर्ष बाद जमलू देवता से मिलने मलाणा गाँव आता है, जहाँ दोनों देवताओं का मिलन होता है।

यह देवता सभी धर्मानुयायियों के बीच बहुत लोकप्रिय है। यह हर तीन साल के बाद सारे लाहुल का दौरा करने के लिए निकलता है। रास्ते में उसे स्थान-स्थान पर भेड़-बकरियों की बलि दी जाती है। यह जिस घर में भी जाए वहीं न केवल देवता का अपितु उसके साथ चलने वाले सैकड़ों लोगों के खाने-पीने का

प्रबंध भी गृहस्वामी करता है। यदि देवता किसी एक गाँव में ठहर जाए तो रात के खाने-पीने का सारा खर्च उस गाँव के वासियों को समान रूप से उठाना पड़ता है। कई लोग घेपङ देवता को उठाकर अपने घर का चक्कर भी लगवाते हैं ताकि भूत-प्रेत की छाया घर पर न पड़े।

घोंडी : घंटी। यह काँसे या पीतल की बनी होती है। उन्नति आठ अंगुल तक की होती है। मूलभाग से मुखभाग की परिधि ज़्यादा होती है। प्रासाद के ऊपर एक दंड होता है। प्रासाद के गर्भ को हाथ में लेकर वादन करते हैं। संपूर्ण हिमाचल में देवताओं के पूजन में इसका वादन आवश्यक समझा जाता है। यह विशेषकर देवता के गूर के पास होती है। इसे 'धौड़छ' के साथ ही प्रयोग किया जाता है, इसलिए ये दोनों शब्द प्रायः घोंडी-धौड़छ रूप में संयुक्त रूप से प्रयोग हैं। कुल्लू क्षेत्र में गूर बायें हाथ में 'धौड़छ' से देवता को धूप देता है और दायें हाथ से लगातार घंटी बजाता रहता है। कई जगह बायें हाथ में घंटी और दायें हाथ में 'धौड़छ' ले कर पूजा की जाती है। मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर हर घर में देवता को धूप देने की परंपरा है, लेकिन घरों में घंटी नहीं बजाते, केवल 'धौड़छ' से धूप देते हैं। मंदिर, देवालय में तोरणद्वार के साथ छोटी-बड़ी विविध आकृतियों की घंटियाँ देखने को मिलती हैं। प्रत्येक श्रद्धालु जब मंदिर में प्रवेश करता है तो घंटे को सर्वप्रथम बजाने के बाद ही उपास्य देव तक पहुँचता है। पूजा-अर्चना करके जब वहाँ से लौटने लगता है तब भी मुख्य द्वार पर लटकते हुए घंटे को बजाने के बाद ही निकलता है। भक्तजनों द्वारा मनोकामना पूरी होने पर देवताओं को घंटियाँ भेंट करने की परंपरा अत्यधिक लोकप्रिय है। इसे **घांडे** और **टिणी-मिणी** भी कहते हैं। यह देवता के साथ हर जगह ले जाई जाती है जहाँ-जहाँ भी देवता जाता है।

घौघरु : छोटा घाघरा। देवता के रथ के सबसे नीचे के भाग में इसे पहनाया जाता है। यह रेशमी वस्त्र का बना होता है।

चंगोड़ी : देवताओं की तरफ से जनता पर लगाया गया एक तरह का टैक्स। रबी व खरीफ दोनों फसलों के पकने पर 'हार' के प्रत्येक परिवार को कुछ अनाज देवता के भंडार में जमा करना पड़ता है। यह कहीं एक पत्था, कहीं दो पत्था या कहीं अधिक होता है। अनाज की उगाही करने वाला व्यक्ति हर घर में जाता है तथा इसे इकट्ठा करके देव भंडार में भंडारी के पास जमा करता है। जो परिवार अनाज नहीं दे सकते, वे उसके मूल्य के बराबर रुपये देते हैं। इस तरह प्रत्येक फसल पर उगाहे अन्न व रुपये को चंगोड़ी कहते हैं। शिमला ज़िला में इसे **कूत** या **माढ़ी** कहते हैं। कई देवताओं के यहाँ अब अनाज देने की परंपरा खत्म हो गई है। वहाँ अब चंगोड़ी के रूप में निश्चित रुपये दिए जाते हैं। लोक में सुख-शांति के लिए

आयोजित पूजा, हवन, छिद्रा आदि के समय जो अनाज की टोकरी रखी जाती है, उसे भी चंगोड़ी कहते हैं। इस पर गूर, पुजारी, नौड़ का अधिकार होता है। जब देवता को नए स्थान में कहीं बैठाया जाता है वहाँ भी सबसे पहले जो अन्न बिछा दिया जाता है, उसे भी चंगोड़ी कहते हैं।

चड़ावण : चढ़ावा। पूजा में देवता को चढ़ाई जाने वाली सामग्री। देवता से सम्बंधित पर्व और त्योहारों के अवसर पर जो ब्राह्मण देवता की स्तुति करते हैं, उन्हें इसके बदले में यजमानों द्वारा जो पारिश्रमिक दिया जाता है, उसे चड़ावण कहा जाता है।

चदावल : दे. पचाउल।

चनण कटोरी : चाँदी, ताँबे या पीतल की बनी कटोरी, जिसमें देवता को लगाने के लिए कुंगू या चंदन घिस कर रखा जाता है।

चनणी : बड़ा तंबू। जब देवता यात्रा पर निकलते हैं तो अपने साथ चनणी भी ले जाते हैं। पड़ाव में जहाँ देव मंदिर नहीं होते वहाँ देवता इसी में ठहरते हैं।

चफाड़ पूजा : धूमरी देवी पूजा का एक विधान जिसमें बकरी की बलि गाँव से दूर एक ऐसे स्थान पर दी जाती है जहाँ वृक्ष रहित ऊँचा टीला हो। टीले पर बकरी को काटकर उसके चार टुकड़े किए जाते हैं। तांत्रिक या 'गूर' मंत्रों के उच्चारण के साथ मांस के उन चार टुकड़ों को चारों दिशाओं में फेंकते हैं। उसी समय आकाश से चीलों का दल उतरता है और मांस के टुकड़ों पर टूट पड़ता है। इसके अतिरिक्त देवी के निमित्त मीठे रोट का भोग भी लगाया जाता है, जिसे नैवेद्य के रूप में पूरे गाँव में बाँटा जाता है। पूजा में गुग्गुल धूप के अतिरिक्त 'न्यार' व 'रखाड़' का धूप जलाना भी आवश्यक समझा जाता है। मौली में चार गाँठें लगाकर उसे किसी वृक्ष पर लटकाया जाता है। इसके अतिरिक्त पूजा वाले स्थान के चारों ओर परानण (लाल मिट्टी) या सिंदूर की एक कार (रेखा) खींचना भी आवश्यक समझा जाता है। टोने के रूप में एक मशाल पर 'बटावा' (देवदार का पराग) को फेंकने का विधान है। क्योंकि धूमरी एक क्रूर देवी है अतः इसे पुनः अपने स्थान तक भेजने के लिए यह टोना करना आवश्यक समझा जाता है।

चरणामत : देवमूर्ति को स्नान कराया हुआ जल। देवालयों में पुजारी प्रायः इसे ताँबे के पात्र में रख कर सभी दर्शनार्थी भक्तों को प्रदान करता है, जिसका आचमन कर श्रद्धालु प्रसन्न हो जाते हैं तथा आंशिक जल कणों को अपने सिर पर लगा कर अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं।

चराग : देवदार, चील आदि की बिरोज़ायुक्त लकड़ी को बारीक व लंबा चीर कर इन्हें मुट्ठी भर बाँध कर बनाई गई मशाल। इन्हें रात्रिजागरण और रात के समय देवयात्रा के दौरान रोशनी के लिए प्रयोग में लाया जाता है। मशाल उठाने का काम परंपरा से निर्धारित लोग करते हैं।

चरागसी : चराग यानी मशाल को उठाने वाले। चराग का प्रबंध प्रायः हरिजन करते हैं परंतु उनको जलाकर रथ और गूर के साथ-साथ चलना चरागसी का काम होता है।

चरुआ : यह एक लोहे की कड़ाही या पीतल का पतीला होता है। जब देवता की तरफ से भंडारा दिया जाता है तो सर्वप्रथम इसमें ही अन्न पकता है। देवता की ओर से खिलाया जाने वाला भोजन भी चरुआ कहलाता है। विशेष देवोत्सव में ऐसा भोजन देवता की ओर से सभी उपस्थित व्यक्तियों को दिया जाता है, जो देवस्थल में ही बनाया जाता है।

चाकर : बिना वेतन का नौकर। देवता का उपासक जो पारिश्रमिक लिए बगैर मंदिर में देवता की सेवा करता है, वह भी चाकर है। कुल्लू में मलाणा के जमलू देवता की कोर अर्थात् संसद के लिए वोट या मतदान देने का अधिकार प्राप्त व्यक्ति भी चाकर कहलाता है।

चाकरी : देवता के प्रति निस्स्वार्थ भाव से की गई सेवा। देवी-देवता के पास श्रद्धा-भक्ति से दी गई उपस्थिति को चाकरी कहते हैं। इसमें लोग देवी-देवता की कृपादृष्टि की कामना से मेले में शामिल होकर निष्काम भाव से कार्य करते हैं।

चानो : एक सिद्ध पुरुष। कहते हैं कि ये कानो, बानो, मानो और चानो चार भाई थे। इनके पिता का नाम चन्दगलास तथा दादा का नाम महासुन था। एक बार ये चारों भाई तीर्थ यात्रा के लिए निकले। रास्ते में जब इन्हें भूख लगी तो ये भोजन पकाने के लिए पानी ढूँढने निकले। इन्हें तालाब में एक हथिनी मरी पड़ी दिखाई दी। चानो सभी भाइयों में सबसे अधिक ताकतवर था। अतः उसके भाइयों ने उसे हथिनी को तालाब से बाहर निकाल फेंकने को कहा। सिद्ध चानो ने उनकी आज्ञा का पालन करते हुए हथिनी को तालाब से निकाल कर दूर फेंक दिया। इसके बाद जब वे चारों भाई खाना खाने बैठे तो चानो के अन्य भाइयों ने उसे हथिनी को उठाने के कारण अछूत मान कर साथ खाने और रखने से इनकार कर दिया।

अन्य जनश्रुति के अनुसार चानो मथुरा के राजा कंस का पहलवान था। एक बार कंस के दरबार में श्रीकृष्ण और सिद्ध चानो के बीच मल्लयुद्ध हुआ, जो

ढाई दिनों तक चलता रहा। दोनों योद्धा बराबरी पर लड़ते रहे। श्री कृष्ण को लगा कि चानो को हराना मुश्किल है, इसलिए उन्होंने कूटनीति से काम लेते हुए उससे ढाई घड़ी की मोहलत माँगी। तब वह मोहिनी रूप बनाकर रात के समय चानो की पत्नी लूणा के पास उसको हराने का राज़ पूछने चले गये, लेकिन असफल रहे। श्रीकृष्ण ने अपने असली रूप में प्रकट हो कर लूणा से वादा किया कि वह चानो को मारने के बाद उससे शादी करेंगे। तब लूणा ने बताया कि चानो की जड़े पाताल में तथा चोटी अंबर में है। श्रीकृष्ण ने जड़ें काटने के लिए दीमक तथा चोटी काटने के लिए चूहे भेजे। अन्ततः श्री कृष्ण के हाथों चानो धराशायी हो गया। श्री कृष्ण ने उसे वरदान दिया कि कलियुग में वह चानो देवता के रूप में पूजनीय होगा।

हिमाचल प्रदेश के ज़िला कांगड़ा में परागपुर के निकट डांगरा नामक स्थान पर चानो सिद्ध का मंदिर है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह मूलतः चाणूर यक्ष है जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था और कृष्ण ने उसे मार दिया था। चानो सिद्ध की पूजा प्रमुखतः बरड़ और डूम लोग करते हैं। इसे कलियुग का प्रबल देवता माना गया है। आपदाओं के निवारक होने के साथ-साथ इसे पशु रक्षक देवता के रूप में भी मनाया जाता है। अपने साथ हुए अन्याय को लेकर यदि कोई व्यक्ति सच्ची श्रद्धा से सिद्ध चानो का स्मरण करे तो अन्याय करने वाले पक्ष को आपदा का सामना करना पड़ता है। यदि किसी व्यक्ति को हानि पहुँचानी हो तो उसका नाम लेते हुए चानो के मंदिर में उलटा झाड़ू लगाने से अवश्य उसका नुकसान होता है।

चिड़ग : लकड़ी का वह ढाँचा जिसमें सुंदर रंगीन वस्त्र, आभूषण और मोहरे सजाकर रथ का रूप दिया जाता है। यह ढाँचा प्रायः देवदार, दरल और घा वृक्षों, भेखल झाड़ी तथा बाँस का बनाया जाता है। प्रत्येक देवता का एक निर्धारित वन क्षेत्र होता है, जहाँ से यह लकड़ी लाई जाती है। जब कभी चिड़ग पुराना हो जाए या उसे 'ज़ूठ' लगे तो देवता स्वयं नया चिड़ग बनाने की इच्छा प्रकट करता है। वह स्वयं या गूर के माध्यम से वृक्ष विशेष को चुनता है। वृक्ष को काटने से पहले बकरे की बलि दी जाती है और तब उसे गिरा कर चिड़ग तैयार किया जाता है। इसे बड़ी कलाकारी के साथ बनाया जाता है और इसके भिन्न स्वरूप होते हैं। कंधे पर उठाए जाने वाले देवताओं के चिड़ग का मूलाधार प्रायः ढाई फुट लंबा, दो फुट चौड़ा और दो फुट ऊँचा बक्स (बीच से खोखला न होकर ठोस) होता है। इसे पालक कहते हैं। बक्स के आधार चारों कोनों पर 5-6 इंच के धातु मढ़े पावे लगे होते हैं। बक्स से ऊपर के आकार में विशिष्टता और भिन्नता होती है। किन्नौर, मंडी, सिराज आदि क्षेत्रों में, जहाँ रथ सीधे होते हैं, के बक्स के ऊपर

लगभग तीन फुट का किंचित् बारीक गोल गला बना होता है जिसे शीव कहते हैं, में मोहरे लगाए जाते हैं। उसके ऊपर पाँच फुट परिधि का गोल सिर बना होता है जिस पर 20-30 इंच परिधि का छत्र अलंकृत किया जाता है, वहाँ कुल्लू क्षेत्र के रथ मूलाधार से ऊपर पीछे की ओर झुके ढलवाँ होते हैं। लकड़ी को आगे से तराशा जाता है परंतु चौड़ाई पूरे तख्त की समान रहती है। इसी भाग पर सोने-चाँदी के मोहरे लगे होते हैं। इस शैली के रथों के शिखर पर छत्र नहीं होते। मुखौटों के चारों ओर चाँदी की पट्टिका लगी होती है, जिसके पीछे सजावट के लिए रंग-बिरंगे वस्त्र लगाए जाते हैं। सिर पर उठाए जाने वाले देवताओं के रथ का मूल ढाँचा प्रायः दो-ढाई फुट लंबा, नौ इंच मोटा और चौड़ा होता है। बहुत से देवताओं के रथ का यह ढाँचा भेखल का होता है और कुछ का बाँस का बना होता है जिसे **करंडू** या **'कोंडू'** कहते हैं। यह रथों की सबसे प्राचीन शैली है। इसमें देवता का प्रमुख मोहरा सजाया जाता है।

चिड़ी : चिड़िया। मंदिर के दरवाज़े की चौखट या स्तंभों पर कील से जोड़ी गई लोहे आदि धातु की बनी उड़ती चिड़िया को भी चिड़ी कहते हैं। यह प्रायः उस व्यक्ति ने भेंट में दी होती है जिसके सिर पर उड़ते पक्षी विशेषतः कौए या चील ने बीट किया हो। शकुनी पक्षी का किसी व्यक्ति पर बीटना अपशकुन होता है और किसी घोर कष्ट या विपत्ति का सूचक माना जाता है, इसी के निवारण हेतु लोहे की चिड़िया मंदिर में चढ़ाई जाती है।

चि़रोनिङ् : दे. भारथा।

चुलू डालना : दे. पाची।

चूड़ी : काँच, लाख, सोने, हाथीदाँत आदि का बना वृत्ताकार आभूषण, जिसे स्त्रियाँ कलाई पर पहनती हैं। देवी के रथ की आगल़ में भी स्वर्ण या रजत निर्मित चूड़ी पहनाई जाती है जो लगभग तीन-चार सेंटीमीटर मोटी-चौड़ी पतरी की बनती है। यह बीच से प्रायः अधिक चौड़ी होती है।

चेरशी : प्रत्येक तीसरे वर्ष होने वाला लघु यज्ञ। लोकविश्वास है कि चेरशी दिए बिना देवी-देवता कुपित हो जाते हैं और प्रजा में व्याधि फैल जाती है व फसलें नष्ट हो जाती हैं। यह प्रथा ज़िला शिमला के ऊपरी भाग में प्रचलित है। इस अवसर पर पूजन से ज़्यादा महत्त्व बलि का होता है। चेरशी के लिए पहले से ही बकरे व मेढ़े पाले जाते हैं और चेरशी के दिन उन्हें देवता के निमित्त बलि चढ़ा दिया जाता है। कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से भी देवता के निमित्त चेरशी की मनौती कर उसे आमंत्रित करते हैं और बाजे-गाजे के साथ अपने घर लाते हैं।

रात को देवता उन्हीं के घर ठहरता है और प्रातः वहाँ से विदा होता है।

चेला : शिष्य। ऐसा व्यक्ति जिस पर किसी देवी-देवता का संचरण होता है। एक व्यक्ति केवल एक देवी या देवता का ही चेला होता है, इससे अधिक का नहीं। यह वृद्धावस्था से पूर्व अपने कुल के ज्येष्ठ व्यक्ति को पुश्त-दर-पुश्त चेला तैयार करता है। इस प्रथा में गुरु शिष्य परंपरा का बड़ा महत्त्व है। जब तक कोई व्यक्ति गुरु से दीक्षा नहीं लेता तब तक उसे वीर का दर्जा दिया जाता है और उसमें देवी-देवता की वाणी नहीं उतरती परंतु गुरु दीक्षा लेने के पश्चात् वह चेले की श्रेणी में आ जाता है और उसमें देववाणी उतर आती है। देवता चेले को ग्राहणू कहता है।

चोउली वीर : शिमला क्षेत्र के वीरों में चोउली वीर का नाम अनेक मंत्रों में आता है। इसका निशान प्रायः त्रिशूल होता है, जिससे उसका संबंध शिव से जोड़ा जाता है। यह जासूसी का कार्य करता है। यदि किसी की कोई वस्तु चोरी हो जाए तो उसका पता लगाने के लिए इसकी सहायता ली जाती है।

चोखा : शुद्धि। मांगलिक अवसरों, त्योहारों तथा देवता के आयोजन से पूर्व लोगों द्वारा घर के सभी छोटे-बड़े कपड़ों की सफाई की जाती है तथा घरों को गोबर और चिकनी मिट्टी से लीपकर पवित्र तथा स्वच्छ किया जाता है। स्वच्छता की इस प्रक्रिया को चोखा कहते हैं।

चोखारा : गाय के ब्याने पर प्रथमतः देवता के निमित्त शुद्धता के साथ संजोया गया दूध, घी आदि। इसकी एक निर्धारित मात्रा होती है, जिसके पूर्ण होने से पूर्व इसे स्वयं प्रयोग नहीं किया जाता। दे. शकोथा।

चोरङ्च : देवालय के प्राङ्गण के मध्य स्थापित चबूतरे पर चार स्तंभों के ऊपर छत डालकर बनाया गया स्थान विशेष। जब कोई देवोत्सव या विशेष पूजा होनी है तो देवता को मंदिर से बाहर निकाल कर यहीं विराजित किया जाता है, ताकि सारी प्रजा उसके दर्शन कर सके।

चौंरी : चंवर। चुरू अर्थात् सुरा गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा, जिसे चाँदी या ताँबे के बने मुट्ठे में जोड़ा जाता है। प्रायः धार्मिक उत्सवों में भगवान की मूर्ति पर चंवर डुलाकर उसके प्रति असीम आस्था, श्रद्धा और समर्पण का भाव व्यक्त किया जाता है। यह देवयात्रा में रथ के आस-पास तथा देवी-देवताओं की पूजा करते समय उन पर डुलाया जाता है। संभवतः इसका उद्देश्य यह होता है कि कोई कीटाणु, मक्खी आदि देवमूर्ति पर न बैठ जाए या धूल के कण उस मूर्ति पर न पड़ जाएँ। मेलों में सबसे आगे नाचने वाला व्यक्ति इसी चौंरी के साथ नृत्य

कर नृत्यदल का नेतृत्व करता है। कभी-कभी ग्राम्य देवता विशेष मेलों के अवसर पर किसी को सम्मानित करने के लिए उसे चंवर देकर नृत्य का नेतृत्व करने देता है।

चौघड़ी पूजा : हिमाचल प्रदेश में देवमंदिरों में चार समय की जाने वाली पूजा को चौघड़ी पूजा कहा जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में **प्रभाती**, मध्याह्न में **पाची**, संध्याकाल में **सधीवा** तथा रात्रि के समय **बेल**। प्रभाती पूजा में मात्र नगाड़ा बजाया जाता है। पाची अलग-अलग देवमंदिरों में 11.00 बजे से 4.00 बजे तक दिन में किसी भी समय की जाती है। इस पूजा में शंखध्वनि तथा समस्त तंतु व सुषिर वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। पुजारी हाथ में पूजापात्र लेकर 'छांवर' तथा घी के मिश्रण वाले धूप से पूजा करता है और साथ ही घंटी बजाता हुआ मंत्रोच्चारण भी करता है। शिरगुल और महेश्वर आदि देवताओं की पूजा मध्याह्न के आसपास तथा महासू देवता की पूजा 4.00 बजे के करीब की जाती है। शंखध्वनि के साथ पूजा की समाप्ति होती है।

सधीवा के समय मात्र नगाड़ा बजाया जाता है तथा पुजारी धूप-दीप से देवता का पूजन करता है। बेल रात्रि के समय की जाने वाली पूजा है, जिसमें रात्रि के लगभग 10.00 बजे नगाड़े पर नौपत ताल विभिन्न परन, तिहाइयों एवं लग्गियों के साथ बजाया जाता है। यहाँ एक विचित्र परंपरा यह है कि शिरगुल, महेश्वर, बिजट, महासू, बनाड़ तथा अन्य इसी कोटि के देवता जब अपनी देवयात्रा पर इलाके के भ्रमण पर निकलते हैं तो उनके मूल मंदिर में चौघड़ी पूजा नहीं होती है। देवता बिजट (इन्द्र) इस क्षेत्र का एक ऐसा देवता है, जिसके मंदिर में चारों समय की पूजाएँ अन्य देवताओं की पूजा से उलट की जाती हैं यानी अन्य क्षेत्रों में जो वाद्ययंत्र किसी व्यक्ति की मृत्यु के समय बजाए जाते हैं और मांगलिक अवसरों पर जिन्हें बजाया जाना निषिद्ध होता है, उन तालों पर बिजट देवता की पूजा की जाती है। ऐसा संभवतः इसलिए किया जाता है क्योंकि इंद्रलोक में मनुष्य मरणोपरांत ही प्रवेश करता है।

चौहन : दे. पौहल।

छंछाल : एक देव वाद्य। यह अष्टधातु से निर्मित होता है। इसके मुख का व्यास छः इंच होता है। यह मध्य में स्तनवत दो इंच उभरा होता है जिसके बीच से एक डोरी निकाली गई होती है। उसमें कपड़ा बाँध कर मुट्ठी से पकड़ने योग्य बना लिया जाता है। ये दो होती हैं, जिन्हें हाथों में लेकर टकराकर बजाया जाता है, जिससे छन्नाक की आवाज़ ध्वनित होती है। यह वाद्य कुल्लू में देवपूजन में बजाया जाता है।

छटाली : दे. छठाळी।

छठाळी : देवता का संदेशवाहक। जब भी देवता के पास कोई अनुष्ठान होना हो तो उसकी सूचना देने का कार्य छठाळी करता है। अनुसूचित जाति के लोग ही इस कार्य को करते हैं। मंदिर में आग जलाने तथा मशालें लाने का कार्य भी इसी का है। जब कभी कहीं बैठक या पंची हो तो कारदार छठाळी को बुलाकर इसके पास धूप देता है, जिसे वह कारदार के संदेश के साथ बैठक में बुलाए जाने वाले व्यक्ति को दे देता है। देवता के त्योहारों में कार्य करने के बदले उसे पके हुए चावल मिलते हैं। छठाळी को **छटाली, जठाली, बौसण** तथा **जेलता** भी कहते हैं। जिस देवी या देवता की हार पाँच-छह गाँवों में होती है, उसके एक से अधिक छठाळी हो सकते हैं।

छड़ी : बाँस, बेंत, लकड़ी आदि का बना पतला, लंबा डंडा। यह देवयात्रा का एक उपकरण है जिसके ऊपरी सिरे पर चाँदी या स्वर्ण की मूठ होती है। यह लगभग तीन से छह फुट लंबा होता है। इसे बाहर से चाँदी से मढ़ा जाता है, जिससे यह देखने में चाँदी का लगता है। जब देवता यात्रा पर निकलता है तो यह छड़ी साथ ले जाई जाती है। इसे छड़ीबरदार उठाते हैं।

छड़ूमू : देवरथ को उठाने वाले व्यक्ति। ये चार होते हैं, जिनमें से दो व्यक्ति अर्गलाओं से रथ को उठाते हैं और दो दायें-बायें से सहारा देते हैं।

छतर : दे. छौछ।

छतरङ् : दे. शीव।

छतरी : रंगीन कपड़े की बनी बड़े आकार की छतरी। जिन देवताओं के अपने रथ होते हैं, उनके निशान के रूप में यह देवता के रथ के आगे चलाई जाती है। इसे बाँस की बारीक छड़ों से बना कर रंगीन कपड़े से छाया जाता है। इसके ऊपर चाँदी का एक कलश लगा रहता है। छत्र पर प्रयोग होने वाले वस्त्र पर हाथी, घोड़े तथा सैनिक आदि के सुंदर चित्र अंकित रहते हैं तथा चारों ओर गहरे लाल रंग की किनारी लगाई जाती है, जिसे झालर कहते हैं।

छ़पोच़ : ग्राम देवता के देवालय के साथ बना वह कक्ष, जहाँ देवपूजा के लिए पूजन सामग्री तैयार की जाती है। कई बार इसे बैठक के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है।

छ़राउण : देववाद्य की विशेष धुन। देवता के गूर में देवत्व जगाने के लिए ढोल, नगारा, दमामा, भाणा आदि वाद्यों पर एक जोशीली धुन बजाई जाती है, जो इस प्रकार है– झेंउंपटा....। झेंओं... झेंओं....। इससे गूर 'छ़ेरिना' आरंभ करता है।

छ़लीट : सं. क्षरित>क्षलित>छ़लीट। यदि किसी देवमंदिर में बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू या चमड़े की कोई भी वस्तु ले जाई गई हो या मंदिर में रजस्वला स्त्री अथवा किसी निम्नवर्ग का व्यक्ति प्रवेश कर गया हो तो मंदिर अपवित्र हुआ माना जाता है। इसी तरह कुल्लू क्षेत्र के कुछ घरों और गाँवों में भी इस तरह का व्यक्ति प्रवेश कर जाए या तंबाकू, चमड़ा आदि लाया जाए तो वे भी अपवित्र हो जाते हैं। ऐसी अपवित्रता किसी के लिए प्राणघातक भी सिद्ध हो सकती है, कष्ट और अन्य हानियाँ तो हो ही जाती हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है। इससे बचने के लिए और अपवित्रता दूर करने के लिए भेड़-बकरे या मेमने की बलि दी जाती है और उसके रक्त का दूर्वा और कुशा से सारे मंदिर, घर-आँगन या गाँव में छिड़काव किया जाता है जिसे छ़लीट कहते हैं। इसका सारा व्यय दोषी व्यक्ति वहन करता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में बलि न देकर भेड़-बकरे का कान काटकर उसका लहू छिड़काया जाता है।

छांबर : देवता के आघ्रापण के लिए प्रयुक्त एक जंगली पौधा।

छाक : देवता के गूर और बजंतरियों को देवकार्य करने के फलस्वरूप दिया जाने वाला अन्न। बजंतरी एक विशेष जाति के लोग होते हैं अतः इन्हें प्रत्येक संक्रांति अथवा देवभोज में पका हुआ अन्न देना भी अनिवार्य होता है। इनकी निर्धारित छाक वाद्ययंत्र पर रखी जाती है। यह छाक इन्हें मेलों और त्योहारों के दौरान वाद्ययंत्र बजाने के एवज़ में दी जाती है।

छाबौ : देववाद्य रखने का एक उपकरण। यह गरवा नामक पौधे की टहनियों को चीरकर बुना हुआ एक लंबोतरा पात्र है, जिसके मुख पर ढक्कन लगा होता है। इसे पीठ पर उठाने के लिए इसमें रस्सी लगी होती है। जब देवता देव यात्रा या तीर्थयात्रा पर जाता है तो इस पात्र में देववाद्य—बांसुरी, ताली, ढैंकुली आदि रखकर ले जाए जाते हैं।

छिदरा : काहिका उत्सव में किया जाने वाला यज्ञ, जिसे नौड़ संपन्न करता है। इस धार्मिक कृत्य के आयोजन से देवता तथा मनुष्यों के सभी प्रकार के पाप धुल जाते हैं और ये सभी पाप नौड़ अपने ऊपर ले लेता है। छिदरा शब्द संस्कृत छिद्र का तद्भव रूप है और यहाँ भाव यह है कि दैनिक क्रियाकलापों तथा व्यस्त कार्यों के बीच मानव के आचरण और स्वभाव में जो छिद्र या अभाव पड़ जाता है या अनायास कोई पाप हो जाता है उससे मुक्ति। इसे करने के लिए नौड़ अपने पास रखे जौ के टोकरे से मुट्ठी भर दाने ले कर उस पर एक लंबा मंत्र पढ़ता है और मुँह से छिदरा कह कर मुट्ठी का अनाज सभी देवताओं के ऊपर फेंक देता है। ऐसा करने से देवता पाप से मुक्त हो जाते हैं। तब गूर, कारदार, पज़ियारा,

कठियाला आदि गोल दायरा बना कर नौड़ के गिर्द बैठते हैं। वे अपने दोनों हाथ खोल कर आगे फैलाते हैं। नौड़ उसी तरह मुट्ठी भर जौ लेता है, मंत्र पढ़ना आरंभ करता है और साथ ही उनके खुले हाथों पर दायरे में एक से आरंभ करके पूरे चक्कर में जौ डालता जाता है। अंत में छिदरा कह कर चारों ओर जौ फेंकता है। दूर बैठे लोग उन दानों को थामते हैं। कुछ इन्हें टोपी में लगा लेते हैं। कुछ घर लाते हैं। फिर ये उठकर चले जाते हैं और उतने ही अन्य लोग नौड़ के चारों ओर बैठ जाते हैं। हर व्यक्ति नौड़ के आगे फैलाए कपड़े पर पैसे भी फेंकता जाता है। सालभर के अंदर प्रसूता हुई स्त्रियाँ शुद्धि व अपने बच्चे की रक्षा हेतु इस अवसर पर नौड़ से जौ ले जाती हैं, जिसे **छौल भौरना** कहते हैं।

छुआ : देवता की दुहाई देकर दो व्यक्तियों या पक्षों का आपस में इतना वैर स्थापित होना कि एक दूसरे की छाया को छूने से भी परहेज़ करना। जब इनके बीच ज़मीन या संपत्ति आदि का लंबा झगड़ा हो और दोनों के बीच कोई फैसला न हो पा रहा हो तो दोनों में से एक या अपनी-अपनी सीमा में दोनों कह सकते हैं कि यदि तू नहीं मानता तो मैं देवता के पास छुआ भरूँगा। दूसरा कह देता है कि तू छुआ नहीं भरेगा तो मैं भरूँगा क्योंकि मैं सच्चा हूँ। इस तरह दोनों में से एक स्थानीय देवता के पास जाता है, बकरे की बलि देता है और प्रार्थना करता है कि क्योंकि दूसरा झूठा है, उसका हे देवता छे-नाश हो। ऐसा करने पर दोनों व्यक्ति और उनके परिवार के सदस्य एक-दूसरे से नहीं छूते, यहाँ तक कि एक दूसरे के साये से भी नहीं छूते। एक-दूसरे का छुआ पानी नहीं पीते और भोजन भी नहीं खाते। इस बीच दोनों में से किसी एक की हानि हो जाती और लगातार कष्ट होता है, परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु भी हो सकती है। तब वह व्यक्ति अपने आप को दोषी मानते हुए दूसरे को हरज़ाना या दंड देकर अपनी हार स्वीकार कर लेता है। तब 'छिदरा' द्वारा दोनों के बीच फैसला हो जाता है और पहले जैसे संबंध स्थापित हो जाते हैं।

छे-नाश : क्षय-नाश, सत्यानास। एक कठोर गाली। इस गाली में दो विरोधी पक्ष एक-दूसरे को बुरा-भला कहते हैं और देवता का नाम लेकर उससे दूसरे पक्ष का सर्वनाश करने के लिए अर्चना करते हैं कि उसका छे-नाश हो। ऐसा करने से देवता दोषी व्यक्ति का विध्वंस करता है।

छेरिङ टुक्कोर : छः मंगल वस्तुएँ। लद्दाख, लाहुल तथा किन्नौर के सभी गोन्पाओं के भित्तिचित्रों एवं अन्य कलाचित्रों में छः चित्रों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ये हैं—वयोवृद्ध मानव, लंबी आयु वाले पक्षी, हिरण, पर्वत, झरना तथा वृक्ष। इन्हें शांति, समृद्धि एवं दीर्घायु का प्रतीक माना जाता है।

छे़रिना : दे. उभरना।

छेला देणा : सामूहिक प्रीति भोज। मेले के समापन पर आमंत्रित देवताओं के सम्मान में सभी गाँववासियों द्वारा प्रीतिभोज दिया जाता है, जिसमें सभी हारियान व बजंत्री सम्मिलित होते हैं। इस प्रथा को छेला देणा कहा जाता है।

छेले बौकरे : देव न्याय की एक पद्धति। इसके अनुसार दो विरोधी दल अपने-अपने छेले (बकरी का बच्चा) या बकरे ले कर देव-स्थल में जाते हैं। वहाँ विशेष पूजा के बाद देवता का आह्वान कर उन पर पुष्प, अक्षत व जल फेंकते हैं। देव शक्ति के प्रभाव से दोषी व्यक्ति का बकरा मूर्च्छित होकर गिर जाता है, कदाचित् यह मर भी जाता है। तब दोष का आकलन करके देवता के कार्यकर्ता दंड निर्धारित करते हैं, जिसकी भरपाई दोषी व्यक्ति करता है, अन्यथा देवता उसे इससे भी बड़ी सज़ा देता है।

छेशु : लाहुल का एक त्योहार जिसमें गेमुर, शशुर तथा तिनन के गोन्पाओं में वर्ष में एक बार धार्मिक मेला लगता है और लामा लोग मुखौटा तथा विशेष वस्त्र पहन कर नृत्य करते हैं। यह नाथ ग्रन्थों में लिखित नियमों पर आधारित होता है।

छोईक्योङ सुङपा : धर्मरक्षक देवता। लाहुल में प्रत्येक घर में अपना-अपना छोईक्योङ सुङपा होता है। किसी का सुङपा महाकाल है और किसी की महाकाली। किसी के दोर्जछेदग, दोर्जयुडोनमा, जगयेन, थंडल आदि धर्मरक्षक देवता होते हैं। किसी भी कार्य को आरंभ करने से पूर्व इनकी पूजा की जाती है। घरों में सुङपा की मूर्ति या चित्र अवश्य होता है और यदि ये दोनों चीज़ें न हों तो वे अपने पूजागृह में चिह्न रूप में रूमाल के बराबर के रंग-बिरंगे वस्त्र दीवार पर टाँग कर रखते हैं। किसी शुभ कार्य के लिए बाहर जाने से पूर्व इन्हें दीपक अर्पित किया जाता है। वर्ष में एक बार इन देवताओं की सामूहिक पूजा होती है, जिसे कङसोल कहते हैं।

छोग्स : बौद्ध विहारों में प्रायः सारी पूजन सामग्री को छोग्स शब्द से अभिहित किया जाता है। छोग्स का शाब्दिक अर्थ होता है संभार अर्थात् पुण्य वस्तुएँ। छोग्स भी छोदपा एवं स्तोरमा की तरह सत्तू एवं मक्खन से बनाया जाता है परंतु इसके अतिरिक्त इसमें नारियल, गुड़, इलायची आदि को मिलाकर इसे गोल आकार दिया जाता है। इस पर एक विशेष प्रकार के लाल रंग का लेप लगा दिया जाता है। पूजा के पश्चात् इसे लोगों में बाँटा जाता है। यह स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होता है।

छोदनेस् : पारिवारिक पुरोहित। इसका पद निम्न होता है। यह गाँव के निश्चित

घरों में गृहस्थों के छोटे-मोटे धार्मिक कृत्यों को कराता है। इसका मुख्य कार्य है प्रत्येक निर्धारित घर में कम से कम महीने में एक बार साङ् नामक पूजा करना।

छोदपा : भोट देश तथा हिमालयीय क्षेत्रों के बौद्ध विहारों में छोदपा बनाने की प्रथा है। यह जौ या गेहूँ से बने सत्तू तथा मक्खन से बनाया जाता है। इसे देवता का प्रतीक माना जाता है। इसकी संख्या और आकार में भिन्नता पाई जाती है। छोदपा को बनाकर कई वर्षों तक रखा जा सकता है। यह अलग-अलग इष्ट देवता, धर्मपालों आदि के प्रतीक के रूप में विभिन्न आकार में बनाया जाता है। इसके बिना पूजा आलंबनहीन तथा अपूर्ण मानी जाती है।

छोदमे : दीपक। दीपक को प्रज्ञा का प्रतीक माना जाता है। गोन्पाओं में काफी मात्रा में दीपक जलते हुए देखे जाते हैं। गृहस्थ लोग भी अपने घरों में बुद्ध की मूर्ति एवं अन्य पूजनीय वस्तुओं के सामने दीपक जलाते हैं। यह धातु निर्मित अथवा मृण्मय होता है। गोन्पाओं में यह हमेशा जलता रहता है। गोन्पाओं में कुछ दीपक ऐसे होते हैं जो दिन-रात जलते रहते हैं। कुछ बड़े दीपक एक माह तक जलते रहते हैं, जबकि कुछ और भी बड़े दीपक सालों भर जलते रहते हैं। दीपक में प्रयुक्त सर्वोत्तम द्रव मक्खन को माना जाता है। इसके लिए ताज़ा मक्खन प्रयोग में लाया जाता है। दीपक में रुई की बत्ती डाली जाती है जबकि बड़े दीपक के लिए रुई के गुल के बीच लकड़ी का पतला टुकड़ा डालकर प्रयोग में लाते हैं जो ज़्यादा दिनों तक निर्बाध गति से जलता रहता है।

छोदा : शोधन। इसमें देवता द्वारा किसी कार्य के शुभ-अशुभ का विचार किया जाता है। किसी व्यक्ति पर कोई दुःख या संकट पड़ जाए तो घर में गूर को बुलाकर छोदा करवाया जाता है। गूर के आगे गोबर का चौका लगाकर 'धड़छ' में धूप जलाया जाता है और व्यक्ति स्वयं उसके समक्ष हाथ जोड़कर बैठता है। तब गूर अपने बायें हाथ पर काँसे की थाली में अक्षत और 'घुंभरू' लेकर दायें हाथ से काठी द्वारा थाली को बजाते हुए देवता का आह्वान कर प्रश्न लगाता है, फिर कष्ट का कारण जान कर उसका निवारण बताता है। इसी प्रकार शादी-विवाह आदि शुभ कार्य से पूर्व भी घर में छोदा अवश्य करवाया जाता है।

छोरतेन : स्तूप। प्रसिद्ध लामाओं के अवशेषों को सुरक्षित रखने के लिए पत्थर और मिट्टी से बनाए गए शंकु आकार के स्तंभों को छोरतेन कहा जाता है, जिसके ऊपर लकड़ी का एक और स्तंभ लगा होता है, जिसमें सबसे ऊपर कमल का फूल और उसके नीचे चाँद और सितारे बने होते हैं। स्तूप निर्माण की एक बहुप्रचलित एवं निश्चित परंपरा रही है। स्तूप निर्माण करते समय वस्तुतः अवशेषों को यथासंभव

मूल्यवान छोटे आकार की मंजूषा में रखा जाता है। इसमें हड्डियों और राख के साथ-साथ कुछ स्वर्ण, फिरोज़ा, अनाज के कुछ दाने, सफेद वस्त्र या भोजपत्र के ऊपर तिब्बती भाषा में लिखे कुछ मंत्र इत्यादि रखे जाते हैं। पहले ये बड़े-बड़े लामाओं के अवशेषों के ऊपर ही बनाए जाते थे परंतु कालांतर में अन्य धनी लोगों ने भी छोरतेन बनाने आरंभ कर दिए। बनावट के आधार पर छोरतेन आठ प्रकार के होते हैं, जो जन्म से निर्वाण तक बुद्ध की जीवन लीलाओं को चित्रित करते हैं। संपूर्ण लाहुल में केवल एक स्थान ही ऐसा है जहाँ आठ प्रकार के ये सभी छोरतेन एक साथ एक स्थान पर देखे जा सकते हैं। वह स्थान है भागा वादी के गुमरंग ग्राम का तोम्बा गोन्पा। छोरतेन के आठ प्रकार के होने के पीछे जनश्रुति है कि जब भगवान् बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था, उस समय उनकी हड्डियों और अन्य अवशेषों को आठ नरेश ले गए थे। तब से लेकर आज तक ये आठ प्रकार के ही बनते हैं।

छोरतेन बौद्ध साधना एवं सांस्कृतिक चेतना के लिए प्रेरणास्रोत रहे हैं। बौद्ध समाज में इस की नियमित पूजा होती है। इन पर श्रद्धापूर्वक दीपक, धूप, अगरबत्ती वगैरह जलाते हैं। इससे उनकी श्रद्धा और प्रगाढ़ होती है। प्रायः छोरतेनों के चारों ओर चंक्रमण स्थल बना होता है, जिसकी भक्तजन परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार छोरतेन चित्तशुद्धि का हेतु बनता है। इसे बनाने की परंपरा पहले बौद्धों में ही थी परंतु अब लाहुल के हिंदुओं ने भी छोरतेन बनाने आरंभ कर दिये हैं।

छोसकोर छोरतेन : भोट परंपरा के अनुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। यह भगवान बुद्ध के सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन करने का प्रतीक माना जाता है। इसे धर्मचक्र प्रवर्तन स्तूप कहते हैं।

छोसडुल छोरतेन : भोट परंपरा के अनुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। भगवान् बुद्ध ने जनसामान्य के अनुरोध पर अपनी ऋद्धि या चमत्कार बल का प्रदर्शन किया था, यह उसी का प्रतीक है।

छोहोत : पवित्रता रखने का बंधन। प्रायः ऊँचे स्थानों पर रहने वाले देवताओं के परिसर में हर प्रकार की पवित्रता रखने का बंधन होता है।

छौछ : छत्र। राजाओं के ऊपर लगायी जाने वाली राजचिह्नरूप छतरी तथा देवता के रथ के शीर्ष पर सुसज्जित छत्र। यह सोने या चाँदी की होती है। अनेक देवताओं विशेषतः सिर पर उठाए जाने वाले देवताओं के रथ में तीन छौछें होती हैं। इनमें से बीच की छौछ स्वर्णनिर्मित होती है। यह अन्य दो से बड़ी भी होती है। इसके दोनों ओर चाँदी की छौछें सजी होती हैं।

छौल भौरना : दे. छिदरा।

छूवाखंडी : दे. शैगुड़ा।

जख : यक्ष, एक वीर। एक देवयोनि विशेष जो धनसंपत्ति के देवता कुबेर के सेवक हैं तथा उसके कोश व उद्यानों की रक्षा करते हैं। अनेक विद्वानों का मानना है कि वीर पूजा का मूलाधार यक्ष पूजा है। वीरों का जहाँ वीरता से संबंध रहा है वहाँ रक्षा उनका प्रमुख कार्य है। जख को पशुधन का संरक्षक माना जाता है और जब कभी गाय-बैल, भेड़ बकरियों में कोई बीमारी फैल जाए तो जख की पूजा की जाती है। यही नहीं जब भी गाय ब्याती है तो उसके थन से पहला दूध स्थानीय वीर या जख के नाम पर भूमि पर गिरा दिया जाता है, फिर तीन या पाँच दिनों तक केवल बछिया-बछड़े को पिलाया जाता है। उसके बाद भी दूध को तब तक प्रयोग में नहीं लाया जाता जब तक कि जख को चढ़ाए जाने वाले घी की अपेक्षित मात्रा पूरी न हो जाए। उस घी को सुरक्षित रखा जाता है और विशेष अवसर पर जख के निमित्त चढ़ाया जाता है। रजवाड़ों के समय में भी राजा गाय-भैंस पर *कार*, *मियांगणा* या *नौणी* नाम से दूध-कर लिया करते थे परंतु पहले कुछ दिनों के दूध पर कर नहीं लिया जाता था ताकि वीर जख को चढ़ाए जाने वाले घी की मात्रा पूरी हो जाए। जख के निमित्त रखे गए घी को 'सूचा' या 'चोखा रा' कहा जाता है।

चंबा क्षेत्र में यह भी विश्वास है कि हर दुधारू पशु का विशेष जख होता है। इसलिए जब कभी कोई गाय आदि खरीदता है तो उसके जख का नाम पूछ लिया जाता है ताकि उसी नाम से उसे पूजा जाए।

शिवालिक क्षेत्र में भाद्रपद मास में 'थेईयों' के दिनों में इसकी पूजा की जाती है। जख की पूजा के निमित्त दो लड़कों को गेरू और लाल रंग का टीका लगाकर मवेशीखाने के बाहर पटड़ियों पर खड़ा कर दिया जाता है। उनके पैरों पर पत्तलें रखकर उनमें खीर व अन्य पकवान डाले जाते हैं तथा उन दोनों लड़कों के सिरों को आपस में टकराकर पुशओं की खुशहाली की कामना करते हुए पैरों पर रखी पत्तलों को बदलकर एक-दूसरे को दे दिया जाता है। मान्यता है कि इससे जख प्रसन्न होता है। **जख** को **जछ** भी कहते हैं। शिमला, कुल्लू, मंडी, कांगड़ा आदि क्षेत्रों में इसे **जाख** और **जाछ** नाम से भी पूजा जाता है। कमरूनाग को मूलतः रत्न जच्छ माना जाता है।

जगणाह : गृह देवता। इस का कोई गूर नहीं होता। प्रत्येक घर की सबसे ऊपर की मंज़िल में इसका स्थान होता है। इसकी कोई प्रतिमा नहीं होती। इसकी निराकार रूप में पूजा की जाती है। नई फसल आने पर व विशेष अवसर पर पक्वान्न का प्रसाद जगणाह के पास रखकर सभी देवी-देवताओं को भेंट किया जाता है। परिवार

में जब घर का बंटवारा होता है, तो नए घर में भी उसे स्थान दिया जाता है। तब उसकी पूजा नए व पुराने दोनों घरों में होती है। जगणाह के रुष्ट होने पर परिवार को भारी संकट का सामना करना पड़ता है।

जगती पौट : कुल्लू ज़िला के नग्गर गाँव में स्थित पवित्र पत्थर जिस पर जगती पूछ होती है। यह 5 फुट x 8 फुट x 6 फुट के आकार की शिला है। इसे सभी देवी-देवताओं का सिंहासन माना जाता है। जब पूरे जगत पर किसी संकट के आने की संभावना होती है तो संपूर्ण कुल्लू क्षेत्र के देवता यहाँ इकट्ठे हो कर जगत के कल्याण के लिए विचार-विमर्श करते हैं। किंवदंती है कि अनादिकाल में यह शिला संसार के समस्त देवी-देवताओं ने मधुमक्खियों का रूप धारण करके भृगुतुंग पहाड़ी के एक भाग 'ब्राम ढौग', जो मनाली स्थित बाहंग गाँव के पास है, से काटकर लाई और नग्गर में स्थापित की।

ज़गा : दे. भांगर।

जङ्छुब छोरतेन : संबोधि स्तूप। भोट परंपरा के अनुसार यह स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक है। इसे भगवान् बुद्ध को बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे संबोधि प्राप्त करने का प्रतीक माना जाता है।

जछ : दे. जख।

जठाली : दे. छठाळी।

जठेरा : इसे देवता के कारदार या 'हारियान' द्वारा चुना जाता है। देव त्योहारों और उत्सवों में इसकी मुख्य भूमिका होती है। उत्सव में देव कार्य की पूरी देखरेख करना तथा मेलों एवं जात्र में अनुशासन बनाये रखना इसका ही कार्य होता है। इनकी संख्या देवता की 'हार' के अनुसार निश्चित होती है। अगर छोटी हार हो तो दो या तीन और यदि हार बड़ी हो तो चार-पाँच जठेरे भी चुने जाते हैं। इनका कार्यकाल प्रायः एक वर्ष होता है, लेकिन कार्य ठीक न करने पर हार द्वारा इन्हें समय से पूर्व भी पद से हटाया जा सकता है। जठेरों का काम पुलिस कर्मचारी जैसा होता है। अतः ये अपने हाथ में डंडे ले कर लोगों को देवता के स्थानों से दूर ही रखते हैं। यदि किसी ने वर्जित देव स्थल को छूआ तो इन्हें अपने धन से बकरा काटना पड़ता है। देवता के फैसले पर अमल करवाना इन्हीं का काम होता है। ये काहिका उत्सव में 'नौड़ वदाही' के समय किसी को उसके नज़दीक नहीं आने देते। देवता के सभी मामले यही सुलझाते हैं। यदि कोई कारकुन अपना कार्य ठीक से न निभा रहा हो तो ये उसे पद से हटा सकते हैं या कोई जुर्माना लगा सकते हैं। देवता के भंडार की पहरेदारी

भी यही करते हैं। यात्रा के समय देवता की घंटी तथा 'धड़छ' यही उठाते हैं। इन्हें देवता के ख़ज़ाने से कुछ राशि वेतन के रूप में मिलती है।

जमलू : कुल्लू और मंडी ज़िला के देवताओं की एक श्रेणी। कुछ विद्वान् इन्हें जमदग्नि ऋषि मानते हैं। मलाणा का जमलू, शियाह का जमदग्नि, सीस का जमलू आदि निश्चय ही जमदग्नि के रूप हैं, परंतु सभी जमलू जमदग्नि नहीं हैं। कुछ विद्वान् इन्हें तिब्बती जाम्बल या जमला से संबंधित मानते हैं परंतु यह धारणा भी उचित नहीं है। जमला मूलरूप में भू-देवता है और इसका प्रतीक सीधा डंडा, छड़ी या लंबा डंडा होता है, जिसके ऊपर त्रिशूल जुड़ा रहता है। इसके विपरीत जमलू देऊ भू-देवता नहीं ग्राम देवता हैं तथा सभी रथ रूप में हैं, जिनके रथ में मोहरे सजे होते हैं। वस्तुतः जमलू देऊ यमलोक के प्रतिनिधि यमल-जमलू हैं जिनका सीधा संबंध वेदों में वर्णित नचिकेता के आख्यान से जुड़ता है। नचिकेता ने जब अपने पिता वाजश्रवस को यज्ञ में सौ गौओं के दान करने से रोका क्योंकि वे बहुत बूढ़ी, कमज़ोर और दूध विहीन थीं और उनके बदले में अपने आप को दान में दिए जाने के लिए प्रस्तुत किया तो पिता को क्रोध आया और उसने बेटे को यम को सौंप दिया। नचिकेता जब यमपुरी पहुँचा तो यम वहाँ नहीं था और नचिकेता तीन दिन-रात भूखा प्यासा यम की प्रतीक्षा में रहा। जब यमराज आया तो उसे बड़ा दुःख हुआ तथा प्रायश्चित्त के रूप में उसने नचिकेता को तीन वरदान दिए– पहला यह कि जब वह वापस घर जाए तो उसका पिता उससे क्रुद्ध नहीं होंगे, दूसरा नचिकेता को यज्ञ के रहस्य की पूरी जानकारी दी, तीसरा जीवन और मृत्यु के बाद की दशा का ज्ञान बतलाया। विश्वास किया जाता है कि इस घटना से यम इतना दुःखी हुआ कि उसने पृथ्वी पर विचरते अपने प्रतिनिधियों को यमलोक से सदा के लिए निकाल दिया क्योंकि उन्होंने एक व्यक्ति को असमय ही यमपुरी में प्रवेश करने दिया। यही प्रतिनिधि बाद में पृथ्वी पर पूजे जाने लगे और यमलु अथवा जमलू कहलाए।

जमाण : देवता का रथ। यह लकड़ी का बना लगभग 3 फुट लंबा, 3 फुट चौड़ा और 6 फ़ुट ऊँचा ऊपर की ओर ढलानदार, तिरछा तथा संकरा होता है। इस पर देवता के मोहरे, वस्त्र, पगड़ी आदि सुसज्जित किए जाते हैं।

ज़माण : अर्गला। देवता के रथ के निचले भाग के बीचों-बीच गुज़रती हुई दो गोल लंबी छड़ें। ये स्थानीय वृक्ष अखरोट, दरल, खड़क या देवदार की बनी होती हैं, जिनकी लकड़ी कठोर और लचीली होती है। इनकी लंबाई रथ के भार के अनुसार छः से बीस फुट तक होती है और गोलाई लगभग छः इंच होती है। इन्हीं के सहारे रथ को कंधे पर रखकर उठाया और नचाया जाता है। कुछ क्षेत्रों

में इन ज़माणों के ऊपर नक्काशीदार चाँदी की परत चढ़ी होती है। इन्हें **आगल़** भी कहते हैं।

जलेब : जलवा। शोभा यात्रा। मंडी शिवरात्रि और कुल्लू दशहरा आदि प्रमुख मेलों और उत्सवों में राजाओं और देवी-देवताओं की मूल-मंदिरों या स्थानों से मेला स्थान तक की विशिष्ट यात्रा जलेब कहलाती है।

जलैःरी : जलहरी। शिवलिङ्ग के ऊपर लटकाया जाने वाला जलपूर्ण पात्र, जिसके पेंदे में एक छेद होता है, जिसमें दूर्वा या मौली लगाई जाती है ताकि पानी की एक-एक बूँद शिवलिंग पर टपकती रहे।

जलौहर : दे. जलैःरी।

जाख : दे. जख।

जागरा : जागरण। यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्थानीय देवता के निमित्त किया जाने वाला महत्त्वपूर्ण धार्मिक उत्सव है। इसका लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन में विशेष अर्थ है। इसका संबंध न केवल रात को जागने से है बल्कि इसमें देवता की प्रभुता और महानता की स्तुति की जाती है। मुहूर्त के अनुसार जागरा से तीन दिन पहले चरू की स्थापना की जाती है और उसे घी से भरा जाता है। जागरा वाली संध्या को देव-पूजन किया जाता है और मध्यरात्रि के समय वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ रथ पर विराजित देवता की शोभायात्रा निकलती है। रथ पर देवता के स्वर्ण एवं रजत निर्मित मुखौटे विराजित होते हैं, जिन्हें सुंदर वस्त्रों व आभूषणों से सजाया होता है। शोभायात्रा में सबसे आगे देवता का गूर, कारदार, पुरोहित, भंडारी आदि चलते हैं और उनके पीछे देवता के असंख्य भक्त एवं श्रद्धालु । उनके हाथ में बिरोज़ायुक्त जलती हुई मशालें होती हैं, जिन्हें स्थानीय बोली में भल़याठी, डा या दुल़चा कहते हैं। यात्रा गाँव से आरंभ होती है और देव स्थान तक जाती है। यह दृश्य दर्शनीय होता है। गूर के हाथ में 'धंगियारा' होता है, जिसमें स्थानीय सुगंधित धूप जल रहा होता है। उसने चोगा पहना होता है और उसके लंबे बाल लहरा रहे होते हैं। तब गूर देवता के आगमन की कथा सुनाता है जिसे भाखा कहते हैं। फिर लय के साथ हिलते हुए वह पूजा करता है। उस समय उसके हाथ में तलवार, गज, चिमटा होता है। वह अच्छी-बुरी भविष्यवाणी करता है और प्रजा को प्राकृतिक प्रकोपों से बचने की चेतावनी देता है। अगले दिन 'कार' की रस्म होती है। इसमें देवता रथ में बैठ कर बाजे-गाजे के साथ अपने क्षेत्र के चारों ओर 'कार' लगाता है। उसके बाद भोज का आयोजन होता है।

ज़ागा : धार्मिक स्थान। हिमाचल प्रदेश के ऊपरी क्षेत्रों में जिस स्थान पर अधिष्ठात्री देवी

जिसे काली का रूप माना जाता है, की स्थापना की जाती है, उसे ज़ागा कहते हैं। वहाँ देवी के प्रतीक स्वरूप छोटा सा मंदिर बनाया जाता है या कोई पत्थर रखा जाता है।

जाच भाटणा : देवता को घर पर आमंत्रित करना। किसी भी कार्य की सफलता के लिए लोग देवता के निमित्त जाच भाटते हैं कि कार्य सफल होने पर देवता को घर बुलाएँगे। कार्य के पूर्ण हो जाने पर देवता को आमंत्रित किया जाता है और उसके आने पर उसके ऊपर से बकरा या मेढ़ा वार कर फेंका जाता है। उस जाच में देवता के साथ तीन चार सौ लोग भी आते हैं, जिनको आमंत्रक द्वारा भोज दिया जाता है। तीन-चार बकरों की बलि दी जाती है।

जाछ : दे. जख।

जिंगार : देवता से प्रार्थना करके किसी को दिया जाने वाला मारक अभिशाप।

जीऊमुख : जीवमुख। प्रत्येक देवता का मुख्य मोहरा जो मूल रूप में प्रकट हुआ होता है, को जीऊ मुख कहते हैं। कुछ देवताओं के जीऊमुख हल चलाते हुए हल की नोक के साथ प्रकट हुए हैं, कुछ कीलनी के साथ निराई करते हुए बाहर आए हैं और कुछ मुख्य मोहरों पर गाय को दूध देते पाया है। ऐसा माना जाता है कि इसमें देवी-देवता की आत्मा वास करती है।

जुङ-थंग-दोर्जे : वज्र। वज्र का अर्थ अभेद्य, अविच्छिन्न, अविनाशी है। बौद्ध तंत्र में इसे उपाय और प्रज्ञा का अभिन्न रूप माना गया है। दूसरे शब्दों में शून्यता का नाम ही वज्र है। गोन्पाओं में इष्ट देवता के आह्वान के लिए मंत्र जाप के समय जुङ-थंग-दोर्जे अर्थात् वज्र के साथ धागे का प्रयोग विशेष रूप से होता है। अभिषेक से पूर्व वज्राचार्य साधना करते समय इसका प्रयोग विशेष रूप से करते हैं और केवल वे ही इसका प्रयोग कर सकते हैं।

ज़ूठ : अस्पृश्य को छूने, सूतक या पातक लगे व्यक्ति को छूने या भूल से उसके घर खाना खा लेने पर मन में शंका होने से उत्पन्न रोग को ज़ूठ कहते हैं। ज़ूठ का उपचार देवता का गूर ही कर सकता है क्योंकि इस बीमारी का उपचार औषधि से नहीं होता।

जेठोकरा : बलि विशेष। ज़िला शिमला के रोहड़ू क्षेत्र में पशुधन की वृद्धि तथा आधि-व्याधि से बचाव के लिए प्रति तीसरे या चौथे वर्ष शिरगुल देवता को दी जाने वाली मेढ़े या बकरे की बलि को जठोकरा कहते हैं।

जेलता : देवता की प्रबंध समिति का एक सदस्य। इसका कार्य देवता की शोभा

यात्रा हेतु वाद्ययंत्रों की व्यवस्था करना, देव संदेश को यथा स्थान पहुँचाना, देवकार्य हेतु बैठक के लिए 'हारियान' को सूचित करना आदि होता है।

जोगणी : योगिनी। पहाड़ों की जोगणियाँ संस्कृतवाङ्मय की योगिनियाँ हैं, जिनकी संख्या चौंसठ बताई गई है। हिमाचल मे इन्हें जलदेवी भी कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों में ये चट्टानों और सूखे पहाड़ों पर तो कुछ में ये ऊँची पर्वत शिखाओं में वास करती हैं। ये ऊँचे प्रपातों और झरनों में स्नान करती हैं। ऊँचाई से गिरते हुए पानी के साथ सूर्य की किरणों के टकराने से जो इन्द्रधनुष सा दिखाई देता है, मान्यता है कि वे नंगी जोगणियाँ हैं। तब लोग हाथ जोड़कर इन्हें प्रणाम करते हैं और सिर झुका कर पास से निकल जाते हैं। उन्हें नहाते और नाचते हुए नहीं देखा जाता अन्यथा वे क्रुद्ध होकर कष्ट पहुँचाती हैं, जिससे व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। तब उनकी शांति के लिए उसे बकरे की बलि देनी पड़ती है, जिससे शरीरस्थ योगिनियाँ शांत हो जाती हैं। ये लाल रंग से क्रुद्ध होती हैं, अतः लोग पहाड़ों को लाँघते हुए लाल वस्त्र और लाल फूल धारण नहीं करते। वास्तव में इनका आविर्भाव तामसिक शक्तियों के निराकरण के लिए हुआ था। वे रक्त-पिपासु थीं अतः रक्त का रंग लाल होने के कारण अब ये स्वभावानुसार लाल वर्ण पर उग्र रूप धारण कर लेती हैं। सूखा पड़ने पर लोग पहाड़ों पर जाकर इनके निमित्त अजबलि देते हैं, जिससे वर्षा हो जाती है। अनेक स्थानों पर जोगणियाँ स्थानीय देवताओं की बहिनें और दादियाँ हैं परंतु कुछ क्षेत्रों में ये देवताओं की शत्रु हैं। मंडी ज़िला की धार कंबोगीर में प्रतिवर्ष सोलह भादों को उस क्षेत्र के सभी देवता एकत्र होते हैं। चारों दिशाओं से योगिनियाँ भी इस स्थान पर आती हैं। तब देवताओं और योगिनियों के बीच युद्ध होता है। यदि उस वर्ष फसलें अच्छी हों तो कहते हैं कि युद्ध में देवताओं की जीत हुई है अन्यथा जोगणियों की विजय मानी जाती है।

जब किसी देवता का नया गूर चुना जाता है तो प्रायः उसे अपने पर्वतशिखर पर स्थित जोगणी के पास अनिवार्य रूप से जाना होता है। उसकी स्वीकृति पाकर ही वह गूर बनने का अधिकारी होता है।

जोगणियों के बड़े-छोटे मंदिर भी यत्र-तत्र पाए जाते हैं। कई मंदिर इतने छोटे होते हैं कि उनमें केवल हाथ ही घुस सकता है जिन्हें उठाकर घरों की छत पर भी रखा जाता है। जोगणी के मंदिर में रनिवास जैसा पर्दा होता है। साधारण आदमी उसमें झाँक नहीं सकता। कुछ जोगणियाँ वृक्षों पर वास करती हैं। उन वृक्षों पर प्रतीकस्वरूप लाल 'सालू' (दुपट्टा) टंगा रहता है। कुछ जोगणियाँ ग्राम देवताओं के साथ रहती हैं।

कुल्लू जनपद के आस-पास के क्षेत्र में जोगणियों की कई जातियाँ हैं,

यथा—जोगणी, फुंगणी, नौणी, ब्रांगणी, सोलह सुर्गणी, कूहटी, कुपड़ी, भोट-भोटली आदि। यूँ तो ये अंतरिक्ष चारिणी और अदृश्य होती हैं परंतु कुछ लोग इनके प्रत्यक्ष दर्शन के प्रमाण देते हैं। कुछ के अनुसार ये कुँवारी लड़कियों के रूप में दिखाई देती हैं तो कुछ लोगों ने इन्हें बालू-बलाक या नथ-बेसर पहने सुहागिनों के रूप में देखा है। ये जोगणियाँ हाछी (स्वच्छ) और बगड़ी (घटिया) कहलाती हैं। हाछी को रंगीन वस्त्र और गेहूँ अर्पित किया जाता है। धूम्रपान, चमड़ा और अस्पृश्यता यहाँ वर्जित होती है जबकि बगड़ी इन निषेधों से मुक्त होती हैं। इन्हें काला वस्त्र व मोटा अन्न चढ़ाया जाता है। इनका स्वभाव और प्रभाव भी तदनुरूप ही माना जाता है।

कांगड़ा जनपद में ये **परी** नाम से जानी जाती हैं। विशेष दिनों में इनकी पूजा की जाती है और महिलाएँ गले में इनकी प्रतिमाएँ धारण करती हैं।

जोगी : योगी। अलौकिक शक्ति-संपन्न पुरुष। यह योग-साधना द्वारा कायाकल्प या परकाया प्रवेश करने में समर्थ होते थे। यही भगवान शिव की पूजा का दान लेने के अधिकारी होते थे। समय परिवर्तन के साथ-साथ सिद्ध एवं नाथ योगियों का पतन होने लगा। कनफटे योगी गृहस्थ बनकर कान में मुद्रा डालने लगे, जिन्हें बाद में औघड़ योगी के नाम से पुकारा जाने लगा। ये योग-साधना के स्थान पर तंत्रविद्या द्वारा चमत्कारी बन गए। अतः पतित होते-होते इनकी गणना अनुसूचित जातियों में होने लगी।

जौभ : दे. कुशा।

ज़ौरे : जौ के पीले फूल जो देवता को अर्पित किये जाते हैं। इन्हें उगाने के लिए मिट्टी और भेड़ों की मेंगनियों को किसी खुले पात्र में भरकर इसमें जौ के बीज बोए जाते हैं। इसे अंधेरे कमरे में रखा जाता है जहाँ धूप की किरणों का प्रवेश न हो। जब इसमें अंकुर फूटते हैं तो प्रतिदिन पानी का हलका छिड़काव किया जाता है। धूप न लगने के कारण इसका रंग पीला होता है। पाँच-छः इंच बढ़ने पर इन्हें उखाड़ कर और नीचे से थोड़ा मसलकर गुच्छियाँ बनाकर देवरथ में सजाया जाता है। विशेषकर कोन्हा बिरशू के दिन लोगों द्वारा ये देवताओं को अवश्य चढ़ाये जाते हैं।

झंडा : यह किसी हलके वस्त्र के टुकड़े का बनता है जो किसी दंड में लगा होता है। ऋग्वेद में ध्वज का पर्याप्त प्रयोग किया गया है, जो झंडा का पर्यायवाची है। ध्वज ऐसा पावन प्रतीक है, जिसके प्रति मानव असीम आस्था, श्रद्धा, सम्मान, स्नेह आदि के सद्भाव उड़ेलते तन, मन, धन और जीवन से समर्पित रहता है। धार्मिक

प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किये जाने वाले ध्वजों पर ऊँ, स्वस्तिक, सूर्य, चंद्रमा आदि विविध प्रकार की मांगलिक आकृतियाँ अंकित होती हैं। पूजास्थलों, देवालयों, धार्मिक अनुष्ठानों में विविध रंगों के ध्वजों को फहरा कर अपनी-अपनी आस्था का परिचय दिया जाता है। इसे देवता का प्रतीक माना जाता है। यह शोभा यात्रा का प्रमुख उपकरण है और देवता के आगे-आगे चलाया जाता है। जब यात्रा निकलती है तो एक साथ कई झंडे चलते हैं। इसे **फलौहरी, फरौहरा** भी कहते हैं।

झांगर : याक नामक पशु के बाल, जिन्हें देवता के रथ में सबसे ऊपर लगाया जाता है।

झाड़ौ : देवता के सारे 'हारियानों' द्वारा हार में अतिवृष्टि, अनावृष्टि या रोग-व्याधि फैल जाने पर की जाने वाली बैठक। दे.हारका।

झारी : पूजा के लिए पानी रखने का चाँदी, पीतल या ताँबे का पात्र, जिसका आकार केतली जैसा होता है। कई जगह यह चाँदी की भी बनी होती है। इसे देवयात्रा या देऊफेरा में साथ रखते हैं ताकि इस पानी से जूठे मार्ग को स्वच्छ बनाया जाए। सिरमौर में इसे **कूजा** कहते हैं।

झूण : यह एक विशेष देव-धुन है जो देवता के गूर या चेला को 'उभरने' की प्रक्रिया में उत्प्रेरित करती है। इसमें सबसे पहले वादक देवता के मुख्य वाद्ययंत्र ढौंसू के बायें पूड़े पर बायें हाथ से तेज़ थापियाँ देता है, तुरंत बाद दायें हाथ से दायें पूड़े पर छड़ी द्वारा एक के बाद दूसरी पाँच-सात क्रमिक चोटें लगाता है। क्षण भर के अंतराल में ऐसा वह तीन बार करता है। अंतिम बार की चोट पर ढोल और नगारे पर भी एक साथ चोटें पड़ती हैं और द्रुत गति से तीन-चार मिनट तक धुन बजती रहती है। इस धुन के प्रारंभ होने से पहले ही गूर विशेष स्थिति में बैठता है। यदि देवता का रथ कंधे पर हो तो वह रथ की दोनों अर्गलाओं के मुखों पर अपने हाथ रख देता है और ध्यान लगाकर देवता को ताकता रहता है। यदि देवता बैठा हो या उसका रथ कहीं दूर हो तो गूर अपने सामने 'घोंडी-धड़छ' रखता है। धड़छ में धूप जल रहा होता है। वह अपने दोनों हाथ धड़छ पर रखता है और देवता का ध्यान करता है। तीन-चार मिनट की पहली झूण पर ही देवता के गूर को उभर जाना चाहिए, गूर में देवता की आत्मा प्रविष्ट होनी चाहिए, उसके शरीर में कंपन आनी चाहिए। उसके सिर से टोपी गिर जानी चाहिए, लंबे बाल बिखर कर कंधे पर आ जाने चाहिएँ और उसे बोलना आरंभ कर देना चाहिए। यदि वह नहीं उभरता तो धुन दोबारा बजाई जाती है। यदि तीन-चार बार झूण देने पर भी गूर नहीं उभरता तो समझा जाता है कि या तो पूछ का समय अनुकूल नहीं है या फिर कोई व्यवधान है। तब पूछ को कुछ समय के लिए छोड़ दिया जाता है। इसे **भरैऊण, धरेवणे** या **देऊ ताल** भी कहते हैं।

ञीमा : लामावाद का एक संप्रदाय जिसकी स्थापना आचार्य पद्मसंभव ने की थी जो स्वयं एक तांत्रिक थे। ञीमा संप्रदाय के लोग तंत्र पर विश्वास करते हैं और आचार्य पद्मसंभव को गुरु रिन्पोछे के नाम से जानते हैं। ञीमा लोग लाल रंग के कपड़े पहनते हैं इसलिए इन्हें लाल टोपी संप्रदाय का नाम भी दिया जाता है। ये लोग निर्वाण पर विश्वास करते हैं। संपूर्ण पश्चिमोत्तर हिमालय में जहाँ भी अभी बौद्ध धर्म जीवित है, वहाँ इस संप्रदाय का बोल-बाला है।

टशी गोमङ : भोट परंपरा के अनुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। इसको लुंबिनी वन में भगवान् बुद्ध के जन्म का प्रतीक माना जाता है। अतः इसे जन्म स्तूप भी कह सकते हैं।

टशी तग्यद : अष्टमंगल चिह्न। ये चिह्न हैं— छाता, स्वर्ण मत्स्य, पद्म, शंख, श्रीवत्स, चक्र, पताका और कलश, जिनके प्रतीक क्रमशः सिर, आँख, जीभ, दाँत, कमर, धर्म, पैर और गर्दन हैं। बौद्ध परंपरा में टशी तग्यद को मंगलमय माना गया है। इन आठ चिह्नों को गोन्पाओं के भित्तिचित्रों एवं अन्य चित्रों में बड़े मनमोहक ढंग से दर्शाया गया है।

टाणा : जब कोई व्यक्ति अपने शत्रु का अनिष्ट करने के लिए उसे देवता लगा देता है तो उसका निवारण भी देवता ही कर सकता है। इस निवारण पद्धति को टाणा कहते हैं। टाणा रात्रि के समय ही किया जाता है।

टिंबर : एक देवता, जिसे ज़िला लाहुलस्पिति के ग्राम त्रांबली के दस घरानों में कुलज अर्थात् कुलदेवता के रूप में पूजा जाता है। टिंबर पहले एक दैत्य था जो कुछ समय पश्चात् देवत्व को पाकर पूजा जाने लगा। एक किंवदंती के अनुसार त्रांबली ग्राम का एक ब्राह्मण सुलतानपुर में श्री रघुनाथ जी के मंदिर में भांठु (सहायक पुजारी) का कार्य करता था। वह प्रतिदिन त्रांबली ग्राम से प्रातः अपनी घोड़ी पर सवार होकर पूजा करने के लिए सुलतानपुर जाता था और शाम को घर वापस आ जाता था। एक बार वापस आते हुए मार्ग में एक भयानक जटाधारी दैत्य ने उसे रोक लिया और घोड़ी से नीचे उतारने का यत्न किया। भांठु तांत्रिक भी था। उसने भाँप लिया कि दैत्य को केवल मंत्र द्वारा परास्त नहीं किया जा सकता अपितु मंत्रों के साथ-साथ युद्ध कौशल का प्रदर्शन भी करना पड़ेगा। वह जानता था कि जटाधारी दैत्य को वश में करने के लिए उसकी जटाओं को काबू में करना पड़ेगा। ऐसा सोचकर वह दैत्य के साथ युद्ध करने लगा और उसके हाथ में दैत्य की जटाएँ आ गईं। अब भांठु मंत्रोच्चारण करता हुआ घोड़ी पर बैठकर दैत्य को घसीटता हुआ चलता गया। दो मील का रास्ता तय हो जाने पर दैत्य उससे माफ़ी

माँगने लगा, परन्तु वह टस से मस न हुआ। ग्राम की सीमा पर पहुँच कर दैत्य को भांठु के साथ-साथ ग्रामदेवता से भी दो-चार होना पड़ा। दैत्य ने अपनी हार स्वीकार कर ली और भांठु से कहा कि यदि वह उसे क्षमा कर देगा तो वह उसका दास बनकर उसकी हर आज्ञा का पालन करेगा और बदले में रूखा-सूखा भोजन करेगा। इसके लिए उसने यह शर्त रखी कि उसके भोजन में घी का लेशमात्र भी प्रयोग न किया जाए अन्यथा वह दासता से मुक्त हो जाएगा। भांठु ने दैत्य की बात स्वीकरते हुए उसकी जटाओं को छोड़ दिया। फिर जब भी भांठु को दैत्य की ज़रूरत पड़ती तो वह उसे काम सौंप देता था और दैत्य खुश होकर रात के अंधेरे में उस कार्य को पूरा करता था। उसके बदले उसे घी रहित भोजन दिया जाता। एक बार भांठु की बहन, जो मायके आई हुई थी, ने उसे घी-खिचड़ी खाने के लिए दी। जब दैत्य को पता चला कि उसे खाने के लिए घी दिया गया है तो वह अपनी दासता से मुक्त हो गया और कह कर चला गया कि जब वह टिंबर के वृक्ष के रूप में ओखली में उग आएगा तब उसे कुलदेवता के रूप में प्रत्येक त्योहार, पूर्णिमा आदि शुभ अवसरों पर पूजा जाए। कुछ समय पश्चात् ओखली में टिंबर का एक छोटा सा पौधा उग आया जिसे भांठु के परिवार ने कुल देवता के रूप में पूजना आरंभ किया और अब तक उसकी पूजा करते आ रहे हैं।

टिणी-मिणी : दे. घोंडी।

टीक : तिलक। सोने या चाँदी का एक आभूषण जो देवी के रथ के माथे पर सजाया जाता है। यह गोलाकार होता है।

टुंडाच : दे. खाँडा।

टुंडी वीर : टुंडा या टुंडी नाम सुनते ही कई विश्वास सामने आते हैं। वह राक्षस भी है और स्त्री रूप में टुंडी राक्षसी भी है, परंतु इन सबसे अलग वह वीर है जो एक हाथ से अपंग है, कमज़ोर है।

टुनु-पुन : दे. नगारा।

ट्रिलु : यह काँसे का बना एक वाद्ययंत्र है जो मंदिरों में घंटी का काम देता है। इसके मुष्टि भाग में बोधिसत्व आदि बौद्ध महात्माओं के चित्र और घंटी के वाहरी तल पर तांत्रिक चित्र उकेरे होते हैं।

ठठियार : देवी-देवताओं के मोहरों, छत्रों आदि को बनाने वाले तथा मरम्मत करने वालों को ठठियार कहते हैं। सोने-चाँदी के आभूषणों को चमकाने का काम भी यही करते हैं।

ठहरी : विश्राम स्थल। शिमला ज़िला के बुशहर क्षेत्र में ठहरियाँ उन स्थानों को कहा जाता है जहाँ पर परशुराम ने अपने प्रवास के समय विश्राम या ठहराव किया था। ये ठहरियाँ हैं– शिंगला, लालसा, डन्सा व शनेरी।

ठोकोरीकायङ : दे. देऊखेल।

ठ्रेङा : माला। 108 मनकों की बनी विशेष माला जिसे बौद्ध धर्मानुयायी मंत्र जाप के लिए प्रयोग में लाते हैं।

डंडवासी : देवता का कार्यकर्ता। यह देव कार्य हेतु प्रजा को बुलाने का दायित्व निभाता है। अन्य सामाजिक कार्यों में भी प्रजा को बुलाने की प्रमुख भूमिका इसी की होती है। डंडवासी का पद वंश परंपरा से ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त होता है।

डफाल : एक वाद्ययंत्र। इसे ढफ भी कहते हैं। यहा खंजरी के समान लकड़ी का छः इंच चौड़ा खोल होता है, जिसके एक मुख पर बकरी का चमड़ा मढ़ कर दूसरा मुख खाली छोड़ दिया जाता है। यह चंबा व कुल्लू में होली तथा कहीं-कहीं देव पर्व के अवसर पर बजाया जाता है। लाहौल-स्पिति में भी लोकनृत्य में इसका प्रयोग होता है। इसे बायें हाथ की हथेली से पकड़ कर अंगुलियों को खुला छोड़ कर दायें हाथ से बजाया जाता है।

डमरु : लकड़ी का बना चमड़े से मढ़ा छोटा वाद्ययंत्र। यह बीच में पतला होता है जिसमें रस्सी बंधी होती है। रस्सी के दोनों सिरों पर घुंडियाँ लगी होती हैं। इसे बीच से पकड़ कर परस्पर दायें-बायें गति से घुमाने पर रस्सी के सिरे से चमड़े पर चोट लगने से बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है। प्रायः प्रत्येक बौद्ध तांत्रिक पूजा में तथा इष्ट देवताओं के आह्वान और उन्हें भेंट अर्पण करने के अवसर पर इसका प्रयोग होता है। इसे **दरू** भी कहते हैं।

डल्हा : बोन संप्रदाय का एक देवता। इस लोक देवता की संकल्पना एक सेनापति के रूप में की जाती है तथा उसी पोशाक में अस्त्र-शस्त्रों से अलंकृत करके इसे विहार के मुख्य कक्ष में किसी स्तंभ के साथ स्थापित किया गया होता है और नियमित रूप से इसकी पूजा की जाती है। विश्वास किया जाता है कि युद्धकाल में यह अपनी सेना का नायक बनकर उसका संचालन करता है और विजय दिलाने में सहायक होता है। विहार के लामाओं को दी जाने वाली कर्मकांड की शिक्षा में इसकी पूजन विधि भी सम्मिलित होती है। इसके अतिरिक्त बौद्ध राजपूत-ठाकुरों के पूजा-गृहों में भी इसकी स्थापना होती है।

डाउड़ी : देवता का प्रतीकचिह्न। यह लौह-निर्मित छड़ी होती है जिसमें लोहे की

शृंखला में काँसे या पीतल की छोटी-छोटी घंटियाँ लगी होती हैं। इसे देवता का प्रतीक माना जाता है और यह गूर या पुजारी के पास रहती है। कई परिस्थितियों में देवयात्रा में देवता के रथ के स्थान पर प्रतीक स्वरूप देवता का मुख्य मोहरा या डाउड़ी ही ले जाई जाती है।

ड़ाच्छ : पुरोहित को किसी वस्तु के बदले में दी जाने वाली राशि। पूजा-पाठ तथा यज्ञ-विवाह आदि के अवसर पर पूजा में प्रयुक्त सारी सामग्री व वस्तुओं पर संबंधित पुरोहित का अधिकार होता है। यदि यजमान इनमें से कोई वस्तु पुनः प्रयोग के लिए रखना चाहे तो पुरोहित की सहमति से उसे इसके बदले में जो राशि दी जाती है उसे ड़ाच्छ कहते हैं। कुल्लू में महादेव के मंदिर में कफ़न की पुरानी चादरें ड़ाच्छ देकर खरीदी जा सकती हैं और उन्हें मुर्दे पर चढ़ाने के लिए पुनः प्रयोग में लाया जा सकता है। दे. महादेऊ री चादर।

ड़ुआ : आंशिक शुल्क। किसी देवता के पारंपरिक कारीगर, दस्तकार, शिल्पकार से अन्य स्थान का देवता यदि कोई काम करवाना चाहे तो उसकी ओर से पहले देवता को प्रतीक रूप में शुल्क अदा करना पड़ता है, जिसे ड़ुआ कहा जाता है।

डेहरा : मूल मंदिर से कुछ दूर बना दूसरा मंदिर। यदि मूल मंदिर के सामने मेले-त्योहार मनाने के लिए खुला स्थान न हो तो ऐसा डेहरा दूसरे स्थान पर होना ज़रूरी है, जहाँ मेले के लिए खुला स्थान हो। प्रायः यह एक-मंज़िला होता है। इसके शिखर पर बदोर लगा होता है। मंदिर का अग्रभाग खुला होता है और पीछे एक कमरा बना होता है। इसमें देवता की पिंडी स्थापित होती है। कई जगह डेहरे में हवन कुंड भी होता है। डेहरे में देवता का कोई सामान नहीं रखा जाता, केवल मेले के दिन जनता के दर्शनार्थ यहाँ रथ लाया जाता है। अन्य दिनों में यह खाली रहता है, लेकिन बावजूद इसके डेहरे की पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है। देवता के कारिंदों के अतिरिक्त इसमें कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता और इसके आस-पास उगे पेड़ों और झाड़ियों को भी काटा नहीं जाता। डेहरे के साथ देव सौह बनी होती है। यहाँ मेले के दिन 'हुलकी' और 'देऊखेल' आदि की प्रक्रिया निभाई जाती है। जितने दिन का मेला होता है, उतने दिनों तक देवता वहीं रहता है और जिस दिन मेला संपन्न होता है, उस दिन रथ अपने मूल मंदिर में जाता है। डेहरा प्रायः गाँव से दूर निर्जन स्थान में बना होता है, लेकिन इसके पहरे के लिए कोई भी व्यक्ति नियुक्त नहीं होता है।

डेहरी : छोटा मंदिर। जिन देवी-देवताओं के रथ नहीं होते जैसे– जोगणी, वीर, देवती आदि, उनकी डेहरियाँ होती हैं। उनमें संबंधित देवती या देवता के प्रतीक रूप में पिंडी स्थापित होती है।

डौंडिया वीर : लोक विश्वासानुसार गाँवों की सीमाओं पर अनेक बार डंडा हाथ में लिए बाबा मिलता है। इसे 'डौंडिया वीर' अर्थात् डंडाधारी वीर कहते हैं। यह गाँव में चौराहों की रखवाली करता है। संभवतः इसका संबंध संस्कृत 'डिंडिया वीर' से हो। काशी और वैशाली नगरों में ऐसे वीरों की गाथा के संदर्भ मिलते हैं।

ढकमाता : देवता के वाद्यों का रख-रखाव करने वाला। वाद्ययंत्रों की टूट-फूट व मरम्मत के बारे में यह मंदिर के कारदारों को सूचित करता है। मेले व यज्ञों में साज-बाज का प्रबंध इसी की देखरेख में होता है।

ढाकुलि : एक देव वाद्य। यह ढोल का सहायक वाद्य है और लकड़ी से बजाया जाता है।

ढाढ : दो-ढाई फुट लंबा ठोस लकड़ी का टुकड़ा जो 6 से 9 इंच तक मोटा होता है। यह उन देवताओं का 'चिड़ग' है जो सिर पर उठाए जाते हैं। इसी ढाढ में देवता के 'बागे' और अन्य उपकरण सजाए जाते हैं। जहाँ सिर पर के कौरड़ू बाँस के बने होते हैं वहाँ ढाढ देवदार, दरल आदि वृक्षों के बनते हैं।

ढाढ एक देव वाद्य भी है जो भेखल की लकड़ी से बनता है। सामान्यतः यह ढोल-सदृश होता है, फर्क सिर्फ इतना है कि ढोल को हर कोई बजा सकता है जबकि ढाढ को देवता द्वारा चुना हुआ व्यक्ति ही बजा सकता है, जिसे ढाढी कहते हैं। इसे बजाने से पूर्व उसे अपनी जेब से बीड़ी, तंबाकू आदि बाहर निकालने पड़ते हैं तथा इसे बजाते समय वह पाँव में जूते भी नहीं पहन सकता। बहुत से मंदिरों में यह वाद्य देखा जा सकता है। परशुराम द्वारा स्थापित पाँच मंदिरों— ममेल, काओ, निरमंड, नीरथ और दत्तनगर में ढाढ विशेष रूप से सुरक्षित रखे गए हैं।

ढाल : देवताओं को किया जाने वाला नमन जिसमें हाथ में अक्षत, पुष्प, पैसे, अखरोट आदि लेकर प्रणाम किया जाता है। जिस स्थान से दूर से देवमंदिर के दर्शन करते हुए उन्हें नमन किया जा सकता है, उस स्थान को देवढाल नाम से पुकारा जाता है।

ढोल : एक देव वाद्य। यह गोल लंबोतरी, अंदर से खोखली लकड़ी के घेरे को दोनों सिरों पर खाल से मढ़कर बनाया जाता है। दाईं ओर की खाल प्रायः बकरे की होती है जो पतली चमड़ी की होती है और तीखी ध्वनि देती है। बाईं ओर घोरल़ या लक्कड़ आदि जंगली पशुओं की खाल होती है जो मोटी होती है। इसे बजाने पर ध्वनि भी मोटी निकलती है। अतः इसके दाईं ओर को मादा तथा बाईं ओर को नर भाग कहा जाता है। जहाँ नर भाग के लिए घुमावदार छड़ी का प्रयोग

किया जाता है वहाँ मादा भाग को बजाने के लिए सीधी छड़ी प्रयुक्त होती है। बकरे की खाल को तेज़ गति से और दूसरे को धीमी गति से पीटा जाता है।

ढोलकी : एक देव वाद्य। इसकी आकृति ढोल से मिलती-जुलती होती है किंतु आकार में यह इससे छोटी होती है। इसे लकड़ी से न बजा कर हाथों से बजाया जाता है। इसके छोटे मुख वाले भाग को प्रायः दायें हाथ से और बड़े मुख के भाग को बायें हाथ से बजाया जाता है। यह स्त्रियों का प्रिय वाद्य है। इसे भजन-कीर्तन के समय बजाया जाता है।

ढौंस : देवता का मुख्य वाद्ययंत्र। इससे ताल में फेर-बदल की जाती है। दे. नगारा।

ढौंसी : बजंत्रियों का मुखिया। यह देवता का जेठा बाजा 'ढौंस' बजाता है, जिसकी ताल पर सारे वाद्य जैसे—ढोल, नगारा, बाम, भाणा इत्यादि बजते हैं। देवयात्रा में वाद्ययंत्रों को बजाने का नेतृत्व यही करता है। यह देवता द्वारा चुना जाता है। कब कैसा बाजा बजाना है, यह सब उसे पता होता है। ढौंसी की लय से देवता का रथ चलता है। जब नए गूर की नियुक्ति होती है तो वह अपनी टोपी ढौंस पर गिराता है जो ढौंसी को ही दी जाती है। देवता के मंदिर से बाहर निकलने पर इसे भंडार से ही भोजन मिलता है। पुराने समय में इसे भूमि भी दी जाती थी। अब जब देवता के पास मेढ़े या बकरे की बलि दी जाती है तो उसे बाकी लोगों से दोगुना भाग दिया जाता है। इसे देवपूजा में हर समय हाज़िर रहना पड़ता है। कई अवसरों पर देवता-ढौंसी के माध्यम से भी अपनी बात बोलता है। ढौंसी को **धौंसी** भी कहते हैं।

तमशाल : मंदिर की वह तीसरी मंज़िल जहाँ मेले आदि में ले जाने से पहले देवता को सजाया जाता है।

तमातर : मंदिरों में रखी गई रजत निर्मित 2-3 किलो वजन की परात, जिसमें पूजा सामग्री रखी जाती है।

तरशूल : लोहे की छड़ में तीन नुकीले फालों वाला त्रिशूल। यह शिव का प्रधान अस्त्र है। प्रायः देवताओं के सभी मंदिरों के ऊपर 'बदोर' पर त्रिशूल लगे होते हैं परंतु यह देवता के शिव से संबंधित होने का कोई संकेत नहीं है। नारायण, नाग देवता और सामान्य देवियों के मंदिरों के बदोर पर भी तरशूल लगे होते हैं। इसके अतिरिक्त देऊ फेरा या जाच के समय लोहे के बड़े-बड़े तरशूल लेकर कारकुन साथ चलते हैं। इसके ऊपरी भाग पर प्रायः केसरिया रंग या भक्तिभाव वाले ध्वज भी लगाते हैं, जो मानवता के कल्याण का संदेश देते हैं। वैसे भी त्रिशूल

की आकृति में ऐसा अद्‌भुत आकर्षण होता है कि मन को मोह लेता है और भक्तजन श्रद्धापूर्वक नतमस्तक हो जाते हैं।

तलाई : देवमंदिर की चाबी संभालने वाला। वह प्रतिदिन ताले की चाबी पुजारी को देता है और देवपूजन के बाद चाबी पुनः तलाई को ही सौंप दी जाती है।

तहसीलदार : मंडी के जंजैहली क्षेत्र में देवताओं के यहाँ तहसीलदार का भी पद है। यह देवता से संबंधित स्थानों की निगरानी रखता है तथा देवस्थानों की निगरानी के लिए हारवासियों को कार्य सौंपता है।

ताठ ढालना : भूंडा महायज्ञ को आरंभ करने से पूर्व मनाई जाने वाली एक रस्म, जिसमें पुरोहित द्वारा शुभ दिन देखकर बायल ग्राम के राजपूतों के घर से धान व अन्य अनाज लाया जाता है और मंदिर में रखे ताँबे के एक पात्र, जिसे ताठ कहते हैं, से नापकर मंदिर के भंडार में रखा जाता है। ताठ में दो सेर अन्न आता है। इसके बाद निरमंड व उसके आस-पास के गाँवों से भी अनाज व पैसे इकट्ठे किए जाते हैं।

ताली : दे. भाणा।

तिङ : प्याला। हिमालयीय बौद्ध परंपरा में प्रत्येक घर एवं गोन्पा में धातु निर्मित सात स्वच्छ प्यालियों में जल, दीप, धूप, नैवेद्य, पुष्प, गंध, अक्षत डालकर भगवान् बुद्ध की मूर्ति के सामने अर्घ्य देने की परंपरा है। गोन्पाओं तथा घरों में बुद्ध मूर्ति के सामने इन प्यालियों में उपर्युक्त सामग्री रखकर आराध्य को भेंट किया जाता है, जो अत्यंत पुण्यकारक माना जाता है। पुष्प, गंध, दीप आदि के अभाव में प्यालियों में स्वच्छ एवं ताज़ा पानी भी रखा जाता है।

तिङ शगस् : इसे बौद्ध तांत्रिक पूजा का वाद्य माना जाता है। इसका प्रयोग खासकर गुरुपूजा, वज्रधर की पूजा तथा पिंडदान के समय विशेषरूप से होता है। स्तोरमा की पूजा में इसका अधिकाधिक प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग नागपूजा तथा सिंहनाद (अवलोकितेश्वर) आदि की पूजा में भी होता है।

तीर कमान : ये लकड़ी के बने होते हैं। तीर बाँस की लकड़ी का बनाया जाता है और कमान स्थानीय झाड़ी चिहुंश या रिहुंश की लकड़ी की बनी होती है। तीर कमान किसी-किसी देवता के पास ही होते हैं, जो काहिका आदि उत्सव में निकाले जाते हैं।

त्राणी : दे. सूत्र फेरना। सूत्र फेरने से पूर्व देवता के 'हारियान' अनाज इकट्ठा करते हैं। अनाज के एकत्रीकरण को त्राणी कहा जाता है। यह अनाज सूत्र फेरने के

समय उपस्थित ब्राह्मण को दिया जाता है। इसी प्रकार 'हारगी' के समय जिस घर में देवी-देवता का रथ पहुँचता है, उस घर के सदस्य धूप-दीप से देवता का स्वागत करते हैं व उसे घर में बिठा कर छमाही अनाज देते हैं, उसे भी त्राणी कहा जाता है। प्रजा द्वारा देवता को यह अन्न अपने त्राण यानी रक्षा के लिए अर्पित किया जाता है।

थंका : कपड़े या कैनवस पर किया गया चित्रण। वस्तुतः थंका शब्द का ही अर्थ होता है चित्र। प्रत्येक बौद्ध पूजा के अवसर पर थंकाओं, मूर्तियों एवं मंडलों की आवश्यकता होती है। शिशु जन्म से लेकर मृत्यु तक के लिए अलग-अलग थंका चित्र बनवाए जाते हैं। इसके चित्रण का कार्य सिद्धहस्त कलाकार ही कर सकते हैं। इसमें कलाकार को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं होती, धर्म ग्रंथों पर आधारित धर्म गुरुओं के आदेशानुसार ही इनका चित्रण किया जाता है। इन थंकाओं में भगवान् बुद्ध की जीवन-लीलाओं, गुरु-भैषज्य, तारादेवी, आचार्य पद्मसंभव, मंडल आदि का चित्रण होता है। ये चित्र वस्त्र पर पानी के रंगों से बनाए जाते हैं। चित्रण के समय पृष्ठभूमि, आकृतियों, फूल-पौधों और पक्षियों आदि के अनुपात को विशेष ध्यान रखा जाता है। किस चित्र में कौन सा रंग किस स्थान पर प्रयोग में लाया जाना है, यह भी पूर्व निर्धारित होता है। कुछ थंकाओं पर सोना, चाँदी भी लगाया जाता है। रेशम के कपड़े को काटकर भी थंका बनाए जाते हैं। चित्र के बन जाने के बाद इसकी प्राण-प्रतिष्ठा हेतु अनुष्ठान किया जाता है।

थंका चित्रकला के प्रादुर्भाव के संबंध में कई दंतकथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार भगवान् बुद्ध के समय श्रीलंका में मूतिग श्री शिंग नाम का एक राजा था। उसकी बेटी भगवान बुद्ध के चमत्कारों से अत्यन्त प्रभावित थी। एक बार उसने बुद्ध को विशुद्ध मोतियों का एक उपहार भिजवाया। वे उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके मन में आया कि वे भी राजकन्या को कोई उपहार दें। बहुत सोचने के बाद बुद्ध ने एक रेशमी वस्त्र के ऊपर अपने शरीर से ऐसी किरणें छोड़ीं जिससे उस कपड़े पर उनकी आकृति उभर आई।

थड़ोट : दे. देवठी।

थनपाल : स्थानपाल। यह भू-देवता है। खेतों के खंड विशेष में स्थायी रूप में पड़ी सबसे बड़ी चट्टान अथवा देखने में विचित्र या सपाट पत्थर को उस क्षेत्र का थनपाल माना जाता है। गाँव के प्रत्येक घर का स्वामी हर वर्ष नई फसल का प्रयोग करने से पहले उससे पकाया भोजन, हलवा या सत्तू थनपाल के निमित्त चढ़ा आता है और उससे बरकत देने और धन-धान्य में वृद्धि करने की कामना करता है।

नई फसल आने पर धान, जौ, गेहूँ की कच्ची बालियाँ भी इन पर चढ़ाई जाती हैं। इनकी कोई मूर्ति या रथ नहीं होता। चंबा आदि क्षेत्रों में थनपाल को खेतर पाल कहते हैं।

थाणी : देवी-देवता के बैठने का स्थान। जब देवी-देवता मेले आदि में मंदिर से बाहर निकलता है तो जिस स्थान पर वह बैठता है, उसे थाणी कहते हैं।

थान : स्थान। ऐसा स्थान जहाँ से धरती फटकर कोई पिंडी या मोहरा उभर आया हो। अनेक बार पूजे जाने वाले थनपालों में से कुछ एक ने प्रकट होकर प्रत्यक्ष रूप में गाँव की सुखसुविधा में विशेष योगदान दिया है अथवा अनेक बार धरती किसी स्थान से स्वतः फटकर वहाँ से पिंडी उभर आई है। ऐसे थनपालों के मोहरों या पिंडियों या मूर्तियों के रथ बनाए जाते हैं और उन्हें मंदिरों में स्थापित किया जाता है। उन्हें थान कहा जाता है। गिल्हड़ू थान, पिरड़ू थान, शालंगू थान इनके कुल्लू में विशिष्ट उदाहरण हैं। मंडी, सिरमौर में ये लोक देवता हैं, जिनकी प्रतिष्ठा अनेक गाँवों में ग्राम देवता अथवा कुल देवता के रूप में की गई है, जिनके निमित्त विशेष अवसरों पर मेले आदि लगते हैं। कष्टों से बचने तथा सुख-समृद्धि की प्राप्ति हेतु इन्हें प्रसाद, जल तथा चढ़ावा भी चढ़ाया जाता है।

थुन छेन : किन्नौरी देव वाद्य। लामाओं द्वारा प्रातः-सायं पूजा के समय बौद्ध विहारों के बाहर बजाई जाने वाली छः फुट लंबी काहल को थुन छेन कहते हैं। यह कांस्य निर्मित होती है। इसकी नली शंकु के आकार की होती है। इसमें तीन खंड जुड़े होते हैं। अंतिम छोर कीप के आकार का होता है।

थुम मुथङ : देवमुख। रजत निर्मित ये मुख संख्या में दो होते हैं तथा आकार में अन्य मुख-प्रतिमाओं की अपेक्षा बड़े और आपस में जुड़े होते हैं।

थेईयाँ : नाग पंचमी से पहले के कुछ दिन। इन दिनों दूध-दही को बाहर नहीं निकालते और न ही इनका प्रयोग करते हैं।

थौड़ा : प्रांगण। देवालय के प्रांगण अथवा गाँव के आस-पास देवता से संबद्ध अर्चना स्थल को थौड़ा कहते हैं। थौड़ा में जाकर झूठ बोलना अथवा कोई अन्य पापकर्म करना या सोचना परंपरा से वर्जित है। थौड़े में खड़े होकर शपथ लेकर आज भी जो अपने आपको निरपराध, निष्पाप और निष्कलंक होने की घोषणा करता है, समाज उसे निःसंकोच स्वीकार कर लेता है।

दड़ियाला : दे. सिंदू।

दणारा : दे. धड़छ।

दबातरा : एक देव वाद्य। यह नाथ सिद्धों का प्रसिद्ध वाद्ययंत्र है जिस पर गुरुओं की कारिकाएँ गाई जाती हैं। इसे मध्यम आकार के कद्दू के दो तुँबों पर बाँस का एक डंडा जोड़ कर बनाया जाता है। डंडे के दोनों किनारों पर एक-एक खूँटी लगी होती है, जिन पर दो तारें कसी जाती हैं। एक तार षडज पर तथा दूसरी ओर तार पंचम स्वर पर मिला होता है। यह वाद्य शिमला ज़िला के महासु क्षेत्र में 'हारें' गाते समय और चंबा में नवाले में 'ऐंचली' गाते हुए प्रयुक्त होता है।

दमामटू : सिरमौर क्षेत्र का देव वाद्य। इसे दमंगटू तथा दमामा भी कहते हैं। यह एक छोटा सा नगारा होता है। इसका नाद नगारे से ऊँचा होता है। यह पीतल का खोल होता है जिस पर बैल का पतला चमड़ा मढ़ा जाता है। इसे बाँस की बनी दो बारीक छड़ों से बजाया जाता है।

दरबाणी : द्वारपाल। यह एक प्रसिद्ध लोकदेव है। हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक ग्राम में लोकदेवता के साथ देवस्थल के प्रांगण में देवता के सहायक के रूप में दरबाणी की प्रस्तर मूर्ति पाई जाती है। मंडी, सोलन तथा बिलासपुर जनपदों में दरबाणी का स्वतंत्र रूप भी मिलता है। प्रतीक रूप में किसी चट्टान पर अथवा सार्वजनिक स्थान पर लोहे की लंबी-लंबी छड़ें गाड़ी होती हैं, जिन्हें दरबाणी का रूप माना जाता है। कई स्थानों पर मानवाकार खड़ी प्रस्तर मूर्ति भी पाई जाती है। दरबाणी को **मश्वाड़ी, लौंकड़ा, दुरानी, पड़** तथा **दरबान** आदि नामों से भी जाना जाता है। नई फसल आने पर इसकी विधिवत् पूजा की जाती है। देव कुरगण, जिसकी स्थापना मंढोड़घाट में है, के दरबाणी को यहाँ सबसे शक्तिशाली माना जाता है। इसकी शक्ति के विषय में विभिन्न जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक किंवदंती के अनुसार एक बार यह रथ छत्र सहित देवयात्रा में इस क्षेत्र में कहीं घूम रहे थे कि किसी ने कह दिया कि यदि इसका इष्ट मंढोड़ इतना शक्तिशाली है तो इसी क्षेत्र के बाडू बाड़ा देव के दरबाणी का मुकाबला करे। ऐसा सुन क्रोधित दरबाणी बाडू बाड़े के चौरे में गया और अपनी लोहे की गुर्ज दे मारी। पलक झपकते ही देव का चौरा घूमने लगा। यह इतना घूमा कि शिखर से सतलुज नदी में गिरने लगा था। तब बाडू बाड़े के दरबाणी ने क्षमा माँगी। कहते हैं तब से ही बाडू बाड़े का चौरा टेढ़ा हो गया है।

दरबान : दे. दरबाणी।

दराघ : एक देव वाद्य। प्राचीन दुंदुभि को स्थानीय बोली में दराघ कहा जाता है। लकड़ी का इसका मूल ढाँचा बीच से खोखला होता है। यह वाद्य अंग्रेज़ी बैंड की तरह होता है, लेकिन अंग्रेज़ी बैंड में व्यास की अपेक्षा लंबाई कम होती है, जबकि इसकी लंबाई व्यास जितनी ही अधिक होती है। इसके खोखले घेरे के दोनों सिरों

पर सूतली की सहायता से खाल मढ़ी होती है। बजाने के लिए केवल एक ओर की खाल ही प्रयोग में लाई जाती है, परंतु दूसरी ओर की खाल निरर्थक नहीं होती। यह पतली ओर की खाल को लकड़ी से बजाने पर ध्वनि में भिन्नता लाती है। यदि लकड़ी से बजाते हुए दूसरी ओर के चमड़े को दूसरे हाथ से दबाए रखो तो ध्वनि किंचित् तीखी निकलती है और हाथ छोड़ दो तो ध्वनि फैली हुई मोटी-कंपित होती है।

दरोगा : देवता का मुख्य कार्यकर्ता। इसका चयन 'हारियान' द्वारा किया जाता है। देव कार्य हेतु सामान खरीदना व खाद्य सामग्री तैयार करने एवं बाँटने की व्यवस्था करना इसका कार्य है।

दाणे देखणे : दानों को देखकर खोट का पता लगाना। पशु बीमार हो, दूध देना कम कर दे, बच्चा, स्त्री, पुरुष बीमार हो जाए और दवा आदि से ठीक न हो तो घर का व्यक्ति देवी या देवता के गूर के पास गेहूँ या चावल के दाने पीड़ित व्यक्ति से छुआ कर ले जाता है। गूर दानों की संख्या के हिसाब से खोट-दोष बता देता है।

दियेल : देवपूजन के लिए प्रयुज्यमान दीप में डाला जाने वाला घी। लोग देवता के लिए 'पचावण' तथा दियेल की मनौती करते हैं। प्रति संक्रांति हर घर से दी जाने वाली पचावण के साथ दियेल के रूप में मक्खन दिया जाता है। तब इस मक्खन का घी बनाकर पुजारी दीपक में दियेल स्वरूप इसका प्रयोग करता है।

दी : आषाढ़ संक्रांति के दिन आयोजित होने वाले हूम पर्व में जलाई जाने वाली विशाल मशाल। इसे बनाने के लिए देववन से शुभ मुहूर्त में दयार का एक वृक्ष चनाल जाति के लोगों द्वारा निराहार रह कर काटा जाता है। वृक्ष काटने की आज्ञा देवी-देवता से ली जाती है। तब इस वृक्ष के टुकड़े करके इसकी बारीक-बारीक छड़ियाँ बनाई जाती हैं और कुछ दिनों के लिए इन्हें सूखने के लिए रख दिया जाता है। हूम से एक दिन पहले चनाल पुनः निराहर रह कर उन छड़ियों के बंडल बनाते हुए ऐसा आकार देते हैं कि यह एक वृक्ष का सा रूप ले लेता है। इसे ही दी कहा जाता है जो हूम के दिन मंदिर में लाई जाती है।

दुङ : दे. शंख।

दुङ-कर-यस-खिल : दक्षिणावर्ती शंख। इस दुर्लभ शंख को बड़ा शुभ माना जाता है। एक परंपरा के अनुसार भगवान् बुद्ध को जब संबोधि प्राप्त हुई तब तत्काल उपयुक्त शिष्य उपलब्ध न होने के कारण वे प्राप्त ज्ञान का उपदेश नहीं करना चाहते थे। कहते हैं 49 दिनों तक उन्होंने उपदेश नहीं दिया। इससे जनसामान्य

को भगवान् बुद्ध के ज्ञान से कोई लाभ नहीं हो पा रहा था। तदनंतर ब्रह्मा ने भगवान बुद्ध को यही दक्षिणावर्त शंख भेंट स्वरूप प्रदान कर लोक कल्याणार्थ ज्ञान का उपदेश करने का उनसे निवेदन किया, तत्पश्चात् भगवान् बुद्ध ने जनसामान्य के कल्याण हेतु धर्मचक्र प्रवर्तन का उपदेश दिया। उसी समय से यह शंख अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसे गोन्पाओं में किंसी विशेष अवसर पर विशिष्ट लामाओं या व्यक्तियों के आगमन पर स्वागतार्थ बजाया जाता है।

दुन्चर : ये प्यालियों की भाँति के रजत या पीतल धातु निर्मित पूजा-पात्र होते हैं। इनकी संख्या सामान्यतः सात होती है तथा प्रत्येक पूजा में इनका रखा जाना आवश्यक होता है। ये अर्घ्य, पाद्य, पुष्प, धूप, आलोक, गंध तथा नैवेद्य के प्रतीक होते हैं। पूजा के समय इनमें पानी भरकर रखा जाता है।

दुमच्छ : देव यात्रा या देवता के निमित्त किए गए उत्सव में बलिपशु का प्रबंध कर मांस का बंटवारा करने वाला व्यक्ति दुमच्छ कहलाता है।

दुमसी : देवता का एक कारकुन जो दी गई बलियों को देवता के भिन्न कारकुनों में बाँटता है, परंतु वह स्वयं बलि के किसी भाग का हकदार नहीं होता।

दुरानी : दे. दरबाणी।

दूत : अनेक क्षेत्रों में दूत वीर हैं। यह प्रायः फुलवाड़ियों की रक्षा करता है और फूलों के पौधों को अपने श्वेत चोले से ढक रखता है। ऐसी स्थिति में यदि उसे पहले फूल अर्पित कर दिये जाएँ तो वह फुलवाड़ी को छोड़ देता है। इसे यम का प्रतिनिधि माना जाता है जो पृथ्वी पर विचरता है और किसी को पकड़कर यमपुरी पहुँचाता है। यह भी विश्वास किया जाता है कि यदि कोई परिवार बीमारी अथवा किसी अन्य कारण से पूरा नष्ट हो जाए तो उसकी जायदाद का स्वामी दूत बनता है। वह खाली घर में या किसी बड़ी-चट्टान के पास रहता है। रात को चलता हुआ नज़र आता है। प्रायः लंबी दाढ़ी, लंबा चोगा पहनता है या पूर्णतया श्वेत या श्याम वस्त्र पहनता है। साधारणतः किसी को कष्ट नहीं देता परन्तु यदि रुष्ट हो जाए तो पास-पड़ोस के व्यक्तियों और पशुओं को तंग करता है, जिससे वे रोगग्रस्त हो जाते हैं। गूर मंत्रों द्वारा दूत को 'कील' देते हैं। फिर भी उसे समय-समय पर बकरे या मेढ़े की बलि दी जाती है, ताकि वह प्रसन्न रहे।

देउरा : दे. देवठी।

देऊ : देव। हिमाचल प्रदेश की समस्त देवपरंपरा देऊ के गिर्द घूमती है। देऊ शब्द सं. देव का तद्भव रूप है और मूलतः यह ग्राम देवता के लिए प्रयुक्त होता है,

परन्तु इसमें ऐसे सभी दैत्य, दानव, शक्ति संपन्न अमर प्राणी सम्मिलित हैं, जिनकी उनके गुणों के कारण अब देवता के रूप में पूजा होती है। रथधारी देवता प्रायः सभी देऊ कहलाते हैं। वस्तुतः देऊ में हर प्रकार की देवशक्ति सम्मिलित है। इस तरह हिमाचल में अनेक देऊ हैं। वे मंदिरों और देवघरों, देवालयों तथा देवठियों में पूजे जाते हैं। वे नदियों और नालों, चश्मों व बावड़ियों, सर-सरोवरों, झीलों और जलाशयों, पर्वत शिखरों और गहरी घाटियों, वृक्षों और जंगलों में रहते हैं। ऐसे भी देऊ हैं जिनके न मंदिर हैं, न मूर्तियाँ, न रथ हैं न मोहरे। वे केवल आस्था और प्रतीकरूप में माने और पूजे जाते हैं।

देऊकर : देवता के साथ चलने वाले लोग। दे. देऊलू।

देऊखेल : देवता की खेल। जहाँ हुल़की देवता का नृत्य है, वहीं देऊखेल गूर द्वारा मूक अभिनय के साथ प्रदर्शित नृत्य नाटिका है। इसमें देवता नहीं नाचता, वह डेहरे में रहता है। न उसके कारकुन या आम लोग नाचते हैं, वे सभी एक विस्तृत वृत्त में खड़े होते हैं। उनसे आगे अर्धवृत्त में बजंत्री खड़े होते हैं। सामने सभी गूर केवल कमर से घुटने तक चोले को पहन तथा अन्य सारा शरीर नंगा रखकर खड़े होते हैं। 'मल़ेघा गूर' हाथों में 'घोंडी-धड़छ' लेकर धीमी गति से नाचता हुआ सबसे पहले एक सिरे से लेकर दूसरे तक बैठे बजंत्रियों के पास जा कर अपने वाद्ययंत्रों का निरीक्षण करता है। इसी बीच कारदार देवता के सारे शस्त्र भूमि में केंद्र में गाड़ देता है। मल़ेघा गूर वहाँ पहुँचकर सबसे पहले घोंडी-ध ड़छ के साथ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की ओर बारी-बारी गंभीर मुद्रा में नाचता हुआ चारों दिशाओं की पूजा करता है। उसके बाद घोंडी धड़छ को कारदार के पास थमाकर बारी-बारी लोहा, 'शांगल़' और कटारों के साथ चारों ओर नाचता हुआ अभिनय द्वारा यह प्रदर्शित करता है कि उसने आदिकाल में अपने शत्रुओं को कैसे परास्त किया। तत्पश्चात् भेखल़ के साथ ऐसा ही नाच करता है। तब पंक्ति में बैठे गूर एक-एक करके उसके पास आते हैं और सभी मिल कर नाचते हैं। देऊखेल को किन्नौर में **ठोकोरीकायङ** या **पनसकायङ** कहते हैं।

देऊघरा : देवगृह। किसी देवता की 'हार' अर्थात् अधिकार क्षेत्र के अंदर बने छोटे मंदिर। इनमें साधारणतः कोई देवता या देवमूर्ति नहीं होती परंतु जब देवता अपने क्षेत्र की परिक्रमा पर निकलता है तो इनमें विश्राम के लिए ठहरता है। इसके अतिरिक्त जब कभी देवता के कारकुन देवता के काम पर निकले हों तो देऊघरा में ठहर सकते हैं।

देऊचारा : देवता की कार्यवाही।

देऊ छुंगणा : देवता को छू कर सौगंध खाना। यदि दो व्यक्तियों या पक्षों के बीच झगड़ा हो और वे एक-दूसरे पर झूठा आरोप लगाएँ तो सच्चा व्यक्ति दूसरे से कहता है कि यदि तू सच्चा है तो चल देवता छूते हैं। इससे झूठा व्यक्ति देव दोष के डर से चुप रहता है और लड़ाई यहीं समाप्त हो जाती है। यदि वह न माने तो दोनों अपने-अपने घर की शुद्धि करके निश्चित दिन को नहा-धोकर देवता के मंदिर में जा कर देवता की मूर्ति या रथ को छू कर सौगंध खाते हैं और कहते हैं कि ले देवता छू लिया, यदि मैं झूठा हुआ तो मेरा नाश हो अन्यथा विपक्षी का नाश हो। तब देवता स्वयं न्याय करता है। झूठी सौगंध खाने वाले पर देवता कुपित हो जाता है और उसका सर्वनाश कर देता है, अतः झूठी सौगंध खाने की कोई भी हिम्मत नहीं जुटाता।

देऊ ताल : दे. झूण।

देऊ नाटी : देवनृत्य। इस नृत्य में देवता के साथ-साथ उसकी प्रजा भी नृत्य करती है। नर्तक स्थानीय परंपरागत वेशभूषा में हाथों में खड्ग, कटार या रूमाल लिए देवता के चारों ओर विस्तृत घेरा बना लेते हैं। घेरे के मध्य वजंत्री बैठ जाते हैं और नाटी आरंभ हो जाती है। प्रत्येक नर्तक अपने साथ खड़े व्यक्ति का हाथ पकड़ कर घुटनों के बल आगे झुकता है। हर चौथे पग पर सारी माला कुछ मात्राओं के ठहराव के बाद आगे बढ़ती है। नाटी सामान्यतः विलंबित ताल पर चलती है और पराकाष्ठा पर तीव्र गति से समाप्त होती है।

देवता भी अपने-अपने रथों पर सवार हो झूम-झूम कर घंटों अविरल नाचते रहते हैं। मंडी की शिवरात्रि, कुल्लू दशहरा और रामपुर के फाग आदि मेलों के अवसर पर यह देव नृत्य लंबे अंतराल तक चलता रहता है।

देऊ निकलना : प्रत्येक देवता के वार्षिक मेले-त्योहार का प्रथम दिन 'देऊ निकलना' का दिन कहलाता है। उस दिन देवता को 'मौढ़ा' और 'पीढ़ा' जाता है। इसमें केवल संबंधित कार्यकर्ता भाग लेते हैं, परंतु 'हार' के सभी लोगों का वह सार्वजनिक अवकाश का दिन होता है। उस दिन खेती-बाड़ी का कोई काम नहीं किया जाता।

देऊपाणा : देवन्याय का एक तरीका। यदि कोई सच्चे व्यक्ति को जबरदस्ती झूठा साबित कर दे और उस पर तरह-तरह के आरोप लगाए तो सच्चा व्यक्ति देवता के पास जाकर रो-रोकर अपनी व्यथा सुनाता है और देवता से न्याय करने के लिए कहता है। देवता उसको न्याय दिलाने के लिए शत्रु के घर में तरह-तरह के उपद्रव करता है और उसका कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होने देता। तब पीड़ित

व्यक्ति देवता से 'पूछ' डालता है तो उसे देव दोष निकलता है, जिसके निवारण के लिए उसे कारी काटनी पड़ती है। दे. कारी काटना।

देऊफेरा : परिक्रमा। देवता द्वारा अपनी 'हार' या हार से बाहर की जाने वाली विभिन्न गाँवों की परिक्रमा। किन्नौर में इसे **बायोलिङ्** कहते हैं। प्रत्येक ग्राम में पहुँचकर देवता किसी निश्चित स्थान पर देऊखेल करता है और वहाँ के लोगों द्वारा समस्याओं के संबंध में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है। गाँव का हर घर इस अवसर पर अपनी श्रद्धानुसार देवता को अन्न अर्पित करता है, जिसे 'आच्छण' कहते हैं। ऐसे देऊ फेरे में देवता अपने संबंधियों से मिलने भी जाता है। किन्नौर में इसे **बोनिङ्** कहते हैं।

देऊ मनाणा : देवता को मनाना। देवता भी मनुष्य की तरह प्रसन्न-अप्रसन्न हो जाते हैं। कभी रूठकर अपने स्थान से किसी दूसरे देवता जो उसका संबंधी होता है, के पास चला जाता है। देवता के रूठने पर उसकी हार में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी जैसी आधिदैविक आपदाएँ फैल जाती हैं। इसके उपचार के लिए देवता के गूर से पूछा जाता है और देवता स्वयं गूर के मुख से सब कुछ बताता है। तब हार के लोग अपने घरों और गाँवों की सफाई करके निश्चित तिथि को देवता को पूरे साजो सामान के साथ लेकर उस देवता के मंदिर को प्रस्थान करते हैं जहाँ वह रूठ कर गया होता है। उस गाँव के लोग देवता का स्वागत-सत्कार करते हैं। तब वहाँ विशेष कार्यवाही द्वारा देवता को प्रसन्न कर लामण गीतों और 'हुल़की' नृत्य के साथ उसके अपने मंदिर में लाया जाता है।

देऊ-रिखी : देवता-ऋषि। वैदिक ऋषि जो महाभारत के बाद पहाड़ों में आए और लोगों ने उन्हें देवता के रूप में स्थापित किया, यथा मंडी ज़िला के रिवालसर का लोमश, मनाली का मनु, गोशाल का गौतम, मंडी के सनौर और कुल्लू के कमांद का पराशर, मलाणा का जमदग्नि, वशिष्ट का वसिष्ठ ऋषि। यह शब्द प्रायः आह्वान या संबोधन में अधिक प्रयुक्त होता है, यथा— देऊ रिखीया यानी 'हे देव-ऋषि'।

देऊली : देवोत्सव। कोई भी देव अनुष्ठान, जैसे—'भौती', जातर, देऊफेरा आदि तथा इन अवसरों पर देवता से संबंधित कोई भी कार्यवाही देऊली कहलाती है। देऊली के अवसर पर घर का स्वामी घर पर ज़रूर उपस्थित रहता है और देऊली में शामिल होता है।

देऊलू : देवता के लोग विशेषतया वे लोग जो देवता की तीर्थ यात्रा या देऊफेरा के

दौरान देवता के साथ जाते हैं। इस समय जिस गाँव में देवता का पड़ाव होता है, उस गाँव के लोगों द्वारा इनका बड़े प्रेम से आदर-सत्कार किया जाता है। इन्हें **देवाली** भी कहा जाता है।

देऊ शधाणा : देवता को आमंत्रण देना। कई बार व्यक्ति किसी संकट के निवारणार्थ या मनोकामना की पूर्ति के लिए अपने देवता से मनौती करता है कि यदि उसके संकट का निवारण हो जाए या उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाए तो वह अपने इष्ट देव को अपने घर बुलाएगा। मनौती पूर्ण होने पर उस व्यक्ति द्वारा देवता को घर बुलाने के लिए देवता से तिथि निर्धारित करवाई जाती है। वह व्यक्ति उस निर्धारित तिथि के दिन अपने घर में भोज का विशेष प्रबंध करता है, जिसमें अपने संबंधियों व गाँव वालों को शामिल करता है। देवता को निश्चित तिथि से दो-चार दिन पूर्व एक निमंत्रण भेजा जाता है। देवता का पुजारी, कारदार, कुठियाला और कार्यकर्ता उस दिन देवता को सजाते हैं और उसी दिन उस व्यक्ति के दूसरे निमंत्रण पर प्रातः ही देवता को रथ में सुसज्जित कर बाजे-गाजे के साथ उस व्यक्ति के घर लाया जाता है। देवता का खूब आदर-सत्कार किया जाता है। देवता के साथ आए व्यक्तियों को खाना खिलाया जाता है। शाम को देवता बाजे-गाजे के साथ ही वापस अपने मंदिर लौटता है।

देओकुरु : देवता को दिया जाने वाला कर। किन्नौर में चरागाह परंपरागत रूप से प्रायः ग्राम्य देवताओं के अधिकार में होते हैं। यदि किसी व्यक्ति को किसी दूसरे गाँव के देवता का चरागाह चराने के लिए लेना हो तो मेढ़े-बकरे के साथ एक निश्चित राशि उस देवता को चरागाह की चराई के रूप में अदा करनी पड़ती है। दी गई राशि को देओकुरु कहा जाता है।

देवठी : ग्राम देवता का मंदिर जिसमें प्रतिष्ठित देवता की हर संक्रांति तथा अनेकत्र प्रतिदिन भी पूजा की जाती है। पहाड़ी शैली में निर्मित यह मंदिर सात या नौ मंज़िला होता है। इसे सिरमौर क्षेत्र में **थड़ोट** और शिमला ज़िला में **देउरा** कहते हैं।

देवती : देवी। हिमाचल प्रदेश में देवी मान्यता बहुत व्यापक है। शहरों और नगरों में देवी की पूजा-अर्चना देश के अन्य भागों से अधिक भिन्न नहीं है। गाँवों में देवी की पूजा पद्धति वही है जो देवताओं की स्थिति में अपनाई जाती है, परंतु अनेक देवियों की न तो कोई मूर्ति है और न ही उनके मोहरे और रथ हैं। वे केवल आस्था और प्रतीक रूप में ही पूजी जाती हैं। तब इन्हें देवती कहा जाता है। कुल्लू ज़िला में **नौणी, फुंगणी** विशिष्ट देवतियाँ हैं, जिनके मंदिर हैं, चल-अचल संपत्ति है। इन्हें हुक्का, तंबाकू, चमड़े की वस्तुओं से सख्त परहेज़ है। वैशाख, श्रावण,

आश्विन, फाल्गुन में इनकी पूजा के दिन निश्चित हैं। इस पूजा में इनके गूर घुटनों के बल बैठते हैं। उनके ऊपर लाल वस्त्र ओढ़ाया जाता है। उन्हें स्त्रियों के सभी आभूषण, यथा— चंद्रहार, रुपए की माला, सोने की बालियाँ, कनबीचे, गोखड़ आदि पहनाए जाते हैं। इसी अवस्था में वे देवती की 'भारथा' और 'बर्शोहा' सुनाते हैं।

देवरी : दे. देहरी।

देवां : दे. गूर।

देवाड़ : वे व्यक्ति जो देवी-देवताओं की पालकी कंधे पर उठाते हैं।

देवाली : दे. देऊलू।

देहरी : छोटा मंदिर। यह स्तूपाकार छोटा मंदिर होता है, जहाँ कुलज की स्थापना की जाती है। इसे **देवरी** भी कहते हैं।

देहुरा : पहाड़ी शैली में बना देवता का मूल मंदिर, जहाँ देव पिंडी स्थापित होती है।

दोगी : दुगुना भाग। देवता के गूर, कारदार, पज़ियारा तथा भंडारी को देवोत्सवों के दौरान आयोजित भोजों में अन्यों से दुगुना हिस्सा दिया जाता है, जिसे दोगी कहते हैं। ऐसे अवसरों पर यदि बकरे आदि की बलि दी गई हो तो इसकी दोगी केवल गूर को जाती है, जिसमें उसे बलि पशु का सिर और टाँगें दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त पकाये हुये मांस का भी उसे दुगुना हिस्सा मिलता है।

दोर-टिल : वज्र घंटी। यह संयुक्त रूप से दोर्जे अर्थात् वज्र तथा टिलबु अर्थात् घंटी है। यहाँ दोर्जे को उपाय तथा टिलबु को प्रज्ञा अर्थात् शून्यता का प्रतीक माना गया है। तांत्रिक परंपरा में बुद्धत्व प्राप्ति के लिए उपाय और प्रज्ञा की अभिन्न साधना परमावश्यक है। गोन्पाओं में पूजा के समय सदा वज्राचार्य ही बायें हाथ में घंटी तथा दायें में वज्र का प्रयोग करते हैं। विशेष अवसरों पर अन्य भिक्षु भी इसका प्रयोग कर सकते हैं।

दोर्ज-फुरफा : धार्मिक शस्त्र। यह मायावी पत्थर को तोड़ने के लिए एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण शस्त्र है जो अष्टधातु का बना होता है। इसे तांत्रिक क्रिया द्वारा निर्मित किया जाता है और मंत्रोच्चारण के साथ धारण किया जाता है। इसके ऊपरी भाग में देवी की तीन मूर्तियाँ अंकित होती हैं, निचले भाग में भैरव की मूर्ति तथा मध्य में ध्वजा अंकित होती है। इसे प्रमुख बूछेन कमर में लगाता है और अनुष्ठान के समय इसका प्रयोग दुरात्माओं को भगाने के लिए करता है।

द्रोही : पीड़ित व्यक्ति द्वारा विद्रोही को देवता के नाम से दी जाने वाली सौगंध। यह सौगंध देऊ *द्रोही होली* कह कर दी जाती थी। इसका आशय होता था कि यदि अन्यायी व्यक्ति ने अमुक काम किया तो वह देवता के प्रति द्रोह यानी विद्रोह समझा जायेगा। यदि कोई निरर्थक किसी को इस शपथ से प्रतिबंधित कर देता था तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अभियोग चलता था और उसको दंडित किया जाता था। इस में जुर्माने के अलावा देवता के निमित्त बलि देना भी शामिल था।

धंगियारा : दे. धड़छ।

धजा : ध्वजा। देवी मंदिरों में जब श्रद्धालु दर्शनार्थ जाते हैं, तो अन्य भेंट के साथ लाल रंग की त्रिकोण ध्वजा जो जरी-गोटे से युक्त होती है, भी ज़रूर चढ़ाई जाती है। यह विजय की प्रतीक है।

धड़छ : कलछी के आकार का लगभग डेढ़ फुट लंबा धूपदान। यह चाँदी, ताँबे या लौह धातु का बनता है। इसके एक सिरे पर बड़ा सा कटोरा बना होता है, बीच में ऊपर की ओर एक छोटी कटोरी तथा नीचे की ओर दो टाँगें लगी होती हैं। पिछला भाग पूँछ की तरह नीचे को मुड़ा होता है। इस लटकी पूँछ और बीच की दो टाँगों की लंबाई समान होती है। इससे जब धड़छ को भूमि पर रखा जाता है तो यह समतल टिक जाता है। पूजा के दौरान धड़छ के बड़े कटोरे में धधकते अंगारों पर धूप, बेठर, पाजे के पत्तियों को रख कर देवोपासना की जाती है। मध्य की कटोरी में चावल के दाने रखे जाते हैं। जब कभी कोई व्यक्ति देवता से 'पूछ' डालने आता है तो उसे समाधान के साथ इस कटोरी से चावल के दाने दिए जाते हैं। अनेक धड़छों में धूप के कटोरे पर ज़ंजीर से बंधा ढक्कन लगा होता है ताकि वर्षा या आँधी में धूप को ढाँप कर रखा जा सके। इसे आऊटर सराज कुल्लू में **धुलछ,** शिमला में **धनेरा** और **दणारा,** मंडी, सराज और कुल्लू में **धंगियारा,** और धौड़छ सिरमौर में **धोनयारो** कहते हैं। हिमाचल के समस्त गाँवों में स्थित देवी-देवताओं के छोटे से लेकर बड़े मंदिरों में मूर्तियों तथा रथों के सामने सुबह, शाम की पूजा में 'घोंडी' और धड़छ का होना अनिवार्य होता है।

धनेरा : दे. धड़छ।

धनौल्टी : छत पर लगने वाला पहला फट्टा। देशज शैली के मंदिरों में विशेष कर 'देहुरे' में छत पर अंदर की ओर मोट-मोटे तख्ते लगे होते हैं, जिन पर ऊपर से स्लेट बिछाये जाते हैं। कई स्थानों पर तख्तों की ही छत होती है।

धरेवणे : दे. झूण।

धामी : देवता का एक कारकुन। यह एक खानदान से ही आगे से आगे चलता है। इसका काम पुजारी के साथ पूजा की सामग्री तैयार करना होता है। पूजा के लिए पानी लाना भोग बनाना और मंदिर में साफ-सफाई करना इसी के ज़िम्मे होता है। हर देव अनुष्ठान में इसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। देवता के यहाँ काम करने पर इसे भोजन मिलता है। किन्नौर में धामी को **गर** और बिलासपुर में **पाचक** कहते हैं।

धुणना : दे. विझणा।

धुलछ : दे. धड़छ।

धूणी : धूनी। किसी देवता को सुगंध-दान के निमित्त जलाए गए गुग्गुल आदि के धुएँ को धूणी कहते हैं। ठंड से बचने या शरीर को तपाने के लिए साधुओं द्वारा अपने पास जलाई जाने वाली आग भी धूणी है।

धूप : देवता के निमित्त जलाए गए गुग्गुल आदि का धुआँ। धूप एक जंगली पौधा है, जिसे 'धड़छ' में रखकर उस पर शुद्ध घी डाल कर मंदिरों में जलाया जाता है। यह एक स्वतः उपजा पौधा है जो वैशाख-ज्येष्ठ मास में चट्टानों के निकट खुले स्थान में उगता है और भादों-आश्विन में पूरे यौवन में आकर फूलता है। एक जड़ से सात-आठ पौधे निकलते हैं जो दो-ढाई फुट तक लंबे होते हैं। इसके कोई फल नहीं दीखते, परंतु फूल ही फल की तरह छोटे-छोटे और गोल लगते हैं। इन्हें प्रथम आश्विन को मनाये जाने वाले शौयरी त्योहार के आसपास जड़ के ऊपर से तोड़कर घर की सबसे ऊपर की मंज़िल में छत से लटका कर रखते हैं और यह सारा वर्ष घर और मंदिर में पूजा के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

धूप पीणा : धूप ग्रहण करना। मेले-त्योहारों या किसी विशेष अवसरों पर देवता अपनी 'हार' के प्रत्येक घर में जाता है। तब परिवार का मुखिया देवता को 'धड़छ' से धूप देता है और देवता धूप ग्रहण कर उस परिवार को अपने आशीर्वाद से उपकृत करता है। इसे देवता का धूप पीणा कहते हैं।

धैंतड़ू : एक देव वाद्य। इसके दोनों छोर पूर्णरूपेण खुले होते हैं। ध्वनि निष्पत्ति के लिए इसके ऊपरी छोर से फूँक मारी जाती है। इसमें केवल एक ही तरह की धाँ-धाँ की ध्वनि निकलती है।

धोनयारो : दे. धड़छ। काम न कर रहे व्यक्ति को व्यंग्यार्थ स्वरूप कहा जाता है– 'ताखे कोरुमा हाँ धूप री धोनयारो। चूँकि देवता कोई काम नहीं करते लेकिन सर्व शक्तिमान होने से पूजे जाते हैं। अतः बेकार बैठे व्यक्ति की देवता से तुलना कर कहा जाता है कि मैं तुम्हारी देवता की तरह धोनयारो नामक धूप पात्र से पूजा करता हूँ।

धौंसा : दे. नगारा।

धौंसी : दे. ढौंसी।

धौज़ : ध्वजा। सेना, रथ, देवता आदि का पताकायुक्त या पताका रहित बाँस या अन्य किसी लकड़ी का डंडा जो देवता के मंदिर के सामने या 'सौह' में गाड़ा जाता है। यह ध्वजा देवदार के पूरे वृक्ष को काट तराश कर खड़ी की जाती है। इसके सिरे पर लोहे का त्रिशूल या लकड़ी की बनी उड़ती चिड़िया स्थापित की जाती है। इसे निर्धारित समय पर कहीं तीन वर्ष और कहीं पाँच वर्ष बाद किसी मेले आदि के अवसर पर बदल दिया जाता है। धौज़ के लिए देवता स्वयं वृक्ष चुनता है। काटने से पहले उस पर बकरे की बलि दी जाती है। वृक्ष को काट तराश कर फिर गूर के माध्यम से निश्चित स्थान पर खड़ा किया जाता है। ध्वजा के शिखर पर रूमाल में पैसे बाँधकर रखे जाते हैं। मेलों के अवसर पर नंगे पैर उसके शिखर पर चढ़ने का मुकाबला होता है और जो व्यक्ति धौज़ पर चढ़कर रूमाल उतारता है, पैसे उसी के होते हैं। उसके ऊपर वही व्यक्ति नया रूमाल और पैसे रखता है। इसे **धौज़-रोहणा** कहते हैं।

धौज़ रोहणा : दे. धौज़।

धौड़छ : दे. धड़छ।

नगाड़ा : दे. नगारा।

नगारटू : दे. नगारा।

नगारा : एक देव वाद्य। इसे नगाड़ा तथा नगारटू भी कहते हैं। यह काँसे, पीतल या ताँबे का एक त्रिशंकु के आकार का खोल होता है, जिसका मुख भैंस या गाय-बैल की खाल से मढ़ा होता है। 'पुड़ा' मढ़ने के लिए चमड़े की ही रस्सी बनाई जाती है। रस्सी से जाला बुनकर पुड़े को मढ़ा जाता है। इसके मुख का व्यास लगभग एक फुट होता है। इसे सभी क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न तरीके के बजाया जाता है। कुल्लू तथा किन्नौर में यह ढोल की संगति करता है जबकि शेष हिमाचल में एक साथ दो नगाड़े बजाये जाते हैं। बायें नगाड़े को दमामा तथा दायें नगाड़े को तार कहते हैं। एक नगाड़े का स्वर बारीक होता है तथा दूसरे का मोटा। इन्हें यात्राओं में एक व्यक्ति पीठ पर उठाता है तथा दूसरा व्यक्ति बजाता है। कुल्लू तथा किन्नौर में यह एक व्यक्ति द्वारा गले से पेट की तरफ लटका कर स्वयं बजाया जाता है। इसे **धौंसा** और जनजातीय क्षेत्र में **टुनु-पुन** भी कहा जाता है।

नमग्याल छोरतेन : भोट परंपरानुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। यह स्तूप

वैशाली के लोगों द्वारा भगवान् बुद्ध की दीर्घायु के लिए प्रार्थना करने का प्रतीक माना जाता है। इसे विजयस्तूप कहते हैं।

नयंदस छोरतेन : भोट परंपरानुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। भगवान् बुद्ध ने अस्सी वर्ष की आयु में कुशीनगर में महापरिनिर्वाण का वरण किया था। यह उसी का प्रतीक है।

नरशिंघा : एक देव वाद्य। इसे **रणसिंघा, नृसिंगा** तथा **हरणसिंघा** भी कहते हैं। यह अंग्रेज़ी के 'एस' अक्षर के आकार का होता है। यह ताँबे, पीतल अथवा चाँदी आदि धातुओं से निर्मित होता है। काहल़ की तरह इसके भी दो भाग होते हैं। जिसमें तीन गाँठें होती हैं। इसमें फूँक बाहर और अंदर खींचने पर नाद निकलता है। देवताओं का यह प्रिय वाद्य है। यह लोकवाद्य लगभग समस्त हिमाचल में बजता है।

नरेल़ : नारियल। देवी-देवता के पूजन व मांगलिक कार्यों में नरेल़ चढ़ाने की विशेष परंपरा है। नारियल को जीव का प्रतीक माना जाता है। पूर्णाहुति में इसका डालना भी बलि प्रदान करना माना जाता है।

नरोल : गुप्त निवास स्थल। पौष मास की संक्रांति को देवी-देवता नरोल में चले जाते हैं। तब कोई शुभ कार्य नहीं किये जाते। इसे **नरोल पड़ना** कहते हैं। तब देवाज्ञा से रथ से मुख-मोहरे, आभूषण तथा वस्त्रादि उतारकर गुप्त भंडार में रखे जाते हैं और खाली रथ पर पर्दा डाल दिया जाता है। यह पर्दा फाल्गुन मास की संक्रांति को खुलता है। तब देवता भारथा सुनाता है, जिसे **नरोल खुलना** कहते हैं। नरोल पड़ने के पीछे लोक धारणा है कि भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर राजा बलि को वरदान दिया था कि उसके दरबार में अट्ठासी हज़ार देवी-देवता, ऋषि-मुनि दो महीने के लिए आकर पाताल लोक को स्वर्ग लोक बनाएँगे। इस उद्देश्य से आज भी देवी-देवता दो महीने पाताल में वास करते हैं।

नरोल खुलना : दे. नरोल।

नरोल पड़ना : दे. नरोल।

नरौह्‌र : ऐसा व्रत जो केवल देवताओं के गूर डगैल़ी (भादों मास की अमावस्या को पड़ने वाला डाकिनियों का पर्व) के दिन रखते हैं और यदि आस-पास के गाँवों में किसी भी जीव पर भूत आक्रमण करें तो उसकी छाया उन्हें नज़र आ जाती है और उसी समय गूर में देवता का प्रवेश हो जाता है तथा वह रक्षा का वचन सुनाता है।

नवाला : दे. नुआल़ा।

नवेद : नैवेद्य। प्रत्येक श्रद्धालु जब देवी-देवताओं के दर्शन हेतु देवालय में जाता है तो अपनी-अपनी सामर्थ्य एवं श्रद्धानुसार कोई न कोई नवेद अवश्य ले जाता है। यह श्रद्धालु की श्रद्धा भक्ति का एक प्रतीक है, जिसे मिष्टान्न, फल, मेवे, दूध, दही, नारियल आदि के रूप में चढ़ाया जाता है। कुछ देव स्थलों में वहीं हलवा आदि बनाकर देवता को चढ़ाया जाता है। यह प्रायः पुरुषों द्वारा ही तैयार किया जाता है। देवता को चढ़ाने के पश्चात् यह श्रद्धालुओं को वितरित किया जाता है। इसे देवता का आशीर्वाद माना जाता है। अतः प्रसाद चढ़ाना और ग्रहण करना सौभाग्य समझा जाता है। इससे असीम सुख-शांति प्राप्त होती है। इसे **भोग**, **प्रसाद** भी कहते हैं।

नशानदार : देवी-देवता के यात्रा पर निकलने पर देवता की 'हार' का जो व्यक्ति देवी-देवता के निशान अर्थात् रणसिंगा, काहल, करनाल, फलौहरी, सूरजपंखा, छड़ी इत्यादि उठाते हैं, उन्हें नशानदार कहते हैं। ये देवता के समीप निर्धारित स्थान पर बैठते हैं।

नांढा वीर : एक शक्तिशाली वीर। इसे गूंगा वीर भी कहते हैं। जब यह किसी को वश में कर लेता है या किसी चेले में इसकी शक्ति प्रवेश हो जाती है तो यह बोलता नहीं, केवल इशारे से बात करता है। सामने बैठा व्यक्ति इसके इशारों को समझ जाता है और यदि न समझे तो यह इशारे से ही उसको फटकार लगाता है, गुस्सा होता है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके प्रति भिन्न आस्थाएँ हैं। कुल्लू क्षेत्र में इसे प्रमुखतः मुर्गियों का वीर माना जाता है। कुक्कुट पालन का व्यवसाय अधिक फलदायक हो, इस प्रयोजन से आरंभ में ही एक मुर्गा उसे भेंट करने के निमित्त रखा जाता है और बड़ा होने पर उसे उसके पूजा-स्थान पर चढ़ा दिया जाता है। नांढा वीर का कोई मंदिर नहीं होता। किसी झाड़ी के नीचे नियत कोई बड़ा पत्थर पुराने समय से उसका स्थान माना जाता है, वहाँ मुर्गों के सिर और पंखों का ढेर लगा होता है व शेष मांस लोग घर ले जाकर खुद खा जाते हैं।

महासू क्षेत्र में यह वीर देवी का प्रहरी या रक्षक है। यदि कोई देवी के स्थान को दूषित करने का प्रयत्न करे या उसके क्षेत्र से वृक्ष काटे तो यह उसे हानि पहुँचाता है।

चंबा क्षेत्र में यह गूंगा वीर गौओं से संबंधित है। जब कभी पशुधन में रोग फैल जाता है तो उसकी पूजा के लिए तुरंत एक तवा सुरक्षित रखा जाता है। वीरवार के दिन उसकी पूजा की जाती है। उस दिन सिरे से मुड़ी हुई लोहे की एक सलाख गौशाला में ले जाई जाती है और आग जलाकर उसकी पूजा की जाती

है। एक बकरे की बलि दी जाती है और धातु की छड़ पर उसका लहू छिड़क दिया जाता है। उसे रोटियाँ भी भेंट की जाती हैं।

नागदेऊ : नाग या सर्प देवता। समस्त हिमाचल में नाग देवता सर्वाधिक पूजे जाते हैं। अनेक नागदेऊ वर्षा के देवता के रूप में माने जाते हैं, जैसे– शिमला क्षेत्र का गोली नाग मेघराज अर्थात् वर्षा का राजा कहलाता है। चंबा और कांगड़ा क्षेत्र का इंद्रुनाग, मंडी ज़िला के चच्योट का कमरूनाग भी वर्षा के देवता हैं, परंतु साथ ही मंडी ज्वालापुर के बरनाग या बरद नाग जैसे नागदेऊ भी हैं जो अतिवृष्टि रोककर आसमान साफ करते हैं। कलिहार नाग पशुओं का देवता है और अनेक नाग साँप और बिच्छू के काटे का इलाज करते हैं। नागों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक विश्वास के अनुसार वासुकि नाग, जिसका नग्गर, ज़िला कुल्लू के ऊपर हलाण में प्रसिद्ध मंदिर है, के गोशाल गाँव की एक कन्या के बीच विवाह संबंध के फलस्वरूप अठारह नाग बच्चे उत्पन्न हुए। बच्चों की माँ प्रतिदिन एक 'धंगियारे' से उनकी पूजा करने के बाद दूध पिलाकर एक भांदल (बड़ा घड़ा) में बंद कर इन नाग बच्चों का पालन-पोषण करती थी। एक दिन नाग बच्चों की माँ की अनुपस्थिति में लड़की की माँ उसी की तरह धंगियारे में आग-धूप लेकर जब बच्चों को दूध पिलाने गई तो जैसे ही नाग बच्चों ने दूध के लिए भांदल के मुख से सिर बाहर निकाले तो वह डर गई। उसके हाथ से धधकते अंगारों का धंगियारा छूट गया। नाग बच्चों में आग के कारण खलबली मच गई। वे भांदल का मुँह तोड़कर दूर भाग निकले। जहाँ-जहाँ वे पहुँचे वहाँ नाग देवता के रूप में प्रादुर्भूत हुए। माना जाता है कि शिरढ़ का काली नाग आग के धुएँ से काला हो गया। बटाहर का पीऊंली नाग पीला पड़ गया। हलाण का धूमल नाग धूमिल हो गया। गोशाल का काणा नाग अपनी आँख खो बैठा। पीणी के टुंडी नाग का हाथ कट गया। इसलिए ये सब दूर न जा सके और वहीं आसपास रुक गये। शेष जो ठीक थे, वे बहुत दूर निकल गए। ये सभी नाग अपने चमत्कार के कारण लोगों में पूजे जाने लगे। लोग इन्हें लोहे का खंडा, लोहे की छड़ चढ़ाते हैं, जो मंदिर में रखे जाते हैं। एक भेड़ और रोट भी चढ़ाया जाता है, जिन्हें पुजारी, चेला और चढ़ाने वाला आपस में बाँट कर खाते हैं।

नाग पूजा : लाहुल में नाग पूजा हिंदुत्व के प्रभाव से प्रभावित चंद्रभागा घाटी में मुख्य रूप से पाई जाती है। यहाँ पर अन्य देवी-देवताओं के मंदिरों के समान ही नाग देवता के मंदिर भी पाए जाते हैं। मोलङ् के ठरनाग के अतिरिक्त शांशा में भी इस नाग देवता का स्थान है। पशुचारक गाय का प्रथम प्रसव होने पर उसका प्रथम दिन का फटा हुआ दूध तथा अन्य दिनों के दूध से बने मक्खन तथा घी एवं उस

घी से बने पकवान सर्वप्रथम उसे अर्पित करते हैं। एक अन्य देवता जिसका नाम सब्दक है तथा जिसका प्रतीक एक पाषाण होता है, उसे भी नाग देवता का ही रूप समझा जाता है। इसका निवास जलस्रोत के आसपास के वृक्षों में माना जाता है। पट्टन घाटी के शिव मंदिरों में भगवान् शिव की मूर्ति के स्थान पर या तो शिवलिंग पाया जाता है या किसी पाषाण खंड पर उत्कीर्ण की गई नाग की प्रतिमा। इन्हीं की शिव रूप में पूजा की जाती है।

नागफणी : एक देव वाद्य जो देवालयों में ही बजता है। इसका प्रयोग प्रमुखतया चंबा क्षेत्र में होता है। यह फणिया सर्प के आकार का होता है। 60 से 70 सें. मी. लंबे इस वाद्य के दो खंड होते हैं जिसका अंतिम छोर सर्प के मुख के आकार में खुला होता है। यह नक्काशीदार होता है। सर्पाकार होने के कारण ही इसे नागफणी कहते हैं।

नाथ : एक जाति विशेष। इसे फलारी भी कहते हैं। वैसे तो भक्तजन ही देवता को फूल चढ़ाते हैं फिर भी कुछ देवताओं के यहाँ नाथ नियुक्त होता है जो विशेष पर्वों में फूल लाकर देवताओं के लिए फूलों की मालाएँ बनाता है।

नारसिंह : एक वीर। अनुश्रुति के अनुसार यह श्वेत चोला, लाल पगड़ी और श्वेत लंबी दाढ़ी धारण किए होता है। इसके एक हाथ में छोटा सा डंडा तथा दूसरे में नारियल का हुक्का होता है। कांगड़ा तथा बिलासपुर आदि क्षेत्रों में विशेष अवसरों पर नारसिंह के उपासक तूंबी बजाते हुए स्थान-स्थान पर घूमते हुए गाते हैं–

मेरे नारसिंघा निरंजनिया वीरा
वीरे ने मोही बौलिया, वीरे ने मोही बौलिया
वीरे मोही बौलिया जग साए
मेरे नारसिंघा निरंजनिया वीरा
जित्थु कन्या क्वारियाँ तित्थु बासा तेरा
घर मथुरा बिच, गोकल लिया औतारा

यद्यपि पुरुष और स्त्रियाँ सभी समान रूप से नारसिंह की पूजा करते हैं, परंतु स्त्रियों में यह अधिक लोकप्रिय है और इसे वे मातृ कुल देवता मानकर पूजती हैं। जो महिला इसकी पूजा करती रही हो, उसकी पुत्री को भी इसकी पूजा करनी पड़ती है। विवाह के अवसर पर वर पक्ष की ओर से कन्या के बरी वस्त्रों के साथ नारसिंह की पूजा हेतु एक विशेष वस्त्र, नारियल और चाँदी की प्रतिमा दी जाती है। यह भी विश्वास किया जाता है कि यह देवता संतान सुख देने वाला तथा विविध क्लेश निवारक है। यह प्रायः स्त्रियों पर आसक्त होता है। कुमारसेन

और अनेक अन्य क्षेत्रों में ऐसी भी धारणा है कि नारसिंह पुरुष के रूप में पति की अनुपस्थिति में स्त्री से मिलने आता है और यदि इस बीच पति घर में आ जाए तो उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि कोई स्त्री बीमार पड़ गई हो या जब कभी नारसिंह की पूजा की जानी हो तो उसके चेले को बुलाया जाता है। चेले के साथ दबातरा या तूंबी लिए बजंत्री या गायक होता है। घड़े पर रखी काँसे की थाली में नारियल रखकर उसे चंदन का तिलक लगाया जाता है और धूप, दीप जलाकर अक्षत के साथ उसकी पूजा की जाती है, जो नारसिंह की पूजा मानी जाती है।

ज़िला चंबा के भरमौर क्षेत्र में नारसिंह का मंदिर एक विशिष्ट उदाहरण है, जिसमें पीतल की सुंदर मूर्ति स्थापित है। ताम्रपत्र पर लिखे एक आलेख के अनुसार राजा शैल वर्मन के पुत्र योग वर्मन की रानी त्रिभुवन रेखा ने इस मंदिर और मूर्ति की स्थापना की थी। कुल्लू जनपद में नारसिंह को एक शक्तिशाली दैत्य माना जाता है। यह प्रायः परित्यक्त घरों, मालती-चमेली-जूही के फूलों में, कूपों, नदी-नालों और मंदिरों में रहता है। बच्चों और सुंदर स्त्रियों को रात्रि और विशेषकर दोपहर के समय अपनी ओर आकर्षित कर उन पर आसक्त हो जाता है। इससे बचाव के लिए छोटे बच्चों के मस्तक पर काला टीका लगाया जाता है। इसे प्रसन्न करने के लिए लोगों द्वारा बकरे की बलि भी दी जाती है और मीठा रोट, फूलों का हार तथा कच्चे सूत का धागा भेंट किया जाता है।

नियास : न्यास। मंदिर की दहलीज या उससे आगे मंदिर की पहली दीवार पर ज़मीन से लगा शहतीर। इसका विशेष महत्त्व होता है। देवता के दर्शन के लिए जाने वाला व्यक्ति पहले इसी पर माथा टेकता है।

निशान : प्रतीक चिह्न, जैसे— छड़ी, सूरजपंखा, झंडा, वाद्ययंत्र, सांकल, त्रिशूल, खंडा, कटार आदि। अधिकांश देवी-देवताओं के ये निशान श्रद्धालुओं द्वारा भेंट किये गए होते हैं। कुछ देवता स्वयं भी अपने खर्चे से इन्हें बनाते हैं। खंडा और कटार देवता स्वयं बनाते हैं। कुल्लू में जमलू देवता के खंडे मलाणा से ही दिये जाते हैं। जिस जमलू देवता का नया रथ बनता है, वह अपने मूलस्थान मलाणा जाता है और वापसी में वहाँ से खंडा भी साथ ले जाता है। इन प्रतीक चिह्नों का उद्देश्य मुख्यतः देवता के समारोह और देवयात्रा को अधिक आकर्षक बनाना होता है।

निहरा : **न्याय, सुव्यवस्था**। जब कोई देवता किसी कारणवश नाराज़ होता है तो उसकी 'हार' में आए दिन कोई न कोई दुर्घटना घटती रहती है और स्वयं भी देवता कष्ट में रहता है। ऐसी स्थिति में अन्य देवता जो रिश्ते में उससे बड़ा होता है, वह नीरा करवाने उसके पास आता है। तब नियमानुसार उस देवता का रथ आ

कर अपने संबंधी देवता जो संकट में होता है, का कष्ट जान कर उसका निवारण करता है और उसे न्याय दिलवाता है। इसे निहरा करना कहते हैं।

नीहर : देव पूजा के लिए जल लाने वाले को नीहर कहते हैं।

नुआला़ : शिवपूजा की विशेष विधि। परिवार में किसी खुशी के अवसर पर, मनौती, शिवरात्रि, विवाह आदि उत्सवों पर नुआला़ का आयोजन किया जाता है। इसमें नौ व्यक्तियों--गृहपति, जोगी, चार बंदे (गायक), चेला (शिवभक्त) तथा दो सेवकों -- कटवाल तथा बटवाल का संयोग रहता है। नुआला़ का आयोजन प्रायः घर के भीतर रात्रि के समय किया जाता है जो दूसरे दिन सूर्योदय या उसके बाद तक आवश्यक रूप से चलता है। निश्चित दिन जोगी अपनी परंपरागत वेशभूषा-- पीले रंग की धोती, पगड़ी, कानों में मुद्रा तथा गले में रुद्राक्ष धारण करके फूल माला, खाली तूंबा, दबातरा, कंसी, नांदी, पौहल, काहल, सांकल आदि लेकर अनुष्ठानकर्ता के घर आता है और घर के बाहर नाद बजाकर शिव का आह्वान करता है तथा मंडल तैयार करता है। कटवाल तथा बटवाल घर के दरवाज़े के पीछे दाहिने छोर से आरंभ करके बायें कोने तक जलधारा देते हैं। दरवाज़े के सामने व घर की अगली ओर जलधार दिया जाना वर्जित है। मंडल में चौरासी कोष्ठक, जो संभवतः चौरासी सिद्धों के सूचक होते हैं, बनाए जाते हैं और उन्हें चावल, माश तथा नमक आदि से भर दिया जाता है। मंडल के चार कोनों पर चार युग तथा मध्य में कैलास पर्वत दर्शाया जाता है। कैलास पर नौ लड़ियों वाली फूलमाला लटकाई जाती है, जिसके चक्र के मध्य ऊनी धागों का एक रस्सा कैलास के ठीक मध्य लटकाया जाता है। फिर कैलास पर शिवजी की मूर्ति स्थापित कर उसे लाल वस्त्र से ढक दिया जाता है। आयोजक दाहिना घुटना भूमि पर गड़ाकर, हरी दूर्वा मुख में रखकर दो खाली पात्रों में अंजलि से मक्की के दाने भरता है, जिसे दस्यूंद कहते हैं।

कटवाल और बटवाल योगी की सहायता के लिए रातभर जागते रहते हैं। चेला मंडल के पास के खुले स्थान पर नाचता है तथा एक ओर बंदे शिव-भजन गाते हुए मस्त हो जाते हैं। मंडल में पकवान तथा मिठाइयाँ आदि रखकर उस पर ऊन रखी जाती है और मेढ़े की बलि दी जाती है। बलि के पश्चात् मेढ़े की गर्दन व दाहिना अंग मँडल पर चढ़ाया जाता है। गृहस्वामी आठों कार्यकर्ताओं को लाल या पीले रंग की पगड़ियाँ दक्षिणा सहित भेंट करता है। योगी को पगड़ी के साथ धोती, चोला तथा कान के लिए चाँदी की मुद्राएँ भी दी जाती हैं।

नुआस : किसी देवता द्वारा यात्रा के दौरान अपने मूल स्थान तथा मेले में आये अपने संबंधी देवता के समक्ष नमन करने की क्रिया। ऐसे अवसर पर सम्मान देने वाले

देवता का रथ कभी दाईं ओर तो कभी बाईं और झुकता है मानो वह दूसरे देवता के गले मिल रहा हो और गूर 'घोंड़ी-घड़छ' के साथ दूसरे सम्माननीय देवता को प्रणाम करता है। इसी प्रकार मेले के दौरान देव प्रांगण में भी देवता चारों दिशाओं में जाकर प्रणाम करता है। इस प्रक्रिया को नुआस देणा कहते हैं।

नृसिंगा : दे. नरशिंघा।

नेउज़ : देव मंदिर में पूजा के दौरान देवता को चढ़ाई जाने वाली अन्न, घी आदि सामग्री। इसके अतिरिक्त मनोकामना पूर्ण होने पर जब देवता को घर लाया जाता है या कभी देवता फेरे पर किसी दूसरे गाँवों में जाता है तो एक स्थान पर अनाज की ढेरी लगाई जाती है, जिस पर देवता का रथ बिठाया जाता है। घर के बुज़ुर्ग अखरोट, चावल, फूल, धूप-दीप से देवता की पूजा करते हैं तथा गेहूँ, जौ, मक्की आदि अन्न देवता को चढ़ाते हैं। देवता को भेंट किए इस अनाज को भी नेउज़ कहते हैं। बाद में अन्न की ढेरी के साथ इस चढ़ावे को देवता का गूर, पुजारी और पुरोहित आपस में बाँटते हैं।

नौड़ : एक जाति विशेष। काहिका एक यज्ञ उत्सव है, जिसका मुख्य आधार नौड़ है। काहिका करने का अधिकार केवल इसी जाति को मिला है। यज्ञ करने की इनकी अपनी विधि है और अपने मंत्र होते हैं। यह पुश्तैनी होता है। काहिका की मुख्य दो कार्यवाहियाँ, एक 'छिदरा' करने की तथा दूसरी 'नौड़ मारने' की हैं। इन दोनों में नौड़ की विशेष भूमिका होती है। प्रथम कार्यवाही के लिए दे. 'छिदरा'। दूसरी कार्यवाही 'नौड़ मारने' में नौड़ को देवशक्ति से मारा व जीवित किया जाता है। इसके लिए इसे देवता की तरफ से अन्न व धन दिया जाता है। यदि कभी नौड़ मरने के बाद जीवित न हो तो उसकी पत्नी को देवता के रथ के मोहरे एवं आभूषण ले जाने का पूरा हक होता है। इसके पश्चात् देवरथ को नौड़ के साथ ही जला दिया जाता है, परंतु ऐसा विरल ही होता है।

नौड़ बदाही : काहिका यज्ञ उत्सव में नौड़ को देव शक्ति से मारने की एक कार्यवाही। दे. नौड़।

नौणी : दे. देवती। इसे दूध, घी, मक्खन की देवी माना जाता है। लोग गाय के ब्याने पर उसके दूध से बना पहला घी नौणी देवी के नाम सुरक्षित रखते हैं और फिर वैशाख, श्रावण, आश्विन, फाल्गुन मास में होने वाली इनकी किसी एक पूजा के दिन उसे देवी को चढ़ाते हैं।

न्यार : एक जंगली जड़ी, जिसे देवता को धूप देने के लिए जलाया जाता है।

पंचबला : देवता के निमित्त प्रति पाँचवें वर्ष पाँच बलियों से की जाने वाली पर्वत पूजा को पंचबला कहते हैं। इसमें पाँच प्रकार के जानवरों की बलि दी जाती है। बलि देने के तत्काल बाद इन्हें चारों दिशाओं में दूर-दूर फेंक दिया जाता है। इन पर कौए, गिद्धें आदि टूट पड़ते हैं। इस क्रिया को बाण पड़ना अर्थात् वाहन आना कहते हैं। इस बलि के पीछे यह धारणा है कि ग्राम में कोई प्राकृतिक प्रकोप न आने पाये तथा कोई आधि-व्याधि न हो।

पंचमुखी काहल : एक देव वाद्य जिसे देव नृत्य के अवसर पर ही बजाया जाता है। यह ताँबे से निर्मित पाँच मुख वाला सुषिर वाद्य है। इसका मुखभाग जुड़ा होता है। मुख भाग से दो अंगुल ऊपर से पाँच छोटे धतूरे के फूल के आकार के दो-दो फुट लंबे खोल होते हैं। इसे बजाने पर हा-हू की ध्वनि निकलती है।

पंजवीर : केवल हिमाचल में ही नहीं हिमाचल के बाहर देश के विभिन्न भागों में भी पंजवीर की बहुत मान्यता है। अनेक बार पंचवीर या पंजवीर से केवल एक सत्ता या एक ही वीर का आभास होता है। महान् वीरता के स्वामी को पंचवीर कहा गया है। उसमें पाँच वीरों जितनी शक्ति होती है परंतु जहाँ पंचवीर पाँच भिन्न शक्तियों का योग है वहाँ इनके कई रूप हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मणिभद्र, दीर्घभद्र, पूर्णभद्र, यक्षभद्र और स्वभद्र को पंचवीर का नाम दिया जाता है। पाँच पांडवों को भी पंच (पंज) वीर कहा जाता है। गुग्गा, बालकनाथ, ठाकुर, सखी-सरवर और शिव को भी पंचवीर माना गया है। यही स्थिति मुसलमानों के पंचपीरों की है। कहीं वे मुहम्मद, फ़ातिमा, अली, हसन और हुसैन हैं और कहीं शेख समैल, शाह दौलत, फतेह अली, फतेह खां और शाह मुराद हैं।

हिमाचल प्रदेश में पंजवीर से अभिप्राय प्रमुखतः पाँच पांडव भाइयों से है और उन्हें वीर रूप में पूजा जाता है। प्रदेश भर में पाँच पांडव भाइयों के अनेक मंदिर हैं, जिन्हें पंजवीर मंदिर के नाम से ख्याति प्राप्त है। ऐसे मंदिरों में कुल्लू के निकट धर्मबेढ़ (पुराना नाम धमसेढ़) का *श्री श्री पंचवीर* (पांडव) देवाश्रम विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ आदिकाल से ज़मीन में स्थित पत्थर की अनगढ़ी छः मूर्तियाँ हैं, जिन्हें युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा छठी द्रौपदी की मूर्तियाँ माना जाता है।

पंजवीर के संबंध में हिमाचल का एक उत्कृष्ट स्थान सोलन ज़िला की अर्की तहसील के बाड़ी-धार क्षेत्र में है। यहाँ सबसे ऊँचे शिखर बाड़ीधार पर युधिष्ठिर का मंदिर, पश्चिम की ओर सनोग गाँव में अर्जुन का, दक्षिण की ओर दयोथल में सहदेव का, पूर्व की ओर अंदरोली में नकुल और उत्तर की दिशा में बुइला गाँव में भीम के मंदिर हैं।

पगल : देवयात्रा या देव फेरे पर आए देवता के लोगों को भोजन और रिहाइश के लिए गाँव वालों में बाँटने की एक विधि। इसके अनुसार इन्हें बाँटने के लिए गाँव का मुखिया इन लोगों की एक-एक कोई भी वस्तु हाथ में ले कर उसके मालिक को बुलाता है और बताता है कि वह आज गाँव के अमुक परिवार का मेहमान होगा। इस तरह से सभी लोगों को गाँव के परिवारों में बाँटा जाता है। इसे देवता का आदेश समझा जाता है और हर देऊलू को इसका पालन करना पड़ता है। तब उस गाँव का हर परिवार अपने हिस्से में आए देऊलुओं की खूब आवभगत करता है।

पगारी : नई ब्याई गाय का वह घी जो देवता की अमानत के रूप में रखा जाता है। जब पगारी को काँसे की थाली में डालकर देवता को अर्पित किया जाता है तो वह अपने 'माली' में प्रकट होकर उसे पी जाता है और अर्पित करने वाले को बताता हे कि पगारी ठीक है अथवा नहीं। यदि उसमें कुछ कमी रह गई हो तो पगारी पुनः तैयार करनी पड़ती है।

पघुरी : (कु.) गर्भगृह। दे. घमीरी।

पचाउल : चावल के दाने जो गूर द्वारा हारियान को प्रश्न का उत्तर पूछने पर दिए जाते हैं। यदि ये विषय संख्या में आएँ तो शुभ अन्यथा अशुभ माने जाते हैं। ये देवता की ओर से श्रद्धालुओं को आशीर्वाद स्वरूप भी दिये जात हैं। वे इन्हें संभाल कर रखते हैं और विश्वास किया जाता है कि ये चावल के दाने भूत-प्रेत, डाइन व जादू-टोने के प्रभाव को रोकते हैं। इसे **चदावल** भी कहते हैं।

पच़ावण : प्रत्येक संक्रांति को की जाने वाली लोक देवता की पूजा के लिए प्रत्येक घर से भेजा जाने वाला आटा पच़ावण कहलाता है।

पज़ाथा : दे. पजौज।

पजेरा : पुजारी। देवी-देवता के मंदिरों में पूजा का कार्य करने वाले व्यक्ति जो वंशानुगत होते हैं। पूजा-अर्चना के लिए इन्हें धन दिया जाता है।

पजौज : देवता के निमित्त अर्पित अन्न। बाह्य सिराज में जब देवता को घर बुलाया जाता है, तब देवपूजा में जो अन्न चढ़ाया जाता है उसे पजौज कहते हैं और इस पर पुजारी का अधिकार होता है। मार्ग में पूजा के रूप में देवता के लिए अर्पित यही पजौज बजंत्रियों को मिलता है। पूजा के बदले पुजारी को भंडार से पजौज देने की प्रथा है। पजौज के लिए कहीं **पजौहज** शब्द भी श्रुतिगोचर होता है।

पजौहज : दे. पजौज।

पज़ौहर : वाद्ययंत्रों का समूह। इस समूह में मांदवा, गुजू, ताड़, बांसुरी तथा भाणा होते हैं। इसे गंधर्व वाद्ययंत्र माना जाता है और किसी विशेष मेले या पर्व विशेषतः बूढ़ी दियाल़ी के अवसर पर बजाया जाता है। ।

पज़ौहरू : 'पज़ौहर' को बजाने वाले।

पटांगण : देवमंदिर का प्रांगण। यह मंदिर की धरातल मंज़िल के सामने का भाग होता है। मेले में जाने से पूर्व देवता के रथ को तैयार करके जब मंदिर में बाहर निकाला जाता है तो सबसे पहले वह पटांगण में नाचता है और इसके बाद मेले में जाता है।

पटालस : दे. गूर।

पठैता : देवखेल आने पर गूर-चेले द्वारा काँपते-काँपते धीरे से श्रद्धालुओं की पीठ पर सांकल की थपकी देने की क्रिया को पठैता कहते हैं।

पड़ : दे. दरबाणी।

पड़ैई : काष्ठ स्तंभ। देवदार वृक्ष को काट-तराश कर तैयार किए गए इस स्तंभ को वर्ष में एक बार, विशेषकर वैशाख की संक्रांति या किसी विशेष पर्व पर मंदिर परिसर में भूमि में गाड़ दिया जाता है। लोकमान्यतानुसार पड़ैई शिवलिंग का प्रतीक है। जिसे विधिवत् पूजन करके स्तंभित किया जाता है। इसे पड़ियाई भी कहते हैं।

पनसकायङ : दे. देऊखेल।

परी : दे. जोगणी।

परैलदार : देवी-देवता को वर्ष में दो बार अन्न-धन एवं घृत देने वाले को परैल़दार कहा जाता है। यह सामान तब दिया जाता है जब देवी-देवता अपनी हार में 'हारगी' के लिए जाते हैं।

परौल़ : देवता के मंदिर का मुख्य द्वार जो काष्ठ निर्मित होता है। चाँदी या पीतल के पत्तरों पर देवी-देवताओं की लीलाओं से संबंधित चित्र उत्कीर्णित कर इन्हें इस द्वार पर मढ़ा जाता है। इसे पौल़ भी कहते हैं। राजपूत, मीयां समुदाय के कुल देवता या देवी के स्थान को भी पौल़ कहा जाता है। यह मंदिर तोरण द्वार की तरह होता है।

पर्ची डालना : देवता से प्रश्न पूछने की एक विधि। इस समय देवता का रथ कंधे पर आरूढ़ होता है। प्रश्नकर्ता के प्रश्नानुसार तीन पर्चियाँ लिख कर

अलग-अलग जगह छुपा दी जाती हैं। तब देवरथ इनमें से एक पर्ची को ढूँढ कर वहाँ झुक जाता है। पर्ची में जो कुछ लिखा होता है, वही देवता की ओर से प्रश्न का उत्तर होता है।

पहाड़िया : एक वीर देवता जो प्रायः गद्दियों की रखवाली करता है। इसके एक हाथ में छोटा सा डंडा और दूसरे में हुक्का रहता है। पीठ पर 'किरडू' होता है। जिस घर में इसकी पूजा होती है उस घर में उसके नाम से मेढ़ा या मुर्गा पाला जाता है और विशेष अवसरों पर इसके नाम से उसकी पूजा की जाती है। किसी के घर में प्रवेश करके अन्न-धन की सारी बरकत ले जाता है और अपने मालिक के घर पहुँचा देता है। यदि किसी व्यक्ति को चिपक जाए तो उसे बहुत परेशान करता है। पीड़ित व्यक्ति सीटियाँ बजाना शुरू कर देता है। इसका उपचार तंत्र-मंत्र द्वारा किया जाता है। मंत्रों द्वारा चेला इसे वश में करके किसी निर्जन स्थान पर ले जाकर कील देता है। इसे लोग प्रायः कनियार के पेड़ के नीचे चौकी में स्थापित करते हैं, जिसमें उसकी चरण पादुका भी रखी जाती है। लोग नीले रंग के छेलू (बकरी के बच्चे) को पहाड़िया के नाम पर पालते हैं। इसकी बलि नहीं दी जाती परंतु पूजा के समय इसे साथ रखा जाता है। प्रायः स्त्रियाँ इसकी 'चेला' होती हैं। यदि पहाड़िया नाराज़ हो जाए तो घर पर पत्थर बरसाता है। इसकी भारथा में बताया जाता है कि यह भरमौर चंबा से आया है।

पाचक : दे. धामी।

पाची : बलि के लिए पशु के कानों में डाले अक्षत, पुष्प आदि। बलि देने से पूर्व देवाज्ञा लेना आवश्यक माना जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम बलि पशु के पाँवों को पानी से पूज कर उस पर पवित्र जल छिड़का जाता है। उसके माथे पर कुंकुम, अक्षत और पुष्प लगाये जाते हैं। इस सामग्री को उसके कानों में भी डाला जाता है। इसे पाची पाणा या **चुलू डालना** कहते हैं। तब गूर या पुजारी बलिपशु पर जल छिड़कता है। ऐसा करने पर यदि पशु अपना पूरा बदन हिलाता है तो समझा जाता है कि देवता ने बलि को स्वीकार कर लिया है और यदि केवल सिर हिलाता है तो देवता की अस्वीकृति मानी जाती है। ऐसी स्थिति में देवता से अर्ज़ करके देवता को मनाया जाता है और पुनः पाची डाली जाती है।

पाणोध : मेढ़ा जिसे देवता के निमित्त रखा जाता है। इसे न तो काटा जाता है और न ही अन्य देवताओं की बलि चढ़ाया जाता है। ऐसा किसी विशेष देवता की मनौती के तौर पर किया जाता है।

पातल़ : दे. कवारा।

पादका : सपाट पत्थर पर देवी या देवता के पाँवों के उकेरे चिह्न। कहीं-कहीं ये स्तंभ के ऊपर बनाए होते हैं। देवी-देवताओं के मुख्य स्थान पर न जा सकने की स्थिति में पादका के पास ही पूजा की जाती है।

पालकू : रथ का संदूक की तरह का निचला भाग, जिसके ऊपर से रथ के मूल आकार को तराशा जाता है। वस्तुतः देवता का रथ अर्थात् पालकी एक ही लकड़ी के ठेले से तैयार की जाती है। उसका मूलाधार पालकू है। इसके अतिरिक्त एक मोटा मज़बूत वस्त्र भी पालकू कहलाता है, जिसे नीचे बिछाकर उसके ऊपर देवता के रथ को बिठाया जाता है।

पालसरा : देवता का कारकुन यह देवता के पास आई हुई भेंटें संभालता है। भेंट में आये जीवित बकरों इत्यादि को भी यही पालता है। जब कभी देवता को किसी कार्य के लिए बकरे की बलि की आवश्यकता पड़ती है तो उस समय पालसरे द्वारा पाले हुए बकरे काटे जाते हैं।

पालौ पगारनौ : पल्ला पसारना। यह अपने शत्रुओं को बददुआ देने का एक तरीका है। किसी मंदिर या देवालय में जाकर या फिर प्रातः, सायं, दोपहर के समय मंदिर के सम्मुख खड़े होकर अपना आँचल फैलाकर यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति का बुरा हो, सर्वनाश हो आदि-आदि लेकिन बददुआ तभी लगती है यदि पालौ पगारनौ वाला व्यक्ति इस मामले में सच्चा हो।

पिंडी : शिवलिंग की तरह का पत्थर का पिंड। यह गढ़ी-गढ़ाई भी हो सकती है, परंतु प्रमुखतः यह अनगढ़ पत्थर होता है जो मंदिर में स्थापित होता है। इस पिंडी में देवी या देवता की आत्मा का वास माना जाता है और इसकी देवी-देवता की तरह ही पूजा की जाती है। जो स्थान रथ में 'जीऊमुख' का है वही स्थान मंदिर में पिंडी का है। इसकी आस्था सर्वाधिक है और इसे साकार परमाधिकार युक्त देवी-देवता माना जाता है। इसे **मूरत** भी कहते हैं।

पिड़ोकरा : बलि। जब कोई व्यक्ति अपनी मनौती पूर्ण होने पर देवता का सत्कार करने के लिए उसे अपने घर आमंत्रित करता है तो देवता को रात्रि विश्राम के लिए पालकी में लाया जाता है और जिस समय पालकी से देवता को उतारा जाता है उस वक्त उसके निमित्त बकरे की जो बलि दी जाती है उसे पिड़ोकरा कहते हैं।

पीढ़ना : संपीडन। देवता के रथ के 'चिड़ग' को वस्त्रों से इस तरह ढक देना कि लकड़ी कहीं से भी दिखाई न दे। उसके बाद रथ को मुख-मोहरों, आभूषणों, छत्रों, फूलों तथा रंगीन कपड़ों से सजाया जाता है। कुछ क्षेत्रों में इसे **पूरना** कहते हैं।

कुछ देवताओं को हमेशा ही पीढ़ कर रखा जाता है, जबकि कुछ देवताओं को उनके विशेष पर्वों व उत्सवों के अवसर पर पीढ़ा जाता है। जो रथ सर्वदा पीढ़े होते हैं उनकी नियमानुसार रोज़ पूजा होती है और अन्यों की उनके पर्व-त्योहारों के अवसर पर ही पूजा होती है जब उन्हें पीढ़ा जाता है। रथ को पीढ़ने के बाद ही उसमें देवता का वास समझा जाता है और इस अवस्था में ही यह भक्तों के प्रश्नों का उत्तर देता है।

पीर : एक वीर। इसलाम मत को मानने वाले उदार दृष्टिकोण वाले संत या फकीर। साधारणतया वीर और पीर में कोई अंतर नहीं है। जिस चमत्कारी शक्ति की हिंदू लोग वीर के नाम से पूजा करते हैं, वैसी ही करामाती शक्ति की मुसलमान पीर के नाम से इज़्ज़त करते हैं। पीरों का हिंदू लोग भी उतना ही सम्मान करते हैं जितना कि मुसलमान। पीरों की दरगाहों पर हिंदू-मुसलमानों को समान रूप से जाते देखा जा सकता है। इसका एक उदाहरण नादौन से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित भरमौटी नामक स्थान है जहाँ पीर बाबा फाज़िल शाह की दरगाह पर आज भी श्रद्धालुओं की भीड़ लगी रहती है। कहते हैं बाबा ने राजा संसारचंद के मृत बेटे को जीवित किया था और स्वयं वहीं समाधि लगा ली थी। अब एक हिंदू परिवार इसकी देखभाल करता है। ऐसा विश्वास है कि राजा संसारचंद ने स्वयं इस दरगाह को तैयार करवाया था।

पुजारी : पुजारी का काम देवता की पूजा करना और पूजा से संबंधित विधि-विधान बताना है। वही देवता के मंदिर में जाकर पूजा करता है। पुजारी के पद के लिए देवता द्वारा विशेष वंश निर्धारित किए गए होते हैं। उन्हीं वंशों में से पुजारी चुना जाता है। पुजारी को देवता की इच्छा पर कभी भी निकाला जा सकता है। महासू क्षेत्र में देवताओं को जब बकरे आदि की बलि दी जाती है तो उस बलिपशु का सिर पुजारी को दिया जाता है।

पुराड़ी लगाणा : यात्रा पर जाते हुए या किसी विशेष कार्य के लिए प्रस्थान करते समय द्वार पर जल से भरे कुंभ को रखना पुराड़ी लगाणा कहलाता है और इसे शुभ माना जाता है।

पुरोहित : देवता का कारिंदा। यह देवमंदिर में हवन-यज्ञ आदि करने, शुभ मुहूर्त निकालने तथा वर्षफल सुनाने का काम करता है। इसका चुनाव देवता स्वयं करता है।

पूछ : पूछना, पूछ डालना या पूछ पाना। देव आस्था के अंतर्गत इस शब्द के अर्थ में सांस्कृतिक विशिष्टता आ गई है। जब कभी किसी व्यक्ति पर भारी कष्ट, दुख, विपत्ति पड़ जाए तो वह अपने देवता के सामने प्रस्तुत होता है, सिर से टोपी उतार

देता है, मुँह में घास के तिनके डालता है और अबोध, अवाक् और निरीह पशु का सांकेतिक रूप धारण करके पूछता है, "बता मेरा क्या कष्ट है? इस कष्ट का क्या कारण है और इससे मुक्ति का क्या उपाय है?" और देवता उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देता है। यही पूछ है जो यहाँ की देव-परंपरा को देश के अन्य भागों की देव-परंपरा से भिन्न करती है। भारत भर में अनेक शक्तिशाली देवी-देवता और उनके मंदिर हैं, परंतु यह केवल हिमाचल के देवी-देवता हैं जो अपने भक्तों के आह्वान पर उनके रू-बरू होते हैं और उनसे सीधी बात करते हैं, उन्हें अनुचित कार्य करने से रोकते हैं। पाप, कुकर्म पर उन्हें सज़ा देते हैं और सत्कर्मों के लिए पुरस्कृत करते हैं। पूछ दो तरह से डाली जाती है, एक उस समय जब देवता का आयोजन हो रहा हो, देवता रथ पर आसीन हो और देवता का गूर अर्थात् अधिवक्ता पहले से ही उभर कर देवता का आनुष्ठानिक कार्य कर रहा हो, 'भारथा' दे चुकने के बाद लोगों की फरियाद सुन रहा हो। दूसरा विशेष स्थिति में देवता के गूर को उभरने के लिए विवश किया जाता है ताकि देवता की आत्मा उसमें प्रविष्ट हो जाए और वह पूछ का उत्तर दे। इसके लिए संगीत का सहारा लिया जाता है।

पूछ के दो रूप हो सकते हैं– व्यक्तिगत और समष्टिगत। यदि समस्या व्यक्ति विशेष की हो तो पूछ व्यक्तिगत है। उसे कभी भी व्यवहार में लाया जा सकता है परंतु यदि उसमें सामूहिकता निर्दिष्ट हो, एक से अधिक या सभी जनसमूह अथवा पूरे समाज से इसका संबंध हो तो वह समष्टिगत होगी और उसे 'जगती-पूछ' कहा जाता है। इसकी प्रक्रिया लंबी होती है और इसमें सारे देवताओं का साझा मत पूछा जाता है।

पूज : देवता की 'हार' में मनाया जाने वाला उत्सव। पूज की लग्न-वेला पूर्व निश्चित होती है। इसे देवता अपने हिसाब से निर्धारित करता है। पूज का पता पूरी हार को चले, इसके लिए जिस स्थान पर पूज होनी होती है, वहाँ हवा में गोली दागी जाती है। इसकी ध्वनि सुन कर अगले गाँव वाले गोली दागते हैं ताकि वहाँ से अगले एवं दूरस्थ गाँव वालों को इसका पता चल सके। इस प्रकार कुछ ही मिनटों के भीतर समस्त हार में इसका पता चल जाता है और लगभग एक ही समय में सामूहिक पूज उत्सव आयोजित होता है। पूज में प्रत्येक परिवार अपने समस्त मित्रों और रिश्तेदारों को निमंत्रण देता है। पूज के दौरान उस 'हार' विशेष में त्योहार जैसा वातावरण होता है। प्रत्येक परिवार में 50 से 200 तक मेहमान होते हैं। इनकी बहुत गर्मजोशी से मेहमाननवाज़ी की जाती है। पूज में एक विशेष बात यह होती है कि प्रायः समस्त हार में सभी लोगों के घरों की छतों पर एक ही समय में बलियाँ दी जाती हैं।

पूजणा : आधिदैविक कष्टों के निवारण हेतु करवाया जाने वाला उपचार, जिसमें

देवशक्ति को गूर में प्रकट किया जाता है। तब यह पीड़ित व्यक्ति को अपने सामने बैठाता है। उसके गले में एक साँकल डालता है और सामने भूमि पर अपनी कटार गाड़ देता है। तत्पश्चात् उस व्यक्ति को अपने सिर के ऊपर शूर्प पकड़ने को कहा जाता है। शूर्प के ऊपर देवता के रथ को दायें से बायें घुमाया जाता है। इस प्रक्रिया के बाद उसके ऊपर दायें-बायें दो व्यक्ति एक मोटा मूसल पकड़ते हैं। उस मूसल पर एक बकरे को चढ़ाया जाता है और उसकी चारों टाँगें मज़बूती से पकड़ी जाती हैं। फिर एक व्यक्ति उस मूसल पर के बकरे का सिर गँड़ासे की सहायता से धड़ से अलग कर देता है। इस दौरान बजंत्री रौद्र धुन बजाते हैं। बकरे के कटने के बाद मूसल और शूर्प को हटा लिया जाता है। पीड़ित व्यक्ति को बकरे का थोड़ा रक्त चटाया जाता है। उसके सिर की टोपी या धाटू उतार कर नयी टोपी या धाटू पहनाया जाता है। तब गूर स्वयं उसे भूमि से उठाता है और रोगमुक्ति का आश्वास देता है। इस सारी प्रक्रिया को पूजणा कहते हैं।

पूजन : ईश्वर या किसी देवता का पत्र, पुष्प, गंध, फल, जल आदि से किया गया स्मरण, स्तवन आदि। यह एक प्रकार का लघुयज्ञ है। लोग प्रतिवर्ष या अपनी इच्छा से कभी भी शुभ मुहूर्त में भरपूर अन्न व आरोग्य की प्राप्ति हेतु अपने इष्ट देवी-देवताओं का श्रद्धा से पूजन करते हैं। इसमें सामूहिक रूप से बलि भी चढ़ाई जाती है। इस अवसर पर 'धड़छ' में हवन सामग्री डालकर और इसी में अग्नि प्रज्वलित करके हवन कार्य कर लिया जाता है। ऊँची चोटियों पर स्थित देवियों की विशेष पूजा की जाती है और उनको हलवे का भोग लगाया जाता है। अनेक क्षेत्रों में लोग परंपरानुसार देवी-देवताओं के पास जाकर मनुष्यों व पशुओं को किसी विशेष महामारी से बचाने के लिए भी पूजन करते हैं। इस प्रकार पूजन लगभग प्रत्येक देवस्थान में होते हैं।

पूजा-प्राच : पूजा में प्रयुक्त होने वाली सामग्री, जिसे देवता की हार से इकट्ठा किया जाता है।

पूरना : दे. पीढ़ना।

पेटारी : पिटारी। पीतल का डब्बा जिसमें देवता के उपकरण रखे रहते हैं। जब देवता यात्रा पर जाता है तो इस पेटारी को पुजारी पीठ पर उठाकर चलता है।

पैहरु : बलि हेतु प्रयोग में लाया जाने वाला मेढ़ा।

पोखू वीर : हिमाचल प्रदेश के शिमला क्षेत्र के वीरों में पोखू वीर का नाम आता है। इसे झाड़-फूँक के लिए याद किया जाता है। अनेक बार यह माली या चेले

में भी प्रवेश कर जाता है, तब यह कच्चा मांस खाता है और पंद्रह-बीस किलो पानी एक ही बार पी लेता है।

पोगलदार : देवता के पहरेदार। इनकी नियुक्ति कारदार करता है। देवता जब यात्रा पर निकलता है तभी इनकी नियुक्ति होती है। ये लोगों के मध्य अनुशासन स्थापित करने में कारदार की सहायता करते हैं। देवयात्रा के समय ये देवता के इर्द-गिर्द सोते हैं।

पोगले : पूछ डालने की एक विधि। इसमें देवरथ को कंधे पर उठाकर उसके सामने तीन पत्थर रखे जाते हैं। पूछ डालने वाला व्यक्ति इन तीनों पत्थरों में अपने तीन उत्तर ध्यान कर देवता के सामने हाथ जोड़कर बैठता है। तब देववाद्यों की धुन पर नाचते हुए देवता अपनी अर्गलाओं से इनमें से एक पत्थर की ओर इंगित करता है। प्रश्न पूछने वाले व्यक्ति ने इसमें जो उत्तर ध्या रखा होता है वही देवता की ओर से सही माना जाता है। पोगले की विधि को **पौगल, पोगै** भी कहते हैं।

पोगै : दे. पोगले।

पौगल : दे. पोगले।

पौटड़ी पूज़ : 'जोगणियों' की छाया से पीड़ित व्यक्ति को उनसे छुटकारा दिलाने के लिए किया जाने वाला तांत्रिक उपचार। यह उपचार शुभ मासों में ही किया जाता है। पौटड़ी पूज़ दो प्रकार से की जाती है। एक में मुर्गे की बलि दी जाती है तथा दूसरी में पुष्पों का ही प्रयोग किया जाता है। पौटड़ी पूज़ की कार्यवाही घर से दूर उस दिशा में की जाती है जिस दिशा में जोगणियों की छाया पड़ी हो। इसके लिए गूर पत्थर की दो स्लेटें लेता है, जिन्हें पौटड़ी कहते हैं। उनके ऊपर गोबर के पाँच-पाँच पिंड रखे जाते हैं, जिनके ऊपर दूर्वा लगाकर उसके चारों ओर मौली फेरी जाती है, जिससे उसका आकार गृह की भाँति बन जाता है। तब घर से लाए गए पाँच गेहूँ के व पाँच मकई के पराँठों को तोड़-तोड़ कर पौटड़ियों पर रख दिया जाता है। एक पौटड़ी पर गेहूँ के पराँठों के टुकड़े तथा दूसरी पर मक्की के पराँठों के टुकड़े रखे जाते हैं। आटे का बनाया दीपक जलाया जाता है। उसी में एक सिक्का डाल दिया जाता है। बेठर नामक पौधे का धूप जलाया जाता है। गूर देवी-देवता का ध्यान करता है। वह रोगी को भी ध्यान करने को कहता है। धूपदानी में कुंगू लगाने के पश्चात् वहाँ उपस्थित सभी लोगों को भी उसका टीका लगाया जाता है। अंत में बलि दिए जाने वाले मुर्गे के सिर पर कुंगू लगाकर उस पर चावल, फूल तथा जल छिड़क दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् जब मुर्गा 'बिझ़' जाता है तो उसे पकड़ कर रोगी के सिर पर मरोड़ दिया जाता है और लोग अपने-अपने घर लौट आते हैं।

पौणे री मुट्ठी : पवन मुष्टि, लक्षणार्थ में देवशक्ति। जैसे पवन मुट्ठी में नहीं समाता परन्तु आँधी-तूफान से अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता है, वैसे ही देवी-देवता अपनी शक्ति का आभास कराते हैं।

पौहल : एक देव वाद्य जो देव पूजन के अवसर पर बजाया जाता है। जनश्रुति के अनुसार इस वाद्य का निर्माण देवाधिदेव शिव ने किया है। यह चंबा के भरमौर खंड में प्रचलित है, यह वाद्य लाहौल-स्पिति में भी थोड़े नाम भेद से प्रचलित है। यहाँ इसे **चौहन** कहते हैं। डमरू के आकार का यह वाद्य पीतल या ताम्र निर्मित होता है। इसकी लंबाई सवा फुट की होती है। दोनों ओर के मुखों का व्यास लगभग एक समान छः-छः इंच होता है। जिन पर भेड़ या बकरी के 'पुड़े' चढ़ाये जाते हैं।

प्रजा : देवता को मानने वाले लोग। दे. हारीए।

प्रसाद : दे. नवेद।

प्राणप्रतिष्ठा : एक अनुष्ठान जिसमें देवी-देवता की मूर्ति या रथ में उनके प्राण अर्थात् शक्ति स्थापित की जाती है। फिर वे प्राणवान् होकर गूर के माध्यम से लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं। उनकी इच्छाएँ पूरी करते हैं।

प्रौगड़ौ : देवत्व प्रकट होना। 'छ़राउण' बजने के साथ ही गूर में देवत्व प्रकट होता है। उसके शरीर में कंपन शुरू होती है और वह लोहे की ज़ंजीर से अपनी पीठ पर प्रहार करता है। उस समय सभी उपस्थित जन अपने हाथ जोड़कर, हे प्रौगड़ौ बोलते हुए देवता से मंगलकामना की प्रार्थना करते हैं।

फड़ी : एक देव वाद्य। यह 'भेखल' की लकड़ी का बना चार फुट लंबा वाद्य है, जिसके दोनों सिरों पर बकरी का चमड़ा मढ़ा जाता है। देवता के विशेष पर्वों, देवता की जन्मतिथि 'जाग' पर तथा चेले द्वारा किए जाने वाले 'खंडा' नृत्य में इसका वादन अपेक्षित होता है। इसे 'जेठा' बाजा भी कहा जाता है। गृह पूजा के समय देवरथ के आगमन पर सबसे पहले इस वाद्य की पूजा होती है। इस पर फूल, धूप आदि अर्पण करने के पश्चात् ही ग्राम देवता का गृह-दौरा संपूर्ण तथा सार्थक समझा जाता है। यह वाद्य पतली छड़ी से धीरे-धीरे बजाया जाता है। लोक विश्वास के अनुसार इसका नाद पाताल लोक में भी सुना जा सकता है।

फरौहरा : दे. झंडा।

फलारी : दे. नाथ।

फलौहरी : दे. झंडा।

फाँट : हिस्सा। देवता के तीर्थयात्रा पर जाने या बड़ा यज्ञ करने की दशा में प्रत्येक गाँव में हर परिवार को फाँट डाल दी जाती है, जिसका निर्णय सर्वसम्मति से लिया जाता है। यह फाँट अनाज के रूप में भी होती है और नकद रूप में भी।

फाहोड़ी : सिद्ध का एक चिह्न। लकड़ी के डंडे के ऊपर लगा एक अर्धवृत्ताकार लकड़ी का टुकड़ा। सिद्ध पूजा में उसका उपयोग होता है।

फुंगणी : दे. देवती।

फुल्ली : किसी व्यक्ति की मनौती पूर्ण होने पर उस द्वारा देव मंदिर की परौल़ पर कील से सटाये पैसों को फुल्ली कहते हैं।

फेरे गाहणा : चेले में दैवी शक्ति के प्रवेश होने पर वह कभी-कभी दूसरे देवता के दर्शन करने दो-तीन मील दूर चला जाता है। इस प्रक्रिया को फेरे गाहणा कहते हैं। ऐसा होने पर देवता के बजंत्री उस समय तक ढोल बजाते रहते हैं जब तक चेला वापस नहीं आ जाता।

फोबरङ् : किन्नौर के ग्राम देवताओं का वाहन। इसमें एक काष्ठदंड को छत्र तथा रंगबिरंगे कपड़ों से सजाया होता है। छत्र के नीचे मुख-प्रतिमाएँ बाँधी होती हैं। इस फोबरङ को इसके निचले हिस्से से उठाकर एक व्यक्ति इधर-उधर ले जाता है। इस तरह के वाहन वाले देवी-देवता अपने शीश संकेत से बातें करते हैं। ये अपने माली के शरीर में प्रवेश करके ही अपनी प्रजा के साथ बात करते हैं। इसे **खंडो** भी कहते हैं।

फौरुशा : लगभग 40-50 किलो वज़न का ताम्रपात्र। यह सर्वत्र समान व्यास की गोलाई वाला, चौड़े मुख का 4 फुट ऊँचा पात्र है। इसे अनाज, घी तथा जल भंडारण के काम में लाया जाता है। यह मंदिरों में होता है और घर में मांगलिक कार्य, अनुष्ठान आदि में प्रयोग के लिए मंदिर से लाया जाता है।

बंदे : 'नुआला' में शिव-भजन गाने वाले व्यक्ति को बंदे कहा जाता है।

बकरशूना : एक वीर। जनजातीय क्षेत्र में बकरशूना घने जंगलों का रक्षक है। वह पहाड़ की चोटियों पर भी रहता है। वन के वृक्षों की रखवाली करता है। कुछ क्षेत्रों में इसे भूत माना जाता है। परंतु जनजातीय क्षेत्र से लगते पड़ोसी क्षेत्रों में इसे **लातुला वीर** कहते हैं।

बखाणा : व्याख्यान। हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में लोक देवताओं द्वारा अपनी प्रजा को भविष्य में घटने वाली घटनाओं की जानकारी देने को बखाणा कहा जाता है। लोकविश्वास के अनुसार 7 माघ को सभी देवी-देवता स्वर्ग लोक चले जाते

हैं और 15 माघ को वहाँ से वापस लौटते हैं। इन सात दिनों में देव मंदिरों में पूजा नहीं होती। 7 माघ को सारी प्रजा अपने चूल्हों की लिपाई करके मिष्टान्न बनाती है और रात्रि के समय चूल्हे पर धूप जलाया जाता है। स्वर्ग में ब्रह्मा की अध्यक्षता में विभिन्न देवी-देवताओं को आने वाले वर्ष के लिए हिस्सा बाँटा जाता है। किस देवता को कितना भाग एवं क्या-क्या मिला है, इसको माघ तथा फाल्गुन मास की संक्रांति के दिन देवता अपने गूर के माध्यम से अपनी प्रजा को बताते हैं। इस विवरण का शुभारंभ करने से पहले देवता अपने इतिहास पर पूर्ण प्रकाश डालकर अपनी आत्मकथा को उद्घोषित करते हैं, यथा– जिस स्थान पर देवता की उत्पत्ति हुई, वे क्यों वहाँ से आए, मार्ग में किन-किन परिस्थितियों एवं बाधाओं का सामना करना पड़ा और अंत में उन्होंने कहाँ स्थायी तौर पर अपने स्थान का चयन किया आदि का पूर्ण विवरण दिया जाता है। उस दिन देवता की प्रजा मंदिर के प्रांगण में एकत्र होकर बड़े चाव से वर्षफल सुनती है। उन्हें बखाणा पर पूर्ण विश्वास होता है अतः वे उसी के अनुसार कार्य करते हैं। बखाणा को कुल्लू में **बर्शोहा** कहते हैं।

बधैरौ : गर्भगृह। यह मंदिर की वह कोठरी होती है, जिसमें मुख्य देवता की प्रतिमा स्थापित होती है।

बज़रा : हत्थी। मंदिर के द्वार को खोलने के लिए द्वार में संबद्ध शेर की आकृति की हत्थी को बज़रा कहते हैं।

बज्रबाण : दैवी प्रकोप से पीड़ित व्यक्ति का कष्ट दूर करने के लिए मंगलवार के दिन 'सौंरी' बंदूक का धमाका करता है जो दूर-दूर तक सुनाई देता है। इसे बज्रबाण की संज्ञा दी जाती है।

बढ़ु कारदार : देवता का कारकुन। देवता की प्रबंध समिति में तीन महते जनता द्वारा मनोनीत किये जाते हैं, जिन्हें बढ़ु कारदार कहते हैं। इनका कार्य कई गाँवों के समूह जिसे बढ़ कहते हैं, के 'हारियानों' से देवकार्य हेतु चंदा इकट्ठा करना तथा देवकार्य का सुचारू रूप से संचालन करना होता है।

बढ़ेही : ये थाउई जाति के होते हैं जो देवताओं के रथ, मंदिर आदि बनाने का काम करते हैं। इसके बदले में इन्हें भोजन तथा रुपये दिए जाते हैं। काम पूरा होने पर इन्हें देवता की ओर से पगड़ी भी पहनाई जाती है।

बणवीर : बणवीर को वन का रक्षक माना जाता है। पर्वत की चोटी पर लगे बान, मोहरू, कायल, खौरशू, अखरोट, खनोर आदि वृक्षों में इसका वास होता है और वह उन्हें काटने नहीं देता। यदि कोई व्यक्ति वृक्ष को काटने लगे तो वह उसे

ज़ोर-ज़ोर से हिलाता है, शाखाएँ झुलाता है और पत्तों में खड़खड़ाहट पैदा करता है। यदि फिर भी वह वृक्ष काटना बंद न करे तो दुर्घटना हो सकती है। वृक्ष से गिर सकता है, टहनी सिर पर गिर सकती है या गिरते हुए वृक्ष की लपेट में आ सकता है।

बताल़ वीर : इसे जल का रक्षक माना जाता है। यह नदी, नालों, चश्मों और बावलियों का संरक्षक होता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि ये वैदिक वरुण हैं। यदि अचानक बाढ़ आ जाए तो कहा जाता है कि बताल़ फूटा। यह बताल़ के रुष्ट होने का संकेत है। जब कभी नया पुल बनाया जाना हो तो पहले वीर बताल़ की पूजा की जाती है। इसकी पूजा में सतनाजा (सात अनाज) का रोट चढ़ाया जाता है अथवा आटे का बकरा बनाकर भेंट किया जाता है या चावल के रंगे हुए तीन दाने, पाँच रोटियाँ, एक रोट, लाल बत्ती का दीपक, धूप और एक बकरी भेंट करके पूजा की जाती है। पुराने समय में नई कुल्या बनाते समय भी पहले बताल़ की पूजा की जाती थी।

बदोर : दे. कुरड़।

बनशिरा : एक वीर। यह बिना सिर का वीर है। यह जब भी किसी को मिलता है तो इसका सिर दिखाई नहीं देता। यह जंगलों और पहाड़ों में स्थित जलप्रपातों, चश्मों, बड़ी चट्टानों की रक्षा करता है। यह 'जोगणियों' का साथी होता है। यदि कोई अकेले में ऐसे झरनों में नहाए, पानी पीये, सोये तो यह अपना कुप्रभाव डालता है, जिससे व्यक्ति बीमार हो जाता है। तब इसको शांत करने के लिए उसी स्थान पर जाकर भेड़-बकरी के मेमने की बलि दी जाती है। यदि बनशिरा और 'जोगणी' दोनों ही चिपक गए हों तो पणशाकड़ा (कछुए) की बलि दी जाती है।

बनास्त : 'जोगणियों' का एक रूप है जो चश्मों, बावड़ियों के निकट या पर्वत शिखरों पर रहती हैं। यहाँ ये पशुओं की रखवाली करती हैं। अनेक क्षेत्रों में ये वनदेवियाँ हैं और वृक्ष काटने में बाधा डालती हैं। तब इनके नाम पर बकरे की बलि दी जाती है। कुछ क्षेत्रों में बनास्त को चुड़ैल माना गया है।

बभूति : भभूत। देवी-देवता के यज्ञ के बाद बची हुई हवन कुंड की भस्म। यदि दुष्ट आत्मा की छाया के कारण बच्चा अधिक रोए या इसी कारण किसी को मानसिक कष्ट हो रहा हो तो रोगी हो बभूति चटाई जाती है और इसे रोगी के माथे पर भी लगाया जाता है। इससे रोगी स्वस्थ हो जाता है।

बरकी : सफेद रंग का दुशाला। देवता का रथ पूरा सुसज्जित हो जाने के बाद इसे रथ पर ओढ़ाया जाता है।

बरत : दे. बलौतर।

बरतो : दे. बलौतर।

बराधी : एक वीर। कुल्लू और मंडी क्षेत्र में बराधी वीर का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक गाँवों में उसके मंदिर हैं, जिनमें कुल्लू के भलाण, भूमतीर और करेरी के वीर अधिक प्रसिद्ध हैं। मुज़ारा अधिनियम लागू होने से पहले उनके पास क्रमशः सात बीघा एक बिस्वा, तीन बिस्वा तथा सात बिस्वा ज़मीन थी। ऐसा लगता है कि बराधी वीर पौराणिक काल के वृष्णि वीर हैं। वृष्णि वीरों को पुरुष-प्रकृति देव कहा गया है। वायु पुराण में कहा गया है कि इन वीरों की मानवीय प्रकृति थी। बराधी वीरों की भारथा के अनुसार भी वे निहुल देश से आए महापुरुष हैं परंतु वे हल चलाते हुए पत्थर की पिंडी के रूप में मिले बताए गए हैं। इन्हें बराधी वीर कहा गया है। कुछ लोग इन्हें पंजवीरों में से मानते हैं।

बर्शोहा : दे. बखाणा।

बल़टी : एक बलिप्रधान यज्ञ। बल़टी का आयोजन ज़िला शिमला के ऊपरी क्षेत्र के कुछ गाँवों में किया जाता है। यह दो प्रकार की होती है– छोटी बल़टी जिसका आयोजन तीसरे वर्ष होता है और बड़ी बल़टी जो पाँचवें या सातवें वर्ष मनाई जाती है। छोटी बल़टी में लोग सामूहिक रूप से कुछ पशुओं की बलि देकर ही देवी-देवताओं का पूजन कर लेते हैं, लेकिन बड़ी बल़टी में विधिवत् 'शीखपूजा' करके लोग पृथक्-पृथक् बलियाँ देते हैं। इस अवसर पर संबंधियों को आमंत्रित किया जाता है।

बलावटी : ग्लेज़्ड बरामदे में बीच-बीच में बने खिड़कीनुमा झरोखे जिनका प्रयोग यज्ञादि के दौरान भूमि पर हो रहे अनेकों कार्यक्रमों पर नज़र रखने के लिए किया जाता है

बलोत्तर : दे. बलौतर।

बलौतर : भूंडा यज्ञ में नरबलि प्रदर्शन में प्रयोग किया जाने वाला मूंज घास का रस्सा। नरबलि प्रदर्शन करने वाले को बेदा, बेड़ा, बेड्डा या ज्याई कहा जाता है। यही मुहूर्त के अनुसार जंगल से लाई गई मूंज का रस्सा बटता है, जिसे बलौतर कहते हैं।। इसी बलौतर पर लकड़ी का एक जीना बना कर भूंडे के दिन इस पर ज्याई को बिठा दिया जाता है और यह बड़ी तेज़ी से एक छोर से दूसरे छोर की ओर सरकता है, परंतु अब मनुष्य के स्थान पर बकरे को रस्से पर सरकाया जाता है।

मान्यता है कि भूंडा महायज्ञ खशों की नागों पर विजय के उपलक्ष्य में

मनाया जाता है। अतः कुछ क्षेत्रों में बलौतर इस प्रकार से तैयार किया जाता है कि उसका एक सिरा मोटा तथा दूसरा पूँछ की तरह पतला हो, इसे नाग का प्रतीक माना जाता है। इस पर निम्न जाति के व्यक्ति को सवार किए जाने का अभिप्राय है, नाग जाति के राजा का मानमर्दन है। बलौतर को **ब्रतो, बलोत्तर, बरत** अथवा **बरतो** कहा जाता है।

बांठ : देवता का कार्यकर्ता। इसका कार्य देवता के मंदिर में रसोई तैयार करना होता है। इसके लिए इसे देव खज़ाने से धन दिया जाता है।

बांधा : देवता के निमित्त रखी गई राशि या वस्तु आदि। इस प्रकार का बाँधा रोगों आदि की मुक्ति, कष्ट निवारण या कार्यसिद्धि के लिए मनौती के रूप में रखा जाता है। मन्नत पूर्ण होने पर इस प्रकार रखी गई वस्तु या राशि आराध्य देव को अवश्य चढ़ाई जाती है। मनौती स्वरूप रखी गई वस्तु का अन्यथा उपयोग नहीं किया जाता। यदि भूल से ऐसा हो जाए तो उसी प्रकार का कष्ट पुनः उत्पन्न हो जाता है।

बांबड़ : गूर में दैवी शक्ति का संचरण होने पर उस द्वारा लोहे की लंबी-लंबी शलाकाओं को अपनी जीभ, गाल और नाक से गुज़ारने की प्रक्रिया को बांबड़ कहते हैं।

बांबल : दे. झांगर।

बांसुरी : दे. बिशली।

बागा : देवता का मुख्य परिधान। ये एक से तीन मीटर तक लंबे व अनसिले रंगीन वस्त्र होते हैं, जिन्हें रथ में सजाया जाता है। जब देवरथ को नचाया जाता है तो ये हवा में खुले लहराते हैं और दर्शक के मन को मोह लेते हैं। इनमें से कुछ बागे देवता ने स्वयं खरीदे होते हैं जबकि अधिकतर लोगों द्वारा 'भाठ' में भेंट किये होते हैं। ये रेशमी, सूती, मलमल आदि किसी भी तरह के वस्त्र होते हैं। इन्हें पवित्र माना जाता है। बागा को **शाड़ी** भी कहते हैं।

बाजगी : बजंत्री। देवता के वाद्य बजाने वाले लोग जो परम्परागत होते हैं। इन के अलग-अलग नाम होते हैं, यथा– नगारा बजाने वाला नगारची, ढोल बजाने वाला ढोली, शहनाई बजाने वाला सनाइतड़, ढौंसा बजाने वाला ढौंसी। इनके बिना मेला संभव नहीं होता। इन्हीं से मेले की रौनक बढ़ती है। इन्हें अनिवार्य रूप से मेले में सम्मिलित होना पड़ता है और अपने-अपने वाद्य बजाने पड़ते हैं। मेले की समाप्ति पर इन्हें बलि के बकरे का कुछ भाग दिया जाता है, जिसे वे वहीं पकाकर खाते हैं।

बाज़दार : दे. बाजगी।

बाठर : प्रथम चरण का गूर। वह व्यक्ति जिसे देवता ने गूर तो स्वीकार किया है परंतु गूर समुदाय में प्रवेश नहीं दिलाया है। यह प्रवेश उसे तब मिलता है और वह पूरा गूर तब बनता है जब 'रुहर पिलाने' की रस्म पूरी की जाती है। दे. रुहर पियाणा।

बाम : देव वाद्य। यह वाद्य अपनी घोर गर्जना से देवपर्व में जोश पैदा करता है यह त्रिशंकु आकार का बड़ा सा खोल होता है, जिसके मुख का व्यास डेढ़ हाथ होता है। इसे मोटी-मोटी दो छड़ों से पूरी शक्ति लगाकर दोनों हाथों से बजाया जाता है। देवी-देवताओं के त्योहार-उत्सवों तथा अन्य क्रियाकलापों के संबंध में बैठक बुलानी हो तो देवमंदिर के प्रांगण में बाम को ज़ोर-ज़ोर से बजाया जाता है जिसे सुनकर गांव के सभी पुरुष वहाँ एकत्र होते हैं और सभा का आयोजन किया जाता है।

बायोलिङ् : दे. देऊफेरा।

बारी : देवता की कार्य व्यवस्था के लिए नियुक्त व्यक्ति। इनकी संख्या देवता की 'हार' पर निर्भर करती है। अगर देवता की हार विस्तृत हो तो इनकी संख्या दस तक भी पहुँच जाती है। ये प्रतिवर्ष लोगों द्वारा चुने जाते हैं। देव यात्रा के दौरान ये देऊलुओं के लिए खाना बनाते हैं और बर्तन भी इन्हें ही साफ करने पड़ते हैं। यदि ये अपना कार्य ठीक प्रकार से न निभाएँ तो 'जठेरे' इन्हें समय से पहले भी पद से हटा सकते हैं। इस पद का कार्यभार 'हार' के प्रत्येक परिवार को बारी-बारी से निभाना पड़ता है।

बिजणा : दे. बिझणा।

बिझणा : यह शब्द भेड़ या बकरी की बलि से संबंधित है। जब देवी-देवता के निमित्त बलि दी जाती है तो सर्वप्रथम बलिपशु के पाँवों को पानी से पूजकर किसी झरने या नदी से लाए गए पवित्र जल को बलिपशु के मस्तक पर छिड़का जाता है। उसके माथे पर कुंकुम, अक्षत और फूल लगाए जाते हैं। इसे **पाची पाणा** कहते हैं। ऐसा करने पर पशु अपना पूरा बदन हिलाता है। इसे बिझणा कहते हैं। जब पशु बिझ जाता है तो माना जाता है कि देवता ने बलि को स्वीकार कर लिया है तथा उसे तुरंत काट दिया जाता है। कुछ क्षेत्रों में बिझणा को **बिजणा** और **धुणना** भी कहते हैं।

बिठ : दे. भिठ।

बीण : रजत या स्वर्ण निर्मित त्रिकोणाकार बोर जड़ित पत्तर जो प्रायः नाग देवता के रथ के शीर्ष पर लगता है।

बीमाता : विधिमाता, एक देवी विशेष। लोक विश्वास के अनुसार बच्चे के जन्म के छठे दिन की रात्रि को बीमाता बच्चे को देखने तथा उसका भाग्य लिखने आती है। इस दिन जो कुछ बच्चे के भाग्य में लिख दिया जाता है, वह उसे भोगना पड़ता है। छठी के दिन बीमाता के आने के उपलक्ष्य में स्तुतिगीत गाए जाते हैं।

बील : देवता के निमित्त आयोजित प्रीतिभोज। हिमाचल प्रदेश के ऊपरी क्षेत्रों में देवता को वर्ष में कम से कम एक बार यजमान द्वारा अवश्य बुलाया जाता है और यह निमंत्रण प्रायः गाँव की ओर से सार्वजनिक रूप से दिया जाता है। देवता रथ में बैठकर बाजे-गाजे सहित गाँव में जाता है, जहाँ उसके निमित्त बकरे की बलि दी जाती है। वैष्णव देवता को नारियल भेंट किया जाता है। देवता के साथ उसकी प्रजा के जितने लोग आना चाहें, सभी का स्वागत होता है और इन्हें गाँव के परिवारों में विभक्त करके भोजन के लिए भेजा जाता है। प्रत्येक परिवार को अपने हिस्से में आए हुए लोगों को भोजन करवाना पड़ता है अन्यथा देवदोष लगता है। बील प्रायः शरदोपरांत हेमंत के दिनों में मार्गशीर्ष और पौष मास में खाई जाती है। मकर संक्रांति तक सभी बीलू देवता अपने मंदिर लौट जाते हैं। बील-विधान देवताओं और मनुष्यों के बीच गहरे निजी मानवीय संबंधों का प्रतीक है जो अतीत काल से निरंतर चला आ रहा है।

बीलू : यजमान द्वारा आमंत्रित देवता तथा उसके साथ आए लोग। बीलू को **खिंडु** भी कहा जाता है। दे. बील।

बुंभरू : देवता के आघ्रापण के निमित्त प्रयुक्त जंगली पौधे का फूल।

बुगज़ल : यह कांस्य निर्मित एक वाद्ययंत्र है, जो मजीरे के स्वरूप का परंतु बड़े आकार का होता है। इसके दो गहरे फलकों के बीच में बाहर की ओर मज़बूत धागों की गुच्छी लटकी होती है जिन्हें दोनों हाथों में पकड़ कर आपस में टकरा कर बजाया जाता है। यह गोन्पा में पूजा के समय और बूछेन तथा छम आदि नृत्यों का प्रमुख वाद्य है।

बुमपा : कलश। यह धातु निर्मित जलपात्र है, पकड़ने के लिए इसमें एक ओर हत्थी लगी होती है। इसमें जल, केसर तथा किसी फलदार वृक्ष की फुनगी लगी रहती है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उक्त फुनगी में पाँच पत्ते अवश्य हों जो पाँच ध्यानी बुद्धों का प्रतीक माना जाता है। कभी-कभी पत्तों के स्थान पर मोर पंख तथा कुशा नामक घास भी जलपात्र में रखते हैं। बुमपा को पवित्रता एवं

मांगलिकता का प्रतीक माना जाता है। यह विशेष रूप से अभिषेक करते समय प्रयोग में आता है।

बेठर : बहुत ऊँचाई पर उगने वाला एक जंगली पौधा जो बड़ा सुगंधित होता है। इसमें सफेद रंग के पुष्प लगते हैं। पूजा में इसका उपयोग धूप के रूप में किया जाता है। औज़ार से काटा गया बेठर पूजा में प्रयुक्त नहीं होता है। अतः इसे हाथ से तोड़ कर लाया जाता है। इसके पश्चात् इसे सुखाया जाता है। सूखने पर इसके फूलों तथा पत्तों को घी में थोड़ा मसल कर 'धड़छ' में जलाया जाता है, जिससे पूरा वातावरण सुगंधित हो जाता है।

बेरोकरा : किसी मंदिर का जीर्णोद्धार करने पर या नए मंदिर के निर्माण के पश्चात् देवता की पुनः स्थापना से पहले मंदिर में दी जाने वाली बलि।

बैसक : आसन। 'नुआल़ा' के आयोजन के समय 'जोगी' द्वारा नए कंबल या दरी को बिछाकर बनाये गये आसन को बैसक कहते हैं, जिसके चारों ओर मंत्र द्वारा रेखा खींच दी जाती है।

बोठण : आसन। मनौती पूर्ण होने पर जब जागरा के लिए देवता को अपने घर पर आमंत्रित किया जाता है तो उसका पूजन करने वाले ब्राह्मण को बैठने के लिए यजमान द्वारा चौकी के स्थान पर अन्न से भरा खलटा दिया जाता है, जिसे बोठण कहते हैं। इस पर बैठकर ही वह देवपूजन करता है। बाद में वह अन्न से परिपूर्ण खलटा भेंटस्वरूप उसी ब्राह्मण को दे दिया जाता है।

बोठा : देवता विशेष। ऐसा देवता जो मूर्ति रूप में मंदिर में स्थापित रहता है और वहीं उसकी पूजा की जाती है। कई वर्षों बाद किसी विशेष पर्व पर ही इस देवता को लोगों के दर्शनार्थ मंदिर से कुछ समय के लिए बाहर निकाला जाता है। यह उग्र प्रवृत्ति का देवता है अतः कई स्थानों पर जब बोठा देवता को पालकी में बैठाकर बाहर लाया जाता है तो आगे-आगे बकरे की बलि देकर उसके रक्त के छिड़काव से मार्ग को शुद्ध किया जाता है।

बोनिङ् : दे. देऊफेरा।

बौसण : दे. छठाल़ी।

ब्रतो : दे. बलौतर।

ब्रो : देवता के निमित्त चढ़ाई जाने वाली भेंट।

भंडार : देवता का मूल मंदिर। यह एक से पाँच मंज़िल तक का भवन होता है।

इसे **मंढार** और **कोठी** भी कहा जाता है। इनकी बनावट सामान्य घरों से अधिक भिन्न नहीं होती, परंतु ये घरों से अधिक ऊँचे होते हैं और इनमें मोटे शहतीर, मज़बूत लकड़ी और तख़्ते लगे होते हैं। सबसे सुरक्षित मंज़िल या कमरे में देवता के कीमती आभूषण, सोने-चाँदी के मोहरे और अन्य अमूल्य वस्तुएँ रखी जाती हैं। एक 'शाल्ह' होती है जिसमें देवता को भेंट में चढ़ाए गए सिक्के और सोने, चाँदी के आभूषण रखे जाते हैं। एक मंज़िल भंडार का काम करती है, जिसमें प्रायः वाद्ययंत्र और साधारण उपकरण रखे जाते हैं। एक मंज़िल या कमरा सामान्य लोगों और श्रद्धालुओं के लिए बैठक का काम देता है।

भंडारी : भंडार का स्वामी। यह कई जगह पुश्तैनी और कई जगह 'हारियान' द्वारा चुना जाता है। देवता का भंडार इसके नियंत्रण में होता है। देवता के साज-सामान, वाद्ययंत्र, वस्त्राभूषण, अन्न-धन देवता के भंडार में इसी के ताला कुंजी में रहता है। आय-व्यय इसी के द्वारा किया जाता है। जहाँ कायथ होता है वहाँ पर अनाज आदि का हिसाब-किताब यह कायथ को लिखाता है। इसकी एक प्रति वह अपने पास रखता है। इसे वर्ष के अंत में अन्न-धन की निर्धारित राशि मिलती है। कई जगह देवता के कोष को संभालने की ज़िम्मेदारी कारदार की होती है। वहाँ भंडारी कोष गिनने व अन्न-धन को रखने में कारदार की मदद करता है। देवता को मंदिर से बाहर निकालना और वापस मंदिर में रखने का काम भंडारी का ही होता है। जो देवता सिर पर उठाए जाते हैं उन्हें प्रायः भंडारी ही उठाते हैं। वह देवता के भंडार में रहकर भंडार की रक्षा करता है।

भगत : भगत का अर्थ यहाँ बलि से है। देवता के निमित्त जब कोई पशु काटा जाता है तो उसे 'भगत दीणा' कहा जाता है।

भड़ : पहाड़ों में हिंसाप्रिय वीर पुरुषों को भड़ कहा जाता है। ऐसे वीरों ने जहाँ देवत्व प्राप्त किया है, उन्हें भी भड़ कहते हैं।

भरैऊण : दे. झूण।

भाठ : मनौती। किसी कार्य की सिद्धि, रोग-मुक्ति, समस्या के समाधान पर किसी देवता को पैसे या पशुबलि देने का संकल्प भाठ कहलाती है। मनोकामना के पूर्ण होने पर आराध्य देव को मानी गई भाठ चढ़ाई जाती है, यदि भूल से भाठ न चढ़ाई गई हो तो देवता रुष्ट होकर उस व्यक्ति विशेष का अनिष्ट कर देता है। तब देवता से पूछने पर पता चलता है कि मनौती पूर्ण नहीं की गई है। इस स्थिति में उसको मनौती में मानी गई वस्तु के साथ दंडस्वरूप कुछ पैसे और चढ़ाने पड़ते हैं।

भाणा : एक वाद्ययंत्र। यह कुल्लू, सिरमौर, किन्नौर तथा शिमला क्षेत्रों में बजाया जाता है। काँसे की थाली के एक सिरे पर छेद करके छिद्र में लोहे की पतली तार को बाँध दिया जाता है। थाली को इस तार से पकड़ कर लकड़ी से बजाया जाता है, सिरमौर में भाणा को **ताली** भी कहते हैं।

भाति : बलिपशु। ऐसा बकरा या मेढ़ा जिसे शीतऋतु में विशेषकर बकरीद के अवसर पर काटने के लिए पाला जाता है। चरने के लिए इसे खुला नहीं छोड़ा जाता और लगभग पाँच-छह महीने तक खूंटे पर ही दाने तथा पत्तियाँ देकर पाला जाता है।

भाद्रू री बीह : बीस भाद्रपद। भाद्रपद मास की बीस तारीख को दुःख और कष्टों से मुक्ति पाने के दिन के रूप में मनाया जाता है। इस दिन इष्ट देव की पूजा की जाती है। जो लोग किसी लंबी बीमारी से पीड़ित होते हैं, वे भादों की 19वीं तिथि को ही ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर रात्रि ठहराव के लिए जाते हैं। प्रातः उठते ही घास पर पड़ी ओस को चाटते हैं। यद्यपि इन पर्वतों पर विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियाँ हैं परंतु लोगों को इनका कोई ज्ञान नहीं है अतः ओस चाटते हुए अकस्मात् जिस किसी के मुँह में अच्छी जड़ीबूटी की ओस चली जाए, उसका इलाज हो जाता है। इस प्रकार के कई चमत्कारी प्रभाव हर वर्ष देखने को मिलते हैं। बाँझपन को दूर करने का तो यह एक निश्चित उपचार माना जाता है।

भारथा : गाथा। देवी-देवता के वंश, जन्म, कार्य और निवास, संपत्ति और राज्य क्षेत्र के बारे में गूर या चेले द्वारा सुनाई जाने वाली वार्ता या वृत्तांत को भारथा कहते हैं। भारथा मूलरूप में इतिहास है जो सदा एक सा रहता है। इसमें देवता का जीवन वृत्त दर्शाया जाता है। प्रत्येक देवता की मूल भारथा भिन्न होती है परंतु इनमें कुछ अंश ऐसे हैं जो सभी देवताओं की भारथा में समान रूप से पाए जाते हैं यथा– 1. देवता का मूल इतिहास कि वह कहाँ से आया, कब आया, मार्ग में किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा आदि। 2. आदि शक्तियाँ– जिन पर वर्तमान में सामान्य व्यक्ति विश्वास नहीं करता परंतु क्योंकि इन शक्तियों ने असंभव को भी संभव करके दिखाया है इसीलिए ये देवता कहलाते हैं। 3. भविष्यवाणी– भविष्य में कहाँ क्या-क्या होगा आदि। उक्त सभी कुछ बताने के बाद देवता अपनी प्रजा को बुरे कार्य न करने का उपदेश देकर आशीर्वाद और शुभकामनाएँ देता है।

भारनौ : अनिष्ट निवारण के लिए देवता द्वारा किया जाने वाला एक कृत्य। इस कृत्य में जादू-टोना, भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी आदि के आक्रमण से छुटकारा

पाने के लिए पीड़ित व्यक्ति को किसी स्थान पर ऊपर से चादर ओढ़ा कर बिठाते हैं और देवता का रथ बाजे-गाजे के साथ उसके ऊपर डोलता है, जिससे रोगी की पीड़ा दूर हो जाती है।

भिठ : बेल को फूलों से सजा कर तैयार की गई पालकी। इसे कुल्लू के भीतरी सिराज में आयोजित भिठ मेले के अवसर पर देव मंदिर के प्रांगण में लाकर देवता की पालकी के पास रखा जाता है। तब लोग दो दलों में बंट कर उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं और जो इसे अपने कब्ज़े में कर लेता है, उसे विजयी माना जाता है। वह उसे 'डेहरे' के ऊपर फेंकता है। उसके बाद मेला आरंभ होता है। भिठ को **बिठ** भी कहते हैं।

भुंगड़ी : गेहूँ या जौ के गूँधे हुए आटे के पेड़े को भुंगड़ी कहते हैं। अनेक अवसरों पर देवता के रथ के ऊपर से या चारों तरफ इसके टुकड़े-टुकड़े करके फेंके जाते हैं। यह बलि का काम देती है। जब कभी प्रेतात्मा के प्रकोप का डर होता है तब भी भुंगड़ी हवा में फेंकी जाती है।

भुंडा : नरबलि यज्ञ। यह यज्ञ शिमला जिला के भीतरी पहाड़ी क्षेत्र व ज़िला कुल्लू के निरमंड क्षेत्र में मनाया जाता है। पहले इस यज्ञ में नर बलि दी जाती थी। एक विशेष घराने के व्यक्ति जिसे ज्याली कहते हैं, को जो बलि के लिए निश्चित होता था भूंडा दिए जाने वाले गाँव में काफी समय पूर्व से वस्त्र-भोजनादि देकर पाला जाता था। वह व्यक्ति मूँज को गाय के शुद्ध घी में भिगो कर रस्सा तैयार करता था। फिर इस रस्से को पानी से भिगोया जाता था। तदुपरांत उस रस्से का एक सिरा ऊँची पहाड़ी पर बाँध कर उसका दूसरा सिरा ढाँक के नीचे काफी दूर बाँधा जाता था। ज्याली को काठ की घोड़ी पर बैठाकर दोनों पैरों में रेत की एक वज़न की थैलियाँ बाँध कर तैयार किया जाता था। तब घोड़ी को रस्से पर बिठाकर उस व्यक्ति के दोनों हाथों में लाल रूमाल दिए जाते थे जो देवता के ध्वज के सूचक होते थे। इस प्रकार बेड़ा तैयार हो जाता था। इस समय तक वह पीछे एक डोरी से बंधा होता था और उस डोरी के पास एक बकरा या मेढ़ा खड़ा होता था। पशु की गर्दन पर किए गए प्रहार से उसके साथ-साथ वह डोरी भी कट जाती थी परिणाम स्वरूप बेड़ा रस्से पर खिसकने लगता था। नीचे ज्याली के परिवार जनों सहित असंख्य लोग उपस्थित होते थे। वहाँ सकुशल पहुँचने पर वह पास खड़ी भीड़ से मनचाहे वस्त्राभूषण ले सकता था। यह नरबलि का विशेष तरीका था। समय के अंतराल में आदमी के स्थान पर बेड़े में बकरे को बिठाया जाने लगा।

भुंडे के दूसरे रूप में नरबलि कभी नहीं दी गई। ऐसा भुंडा ज़िला शिमला के ठियोग और कोटखाई तहसील के गाँवों में मनाया जाता है। इस भुंडा में देवस्थानों पर देवी-देवताओं का विधिवत् पूजन किया जाता है। अनेक स्थानों पर मंदिरों की शिखा पर लगे 'कुरड़' पर बैठकर पुजारी 'दणारे' में अग्नि लेकर उसमें धूप आदि द्रव्य पदार्थ जलाकर मंत्रोच्चारण द्वारा आह्वान के साथ चारों दिशाओं से आ रहे देवताओं का पूजन करता है। उसी छत पर साथ बैठा होता है **देवां** जिसमें देवता अवतरित होता है। साथ ही आ रहे देवी-देवताओं के स्वागत में एक व्यक्ति 'पातल़' को हवा में बिखेरता है। उसी छत पर एक बकरा भी काटने के लिए लाया जाता है। जब सब देवता आ जाते हैं तो देवां शिखर पर चीख देता हुआ अपनी जटाएँ बिखेरता हुआ खड़ा होकर नृत्य सा करता है मानो देवी-देवताओं के स्वागत की प्रसन्नता में फूला न समा रहा हो। इसके साथ ही बकरा भी काट दिया जाता है। तत्पश्चात् मंदिर के नीचे असंख्य बकरे काटे जाते हैं। इस अवसर पर दूर-दूर से संबंधियों को आमंत्रित करके तीन दिन तक सीड़ू, पटांडे व घी शक्कर खिलाया जाता है।

भूंगा : पशु बलि स्वीकार करने वाले देवताओं को चढ़ाया जाने वाला मांस और घृतमिश्रित मोटा रोट।

भूड़ : बलि। हिंसा प्रिय वीर देवताओं व देवियों को प्रसन्न करने के लिए दी जानी वाली बलि को भूड़ कहते हैं। पहाड़ों में लोग हिंसाप्रिय वीरों को भड़ शब्द से पुकारते आये हैं। आज भी हिंसा पर उतारू व्यक्ति को भड़ियादौ कहा जाता है। ऐसे ही कुछ देवस्वरूप वीरों को भी भड़ कहा जाता है। इस प्रकार के देवताओं को दी जाने वाली बलिस्वरूप भेंट भूड़ कहलाने लगी। कालांतर में अनेक देवता भूड़ लेने के तथा लोग स्वार्थ सिद्धि हेतु इसे देने के अभ्यासी होते गए और भूड़ रिश्वत के रूप में देवताओं को दी जाने लगी। आज भी लोग देवताओं को भूड़ देकर उससे अपने शत्रु का नाश करवाते हैं। देवता के प्रकोप से प्रभावित परिवार जब उसे पूछना चाहता है तो देवता मौन साध लेता है। इस पर वह परिवार भी बात समझ कर देवता के प्रकोप का संतुलन बनाने के लिए भूड़ देकर देवता से अपना पीछा छुड़ाता है।

भेड़ खाणा : हिमाचल प्रदेश के रोहड़ू क्षेत्र में प्रचलित एक प्रथा जिसमें किसी मंदिर की प्रतिष्ठा या विशेष आनुष्ठानिक कार्य के समय देवता शत्रुदल की भेड़ खाने का आदेश देता है और उसकी प्रजा द्वारा शत्रुदल के क्षेत्र से हज़ारों की संख्या में भेड़-बकरियाँ खदेड़कर लाई जाती हैं और उन्हें देवता के मंदिर परिसर में लाकर सैकड़ों की संख्या में बलि चढ़ाया जाता है, फिर उनका मांस खाया जाता है। इस

प्रकार शत्रुओं की भेड़ें खाना प्रतिष्ठा की बात समझी जाती है। इसके लिए यहाँ के देवता ही लोगों को प्रेरित करते हैं। शत्रुदल भी अपने समय में इसी प्रकार का कार्य करके अपने अपमान का बदला लेते हैं।

भैरू : भैरव। शिष्ट साहित्य में भैरव अवतार रूप में माना जाने वाला शिव का अंश विशेष है परंतु लोक में यह कई रूपों में वर्णित होता है। इसे काली माँ का सेवक माना जाता है, इसीलिए अनेक काली मंदिरों में भैरव की मूर्ति देखने में आती है। कई स्थानों में लौंकड़ा को ही भैरू माना जाता है। कहीं-कहीं इसे देवता माना जाता है। वीरों में यह सबसे भयानक है इसीलिए तांत्रिकों का सर्वाधिक प्रिय है और हर मुसीबत के समय इसे याद किया जाता है। गूर, भाट व चेले इसे मन्त्रों के माध्यम से बुलाते हैं। हर बार इसे *काला भैरू* के नाम से पुकारा जाता है। एक मंत्र में इसे सफेद बालों वाला काला वीर कहा गया है। एक अन्य मंत्र में इसका आह्वान इस प्रकार किया गया है–

काला भैरू काली रात
भैरू जगाऊँ आधी रात
ऐसा भैरू कौण है, मेरे भैरू की पूजा करे
आठ मशाण खाई सोलह मशाण फिरे
कोल्हु का तेल कुम्हार का हांडा, पाकड़ के लाओ हजूर
दुश्मन को पटवारी भोन जान को बन्द कर
खेचरी भोचरी को बन्द कर
रुधी व्याधि को बन्द कर, मड़ मशाण को बंद कर
लागे लगाए को बंद कर, मेरी बंधी टूटे
बाबा नारसिंह की जटा फूटे, फूर मंत्र ईशर की बाचा।

भाट लोग कागज़ पर भैरू का यंत्र तैयार करते हैं। सरसों, सिंदूर, साँप की खाल के टुकड़े के साथ इस यंत्र को सूत में बाँध कर मरीज़ के बाजू या गले में बाँध देते हैं। वास्तव में भैरव के कई रूप हैं। काल भैरू के रूप में वह मृत्यु से रक्षा करता है। भूत भैरू के रूप में वह भूत-प्रेत पर काबू पाता है। भाटक भैरू के रूप में वह अपने उपासकों की हर स्थिति में रक्षा करता है। उसकी भयानकता और उग्रता के कारण ही वह अनेक मंदिरों के सामने द्वारपाल के रूप में खड़ा रहता है। लाहुल के उदयपुर में मृकुला देवी के मंदिर के आगे भैरू की छः फुट चार इंच की दो बड़ी मूर्तियाँ स्थापित हैं। उनके सामने कोई दर्शक यह नहीं कह सकता, अच्छा आओ अब चलते हैं। ऐसी स्थिति में भैरू साथ आ जाता है और रात भर तब तक शोर-शराबा, उलट-पुलट कर तंग करता है, जब तक उसे रोट

या बलि नहीं चढ़ाई जाती। कष्ट निवारण के लिए कागज़ या दीवार पर भैरू का चित्र बनाया जाता है और उसे रोट चढ़ाकर पूजा जाता है। मंडी, पंडोह, जोगीपुरा में भैरू के मंदिर हैं।

भोख : भोग। भोख शब्द भोग का अपभ्रंश है। देवता या राक्षस को मंत्र द्वारा आमंत्रित करके उन्हें यथोचित भोख दिया जाता है अन्यथा वे आमंत्रण कर्ता का अनिष्ट करते हैं। यज्ञ में हविष्यान्न की आहुति से देवताओं को प्रसन्न किया जाता है जबकि डायन और डागी आमंत्रित भूत-प्रेत को भोख के रूप में अपने शत्रु को प्रस्तुत करते हैं। भूत-प्रेत उसके भक्षण के लिए उसका पीछा करते हैं।

भोग : दे. नवेद।

भोज : बहुत से लोगों का साथ बैठकर खाना। हिमाचल की पब्बर घाटी में 'भोज' निम्नवर्ग द्वारा पूजित देवता किलबालू द्वारा आयोजित किया जाने वाला धार्मिक अनुष्ठान है। इसके आयोजन के लिए देवता के गूर द्वारा वर्ष भर पहले ही भविष्यवाणी कर दी जाती है और देवता की प्रजा द्वारा अनुष्ठान के छः मास पूर्व से ही तैयारी आरंभ कर दी जाती है। भोज की तिथि क्षेत्र विशेष के देवता द्वारा निश्चित की जाती है। उस गाँव का किलबालू देवता अन्य गाँवों के किलबालू देवताओं को आमंत्रित करता है। आयोजन हेतु जितनी भी भोजन सामग्री की आवश्यकता होती है वह प्रायः उसी गाँव के निम्नवर्ग द्वारा एकत्र की जाती है। इसमें गाँव का मुख्य देवता तथा अन्य वर्गों के लोग भी सहयोग देते हैं। आयोजन वाले दिन सर्वप्रथम मुख्य देवता की पालकी आयोजन स्थल पर पहुँचती है। उसके बाद अन्य आमंत्रित देवता आते हैं। सारे किलबालू देवताओं के **माली** एक स्थान पर एकत्र होकर अपने हाथ में ली गई शलाकाओं, जिन्हें बांबलियाँ कहते हैं, को गालों के आर-पार कर देते हैं। इसी के साथ देवायोजन आरंभ हो जाता है। वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं और शलाकाएँ निकाल ली जाती हैं। ऐसा करने पर भी खून की एक बूँद तक नहीं निकलती, जो एक आश्चर्यजनक सत्य है। इसके बाद सभी देवता अपना-अपना स्थान ग्रहण करते हैं और उनके साथ आई उनकी प्रजा को भोजन कराया जाता है। अगले दिन मुख्य देवता की अध्यक्षता में सभी देवता गाँव की परिक्रमा करते हैं। किलबालू देवता के गूर गालों तथा नाक में शलाकाएँ डालकर परिक्रमा करते हैं। इस दौरान निर्धारित स्थानों पर विभिन्न जीवों, यथा— मेमना, सूअर, बकरी, कद्दू, मुर्गा आदि की बलि दी जाती है। परिक्रमा पूरी होने पर मेज़बान देवता के मंदिर की छत पर काली के निमित्त बकरों की बलियाँ चढ़ाई जाती हैं। इसके बाद सभी गूर शालाकाएँ निकाल देते हैं। देवता विश्राम करते हैं और लोग नृत्य-गीतादि का आनंद लेते हैं। तीसरे और अंतिम दिन आयोजन

की समाप्ति भजन तथा भोजन के साथ होती है।

भोटू काहल़ : एक देव वाद्य। यह ताँबे या पीतल से निर्मित होता है, जिसकी नलिका शंकु के आकार की होती है जो तीन खंडों से संयुक्त होती है। इसके दूसरे छोर का भाग कीप के आकार में खुला हुआ होता है और मुख भाग में मुँह से वायुपूरण करने पर ध्वनि उत्पन्न होती है। यह लंबाई में तीन-चार फुट होती है।

भोरा : प्रतिवर्ष रबी और खरीफ की फसलें आने पर देवता द्वारा अपनी हार का जो दौरा किया जाता है उसे भोरा कहते हैं। भोरा के समय उसकी 'हार' के अनेक श्रद्धालु उसके साथ जाते हैं। इसकी भोजन व आवास व्यवस्था गाँव वालों द्वारा की जाती है।

भौण : भवन। देवी-देवताओं के मंदिर में दर्शनार्थ जाने के लिए सिंहासन स्थल तक पहुँचने से पहले का स्थान। सिंहासन स्थल और सीढ़ियों के बीच का अंतराल।

भौती : भोज। भौती शब्द संस्कृत 'भात' से व्युत्पन्न हुआ है। मन्नत पूर्ण होने पर देवता को अपने घर आमंत्रित कर अपने सगे संबंधियों को निमंत्रण देकर दिये जाने वाले भोज तथा इसी प्रकार देवता की ओर से अपनी प्रजा को दिये जाने वाले भोज, जिसमें भात बनता है, को भौती कहते हैं। देवता की ओर से एक तो परंपरा से निश्चित किसी त्योहार में भौती दी जाती है। इसके अतिरिक्त देवता के मंदिर, कोठी तथा मौढ़ आदि के निर्माण या जीर्णोद्धार करने पर तथा देवयात्रा से लौटने पर भी भौती दी जाती है। इसका सारा खर्चा देव भंडार से किया जाता है। यदि देवता के खज़ाने में पर्याप्त धन राशि न हो तो हार के सभी परिवारों को बराबर का हिस्सा देवता के खज़ाने में जमा करना पड़ता है। कभी-कभी मेहमान आये देवता के स्वागत में भी मेज़बान देवता भौती देता है। इस अवसर पर सर्वप्रथम मेहमान देवता को फूल चढ़ाये जाते हैं। तत्पश्चात् उसके साथ आये 'हारियानों' को एक पंक्ति में खड़ा करके उनके सिर पर देवरथ से निकाले वस्त्र की पट्टियाँ बाँधी जाती हैं। तब चावल, दाल व मांस पका कर इसे देवता को चढ़ाने के बाद उसके साथ आये सभी लोगों को खिलाया जाता है। मेहमान आया देवता कई दिनों तक मेहमानचारी में रहता है, लेकिन भौती केवल एक दिन ही दी जाती है। यह प्रायः देवता के वापस जाने से एक दिन पूर्व दी जाती है। अन्य दिनों में देऊलुओं को गाँव के सभी परिवारों में बाँटा जाता है, जिसे 'खिंडु' कहते हैं।

कुल्लू के मलाणा गाँव के लोग जब कुल्लू स्थित अन्य जमलू देवता के गाँवों में मेहमान बन कर जाते हैं तो वहाँ का देवता उन्हें पगड़ी पहना कर उनके

स्वागत में भौती देता है। बंजार का देवता शृंगा ऋषि जब कई वर्षों के बाद मलाणा जाता है तो वह स्वयं मेहमान होते हुए भी देवता जमलू को भौती देता है।

मंडल : मंडल को संपूर्ण ब्रह्मांड का प्रतीक माना जाता है जिसमें देवताओं का निवास होता है। बौद्ध तंत्र में गुरु के बीस लक्षणों में से एक लक्षण मंडल निर्माण कला भी माना जाता है। तंत्र के अभिषेक के समय अपने इष्ट देवता से संबंधित मंडल की अत्यन्त आवश्यकता होती है। मंडल चार प्रकार के होते हैं। पहला, चित्रमंडल अर्थात् कपड़े या कैनवस पर रंगों से बना मंडल जिसे भोट भाषा में रेक्यिल-खोर कहते हैं। इस प्रकार के मंडल का निर्माण सरल एवं कम खर्च वाला होता है। दूसरा बलुआ पत्थर के चूर्ण को विभिन्न रंगों में रंग कर भूमि पर मंडल का निर्माण किया जाता है।

पूजा विधि या कर्मकांड के संपन्न होने पर इस मंडल का विसर्जन कर दिया जाता है। तीसरा, एक मंडल भवन की तरह होता है, जिसे भोट भाषा में लोइलङ कहते हैं। इसे एक छोटे कमरे में निर्मित करते हैं, जिसके चारों ओर खिड़कियाँ या काँच लगा होता है जिससे चारों तरफ से इसका दर्शन किया जा सके। चौथा, इसके अतिरिक्त ऐसे भी मंडल होते हैं जिनमें देवताओं के रूप, रंग, हाथ में धारण की हुई वस्तुओं आदि का समग्र रूप में चित्रण किया जाता है। कुछ मंडलों के 'थंकाओं' में देवताओं के पूर्ण रूप को न बनाकर उनके प्रतीक के लिए वज्र या अक्षर या अन्य वस्तु चित्रित कर बनाने की पद्धति भी है। मंडलों के आकार, परिमाण एवं निर्माण की विधियाँ निर्धारित होती हैं।

मंढार : दे. भंडार।

मंढारना : प्रत्येक मेले के बाद देवता का अपने मंदिर में प्रवेश करना। प्रवेश से पहले देवता के ऊपर से बकरा या मेढ़ा फेंका जाता है और दूसरी ओर गिरते ही उसे काट दिया जाता है। लोक विश्वास है कि मेले से लौटते समय देवता के साथ प्रेतात्माएँ आ जाती हैं और बलि देते ही ये उस पर झपट पड़ती हैं तथा देवता स्वच्छ होकर अंदर प्रवेश करता है। तब देवता के रथ से वस्त्र-आभूषण, मुख-मोहरे इत्यादि उतारे जाते हैं और देवता का सभी कीमती सामान भंडार में रखा जाता है इसे मंढारना कहते हैं। मंढारने के बाद देवता की पूजा नहीं होती और अगले मेले तक इसे मंदिर से बाहर नहीं निकाला जाता है।

मंढारी : दे. भंडारी।

मच्छखंडी : देवता के मंदिर के बाहर खुले मैदान के किनारे पर देवता को बैठाने के लिए निर्धारित स्थान। विशेष पर्वों पर जब देवता अपनी प्रजा को दर्शन देने

व उनके दु:खों का निवारण करने मंदिर से बाहर आता है तो उसे मच्छखंडी में बैठाया जाता है।

मटमान : मन्नत पूर्ण होने पर देवता को चढ़ाई जाने वाली वस्तु तथा बकरे-मेढ़े की बलि आदि को मटमान कहते हैं।

मढ़ोली : छोटा मंदिर। इसमें शिव के गणों या भूत देवता की स्थापना होती है। 'पाप' और 'वीर' की स्थापना भी मढ़ोली में होती है।

मणि : यह पत्थरों का एक आयताकार ढेर होता है जो बहुतायत में प्रयोग होने वाले किसी भी मार्ग पर बना होता है। यह लामाधर्म का प्रमुख चिह्न है। मार्ग के किनारे विभिन्न आकार के पत्थर लगा दिए जाते हैं, कुछ सीधे व कुछ आड़े-तिरछे। इन पत्थरों पर महाकारुणिक आर्य अवलोकितेश्वर का षडाक्षरी मंत्र *ओं मणि पद्मे हुम्*, हज़ारों बार कलात्मक ढंग से लिखा होता है। पवित्र मणि के इस ढेर की परिक्रमा करना एक पवित्र कार्य माना जाता है।

मणि-खोर-लो : ताँबे या चाँदी का बना प्रार्थनाचक्र, जिसे दाईं से बाईं ओर घुमाते हुए *ओं मणि पद्मे हुम्* का उच्चारण किया जाता है।

मदराइसण : मातृकासन, देवाकृति। माघ संक्रांति से एक दिन पूर्व घर की पूर्ण सफाई व लिपाई करके रसोई की छत के अंदरूनी भाग में चिकनी मिट्टी के घोल से देवरूप मदराइसंण बनाये जाते हैं। ये देवाकृतियाँ संख्या में प्रायः तीन होती हैं। इनमें से दो देवता अंदर की ओर आते हुए तथा एक देवता बाहर जाता हुआ दर्शाया होता है। इसका भाव यह है कि घर में आमदनी अधिक हो और व्यय कम। इन्हें पौष मासांत यानी लोहड़ी व माघ संक्रांति के दिन धूप देकर पकवान व सूर चढ़ाई जाती है।

मधेऊल : देवता का स्थाई मंदिर। यह प्रायः साढ़े तीन मंज़िल का भवन होता है। इसमें सजा-सजाया देवरथ रखा जाता है। यहाँ श्रद्धालु कभी भी दर्शन करने आ सकते हैं। इनकी छोटी-मोटी समस्याओं का समाधान तथा शादी-विवाह, हवन-यज्ञ आदि शुभ कार्यों का दिन-मुहूर्त 'मधेऊलू' यहीं निकालता है।

मधेऊलू : 'मधेऊल' का संरक्षक। यह मधेऊल में पूजा का कार्य करता है। देवी-देवता के गहने व परिधान इसी के पास रहते हैं और यह उक्त संपत्ति का उत्तरदायी होता है। मधेऊल में श्रद्धालुओं द्वारा जो मन्नत चढ़ाई जाती है, उस पर इसी का अधिकार होता है।

मने : धर्मचक्र। *ओं मणि पद्मे हुम्* का संक्षिप्त रूप। मने चार प्रकार के होते

हैं– मने दीवार, मने दुङ्ग्युर, मने लाक्खोर और मने छोस्खोर। मने दीवार बनवाने की प्रथा सर्वप्रथम लद्दाख में तिब्बत के एक प्रसिद्ध लामा जङ रास चेन ने सतरहवीं शताब्दी में आरम्भ की थी। धीरे-धीरे यह प्रथा लाहुल स्पीति तथा किन्नौर में भी फैल गई। मने दीवार स्तूपों व गाँव के समीप के चौराहों पर बने होते हैं, जो कहीं-कहीं सैकड़ों फुट लंबे व छह से आठ फुट तक चौड़े व ऊँचे होते हैं। इन दीवारों के ऊपर रखे अगणित पत्थरों पर अवलोकितेश्वर, मंजुश्री तथा वज्रपाणि के मंत्र खुदे होते हैं।

लोकविश्वास है कि इन मंत्रों में दुःख हरने की शक्ति होती है, अतः प्रत्येक यात्री इसकी परिक्रमा करके उस पर छोटे-छोटे पत्थर रखने के बाद ही आगे जाता है। मने दुङ्ग्युर ढोल के आकार का एक यंत्र विशेष होता है जिसकी परिधि छह फुट और ऊँचाई आठ फुट तक होती है, जिसके अन्दर साध ारण कागज़ या भोजपत्र पर तिब्बती भाषा में मंत्र लिख कर डाल दिए जाते हैं। मने का निर्माण कुछ इस तरह से किया जाता है कि हलका सा धक्का देने से वह घूम जाता है और अपनी धुरी के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने लगता है। मने के अंदर जितने भी मंत्र और ईश्वर आराधना लिखी गई होती है, उन सभी को मने घुमाने वाले व्यक्ति की ओर से उतनी ही बार पढ़ा गया माना जाता है जितनी बार मने धक्का लगाने से घूमता है। यही कारण है कि इनसे अधिक से अधिक चक्कर कटवाने के लिए कहीं पर पानी तो कहीं पर वायु की शक्ति का प्रयोग किया जाता है ताकि वे निरंतर घूमते रहें। बड़े आकार के मने को मने दुङ्ग्युर और छोटे को मने लाक्खोर कहते हैं। ये प्रायः पीतल, ताँबे या लकड़ी के बने होते हैं। ये गोन्पा के मंदिर-गर्भ के चारों ओर परिक्रमा पथ की दीवारों में लकड़ी की दो समानांतर चौखटों पर लगे होते हैं। परिक्रमा करते समय लोग इन पर धीरे से हाथ फेरते हैं और ये घूमने लगते हैं। मने छोस्खोर की परिधि दो से छह इंच और ऊँचाई तीन से सात-आठ इंच तक होती है। इसे दायें हाथ में लेकर दक्षिणावर्त्त घुमाया जाता है। चलते-फिरते, भेड़-बकरियाँ चराते, पूजा करते समय लोग इसे घुमाते रहते हैं।

मनोही : दे. मलोही पाणा।

मरमुठा : मोरछल। मोर की पूँछ के पँखों का बना गुच्छा जिसे चाँदी की छड़ी पर सजाया होता है। यह लगभग दो फुट लंबा होता है। देवपूजा तथा यात्रा के दौरान यह देवी-देवताओं पर झुलाने के काम आता है। इसके अतिरिक्त देवदोष या प्रेतबाधा आदि की झाड़-फूँक के लिए ओझा इसका प्रयोग करता है।

मरोहड़ी : देव न्याय की एक विधि। इसमें चावल या गेहूँ के तीन दानों में प्रश्न

का उत्तर ध्याकर प्रश्नकर्ता इन्हें त्रिभुजाकार या सीधी रेखा में दूर-दूर रखता है। एक अन्य व्यक्ति, गूर या पुजारी जो इस ओर पीठ करके बैठा होता है, तब सामने होकर इनमें से एक दाने को हाथ लगाता है। उस दाने पर सोचे गए उत्तर को ही देवता का उत्तर माना जाता है।

मलेघा : मुख्य गूर। कुछ देवताओं के एक से अधिक गूर होते हैं। इस सभी गूरों को अपने देवता के मेले में उपस्थित रहना पड़ता है। देवता इनमें से किसी एक को मुख्य गूर चुनता है, जिसे मलेघा गूर कहते हैं। इसके पास अन्य गूरों से अधिक मंत्र होते हैं। मेले में मुख्य भूमिका इसी की होती है, अन्य गूर इसके अधीन कार्य करते हैं।

मलोही पाणा : देवता से प्रश्न करना। देवता से पूछ डालने का एक उपाय मलोही पाणा है। इसमें देवता को सिर या कंधे पर उठाया जाता है। ताज़े गोबर की तीन पिंडियाँ बनाकर उन्हें दूर-दूर रखा जाता है। व्यक्ति विशेष जिसने देवता से प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना है, उन तीनों पर संभाव्य कारण जोड़ता है। देवता के वाद्य बजते हैं। देवता नाचता है और नाचते हुए किसी एक पिंडी पर झुकता है। उसमें ध्याया उत्तर ही देवता का उत्तर माना जाता है। मलोही पाणे की दूसरी विधि के अनुसार गोबर की तीन अलग-अलग पिन्नियों में से एक में अक्षत, दूसरे में पुष्प और तीसरी में बेठर डाला जाता है। पूछ डालने वाला व्यक्ति तीनों में अपने प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर सोच कर इन्हें पानी के लोटे में डाल देता है। जो मलोही पानी में ऊपर आती है उसे खोल कर देखा जाता है और उसमें सोचा उत्तर सही माना जाता है। मलोही को **मनोही** भी कहते हैं।

मश्वाड़ी : दे. दरबाणी।

मसादा : एक प्रकार का गान, जिसके माध्यम से शिव की गाथा गाई जाती है।

महादेऊ : महादेव। महादेऊ की उपासना शिवलिंग के रूप में की जाती है। शिवालयों में पत्थर की बनी जलहरी में पत्थर की गोल या लंबाकार पिंडी स्थापित होती है जिसे महादेऊ री पिंडी कहते हैं। इस पिंडी पर जलपूर्ण घट लटकाया जाता है जिसके पेंदे में छिद्र होता है, जिससे शिवलिंग पर बूँद-बूँद पानी टपकता रहता है। विशेष त्योहारों पर लोग भारी संख्या में महादेऊ पर जल व बिल्वपत्र चढ़ाते हैं परंतु ग्रामीण क्षेत्र के सभी महादेऊ शिव के प्रतिरूप नहीं हैं, वे सामान्य ग्राम देवता हैं। उन्होंने अथवा उनके अनुयायियों ने उस क्षेत्र के अन्य देवताओं से अपने को महा अर्थात् शक्तिशाली कहलाने या दर्शाने के उद्देश्य से महादेऊ कहा है, अन्यथा उनकी भारथा या पूजा पद्धति से उनके शिव होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते।

महादेऊ री चादर : कफन। अनेक महादेऊ, जैसे– कुल्लू के जुआणी महादेव, काईस की देवी दसमी वारदा, नग्गर की देवी त्रिपुड़ा सुंदरी आदि कफन लेते हैं। जब मृतक पर कपड़ा डाला जाता है और चादरें डाली जाने लगती हैं तो देवता का कारकुन एक आवाज़ लगाता है कि महादेऊ की चादर पड़ने लगी है तथा वह देऊ की चादर मृतक पर डालता है। शवदाह से पहले उस चादर से नीचे की सारी चादरें पुजारा उठा लेता है और उन पर शंख से पानी छिड़क कर उन्हें शुद्ध करता है। वर्ष के अंत में इन्हें देवता के कुछ कारकुनों में बाँट दिया जाता है। वर्ष भर की चादरें मंदिर में रहती हैं और ज़रूरतमंदों को वे चादरें मामूली कीमत पर मिल जाती हैं। इस कीमत को 'ड़ाच्छ' कहते हैं।

महादेऊ री सोह : दे. सोह-कैसमी।

महावीर : एक वीर, हनुमान। हनुमान शक्ति के पुंज हैं अतः उन्हें महावीर भी कहते हैं, परंतु जैन संप्रदाय में महावीर जैनों के चौबीसवें और अंतिम तीर्थंकर थे। उनमें वीरों जैसी चमत्कारिक शक्ति थी। चंडकोशिया विषैले सर्प के तीन बार काटने से भी उन्हें कुछ नहीं हुआ था और उनके वरदान से सर्प विषमुक्त हो गया था। प्रदेश भर में महावीर नाम से अनेक मंदिर हैं जो वीर हनुमान से भी संबंधित हैं और तीर्थंकर से भी। नूरपुर के सुलयाली में महावीर स्वामी का प्रसिद्ध मंदिर है। बनछियार, महेशु में महावीर के मंदिर हैं। ज़िला कुल्लू में मंगलौर, बुआई और आरली सेरी (शिल्हीहार) में महावीर नाम से रथधारी देवता हैं जो कुल्लू दशहरा में आते हैं। बधमाना-अंब में वर्धमान महावीर का मंदिर है।

महासु : हिमाचल प्रदेश के शिमला ज़िला में महासु देवता की बहुत मान्यता है। लोक श्रुति के अनुसार पब्बर और तौंस नदियों के मध्य की किरनै घाटी में एक अत्याचारी, मानवभक्षी किरमीर नामक दैत्य से त्राण पाने के लिए एक वृद्ध ब्राह्मण ऊणा भाट, जिसके सात पुत्रों में से छः को वह दैत्य खा चुका था, कश्मीर से इस महासु देव को लाया था। जनश्रुति है कि महासु स्वयं इस दैत्य का वध करना चाहता था अतः उसने ब्राह्मण की पत्नी को प्रेरित किया कि वह अपनी बची संतान की रक्षा के लिए पति को कश्मीर भेजे। ब्राह्मण कश्मीर गया। वहाँ उसने देवता के पास जाकर प्रार्थना की और उससे फूल की टोकरी और ताँबे का पात्र प्राप्त करके वापसी में उन्हें महेंद्रथ बाग में दबा दिया। इससे सात महासु देवताओं का जन्म हुआ, जिनके नाम हैं– चालदा महासु, बोठा महासु, बाशिक, पवासी शेड़, कुलियाऊ, बनाड़ और गुड़ारू। इनके साथ पैदा हुए इनके वज़ीर कईलू ने किरमीर दानव का वध किया। इन सात महासु देवताओं ने जुब्बल, रोहड़ू तथा सीमावर्ती उत्तरप्रदेश के विभिन्न भागों में अपने राज्य स्थापित किए।

महासु प्राटस : किन्नौर में भाबा महेश्वर देवता की भेड़-बकरियों के रेवड़ में एक बकरा महासु देवता के नाम पर रखे जाने की परंपरा है। इस बकरे को महासु प्राटस कहा जाता है। इसे न काटा जाता है और न ही बेचा जाता है। इसके बाल भी नहीं काटे जाते। यदि यह किसी ऐसे स्थान पर मर जाए जहाँ किसी की दृष्टि न पड़ती हो तो इसे वहीं छोड़ दिया जाता है, परंतु यदि यह सार्वजनिक स्थान पर मर जाए तो इसे या तो जलाया जाता है या दबाया जाता है। महासु प्राटस के गुम हो जाने या मर जाने पर परंपरागत विधि-विधान के अनुसार उसके स्थान पर दूसरा बकरा रखा जाता है।

माटिङ् छाङ्ग : मिट्टी लड़के। यानी देवता के प्रतीक रूप में बनाये गये मिट्टी के पिंड। किन्नौर क्षेत्र के कई गाँवों में इन्हें गृहदेवता माना जाता है और ये आकार में गोलियों जैसे बनाए गए होते हैं। बीशू मेले में जब इन्हें पाँच और सात की संख्या में दो स्थानों पर दबाया जाता है तो ऐसा विश्वास है कि अनेक बार ये गोलियाँ अपने आप स्थान बदल लेती हैं और संख्या में कम-ज़्यादा हो जाती हैं। इनका कम होना अपशकुन और बढ़ना शुभ माना जाता है।

माढ़ी : दे. चंगोड़ी।

मान : कुलदेवता को दी जाने वाली बकरे, मेढ़े की बलि। व्यक्ति अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए देवता से मन्नत करता है कि यदि मेरा फलाँ कार्य पूरा हुआ तो देवता को मान दूँगा। मन्नत पूरी होने पर वह देवता के गूर को घर बुलाता है और गूर पूरे विधिविधान से देवता को बकरे या मेढ़े की बलि देता है। इस अवसर पर नज़दीकी रिश्तेदारों को भी भोज में बुलाते हैं।

मामा पहाड़िया : दे. सिंढू।

माली : दे. गूर।

मिटणा : दे. उभरना।

मुंडलीख : एक वीर। लोकविश्वास के अनुसार गुग्गा जाहरपीर अपने मरने के बाद मुंडलीख के रूप में पैदा हुआ और इस नाम से पहाड़ों में इतनी ख्याति प्राप्त की कि वह आज तक वीर के रूप में पूजा जाता है। उसका प्रमुख प्रभाव क्षेत्र चंबा है। गुग्गे ने मुसलमानों के साथ लड़ते हुए अनेक बार विजय प्राप्त की, परंतु एक युद्ध में उसका सिर कट गया। फिर भी वह बिना मुंड अर्थात् सिर के तब तक लड़ता रहा जब तक कि किसी ने हैरानी से यह नहीं कहा कि गुग्गा बिना सिर के ही लड़ रहा है। तब उसके सिर के खून से जो लीख अर्थात् लकीर बनी उसी

के आधार पर उसे मुंडलीख कहा गया। चंबा ज़िला के मैहरा, तीसा, तूर, साहो और शालू नामक स्थानों में इसके मंदिर हैं।

मुलीमुख : दे. मोहरा।

मूंडरोला : पहाड़ी में मूंड सिर के लिए और रोला शब्द घुमाना के लिए प्रयुक्त होता है। अतः शब्दार्थ के समान ही मूंडरोला उस बलि को कहते हैं जो किसी देवता संबंधी प्रकोप से प्रभावित व्यक्ति के सिर के ऊपर से घुमाकर दी जाती है। घुमाने के बाद वह बकरा या मेढ़ा इस भाव से काट दिया जाता है मानो जिसके प्रकोप से व्यक्ति प्रभावित था उसे पशु दे दिया गया। जब बारात वापस आती है तो दूल्हा व दुलहिन दोनों की पालकियों के ऊपर से भी मूंडरोला दिया जाता है। जब किसी देवता का नया देवां, माली, चेला या गूर निश्चित करना हो तो भी उस पर मूंडरोला दिया जाना आवश्यक समझा जाता है। मूंडरोला को **रगेवगणा** भी कहते हैं।

मूरत : दे. पिंडी।

मूल पुतला : दे. जीऊमुख।

मृदड़ी : देवी की 'आगल़' में चूड़ी के साथ पहनाया जाने वाला स्वर्ण या रजत निर्मित आभूषण। सामान्य स्त्रियाँ भी इसे कलाई में चूड़ी के साथ पहनती हैं। ये चपटी न होकर गोल तथा बीच से खोखली होती हैं। चूड़ी-मृदड़ी को सर्वदा युगल रूप में पहना और पहचाना जाता है।

मोहतमिम : दे. कारदार।

मोहता : यह देवता का गृहमंत्री होता है। जब भी देवता के मंदिर या स्थान पर देऊलुओं के लिए भोज आयोजित किया जाता है तो उन भोजों में किसको भोजन तैयार करना है, किसको पानी लाना है, किसको बर्तन लाने व साफ करने हैं, किसको बकरा काटना है, इन कामों को बाँटने का काम मोहता ही करता है। गूर, पजियारे आदि को जो 'दोगी' देनी होती है, इसकी निगरानी भी मोहता ही करता है।

मोहरा : सोने-चाँदी आदि धातु का बना देवमुख। यह देवता के रथ का मुख्य अंग होता है। इसमें कान और कान से आगे का पूरा चेहरा लक्षित होता है और यह इतनी कुशलता से तैयार किया गया होता है कि हंसी, गंभीरता, रोष, क्रोध आदि पूरी तरह दर्शित होते हैं। इनमें से एक मुख्य मोहरा होता है जिसमें देवता की आत्मा का वास माना जाता है। इसे **मुली-मुख**, 'जीऊमुख' या **मूल पुतला** कहते हैं।

मौढ़ : मढ़ी। मंदिर के साथ बना प्रायः तीन दीवारों का एक मंज़िला छोटा मंदिर। इसमें देवता के कारकुन, बजंत्री आदि ठहरते हैं और मेले आदि के दिन देवता के खर्च पर अपने लिए खाना बनाते हैं। एक तरफ से यह प्रायः खुला रहता है। देवता के पास जब बकरे आदि की बलि दी जाती है तो ये कारकुन यहीं अपना हिस्सा पकाते हैं।

मौढ़ना : मंडित करना। देवता के रथ को 'बागे' आदि वस्त्रों से सजाना। जिन देवताओं को सदा सजाए नहीं रखा जाता, उनके रथ को प्रत्येक मेले से प्रथम दिन तैयार किया जाता है। इसे मौढ़ना कहते हैं। मौढ़ते समय मोहरों को निर्धारित स्थानों पर सजाया जाता है और देवी के रथों में आभूषण भी लगाए जाते हैं।

मौली़ : कच्चे सूत के धागों को ऐंठ कर बनाई गई डोरी। इसे लाल रंग से रंग कर धूप में सुखाया जाता है। देव पूजन, कुलजा पूजन, कुलजा को निमंत्रण देने के समय सर्वप्रथम डोरी ही रखी जाती है। इसे सभी धार्मिक अनुष्ठानों के समापन पर पुरोहित द्वारा यजमान और उसके परिवारजनों के हाथों में बाँधने की परंपरा प्रचलित है। इन सूत के धागों में अति पवित्र भावना समाहित रहती है कि ये आपदाओं से हमारी रक्षा अवश्य करेंगे। इसलिए इसे रक्षासूत्र या केवल रक्षा ही कहा जाता है। इसे रोग-शोक को दूर करने, अनिष्ट को नष्ट करने वाला तथा सदैव शुभकारी माना जाता है।

रखाड़ : एक जंगली जड़ी जिसे देवता को धूप देने के लिए जलाया जाता है।

रगेवगणा : दे. मूंडरोला।

रणसिंघा : दे. नरशिंघा।

रथ : देवता की पालकी। मूल में यह लकड़ी का ढाँचा होता है। दे. चिड़ग। इसे सर्वप्रथम एक मोटे और मज़बूत कपड़े से ऐसा मढ़ा जाता है कि लकड़ी का कोई भी भाग दिखाई न दे। फिर इसके चारों ओर रंगबिरंगे रेशमी वस्त्र लगाए जाते हैं। सिर पर सोने या चाँदी के एक या तीन छत्र सजाए होते हैं। कुछ देवताओं के रथों में छत्र के स्थान पर याक पशु की पूँछ के बालों का गुच्छा लगा होता है जिसे 'झांगर' कहते हैं। अगले और ऊपर के भाग में अष्टधातु, सोने या चाँदी के मोहरे स्थापित होते हैं। इनकी संख्या बारह तक हो सकती है। देवी के रथ में अन्य आभूषण भी लगाए जाते हैं। कंधे पर उठाए जाने वाले देवताओं के रथ में दो अर्गलाएँ लगी होती हैं।

रथयोली : एक धुन विशेष जो उस समय बजाई जाती है जब ग्रामदेवता रथ पर सवार होकर नाचता है।

राछत्र : रंगीन वस्त्रों का वना छत्र जो शोभा यात्रा में देवता के साथ रहता है।

रिकूसुम् गोंबो : भूत-प्रेतों से बचने के लिए बनाई गई मिट्टी, पाषाण आदि की छोटी-छोटी स्तूपाकृतियाँ, जिन पर आर्य मंजुश्री (बुद्धि के देवता) तथा आर्य अवलोकितेश्वर (करुणा के देवता) और आर्य वज्रपाणि (शौर्य के देवता) के चित्र अंकित होते हैं, घरों के दरवाज़ों पर लगाई जाती हैं, जिन्हें रिकूसुम-गोंबो कहा जाता है।

रिन्पोछे : महारत्न। बौद्धधर्म में भिक्षुओं की एक उपाधि रिन्पोछे है। सातवीं शताब्दी में भारत से तिब्बत जाकर बौद्धधर्म का प्रचार करने वाले आचार्य पद्मसंभव को गुरु रिन्पोछे नाम से संवोधित किया जाता है।

रुहर पियाणा : रुधिर पिलाना। देवता का एक विधान जिसमें प्रथम चरण के गूर अर्थात् 'बाठर' को पूर्व निर्धारित किसी एक देवोत्सव के अवसर पर 'मलेघा गूर' के कंधे पर बैठाया जाता है और उन दोनों के सिर के ऊपर से बकरा फेंका जाता है। दूसरी ओर भूमि पर गिरते ही बकरे को काट दिया जाता है और लहू की धारा बहाती हुई गर्दन पूरे धड़ के साथ उठाकर कंधे पर बैठे बाठर के मुँह में लगा दी जाती है और वह उस लहू को पी जाता है। इस वीच वाद्ययंत्रों के संगीत में अन्य गूर उन दोनों के गिर्द उछलते-कूदते और मंत्र जपते रहते हैं ताकि किसी दुरात्मा का प्रभाव उनपर, गूरों पर या दर्शकों में से किसी पर न पड़े क्योंकि इस अवसर पर ऐसे प्रभाव की पूरी शंका रहती है और लाग-जोग (भूत-प्रेत का प्रभाव) की संभावना रहती है।

रेह मारनो : परिक्रमा करना। वर्ष में एक बार भाद्रपद या आश्विन मास में देवता द्वारा अपनी हार में की जाने वाली परिक्रमा, जिसमें देवता का रथ पूरे बाजे-गाजे सहित अपने क्षेत्र में घूमता है। रेह-फेर अपनी प्रजा की सुख-शांति तथा भूत-प्रेत कृत कष्टों के निवारण हेतु की जाती है।

रोट : मोटी रोटी। यह एक नैवेद्य विशेष है जो आटे में मीठा व मोयन मिलाकर बनाया जाता है। इसे आग में नहीं सेंकते बल्कि तवे पर ही घी लगाकर सेंका जाता है। कष्टों के निवारणार्थ या किसी कामना सिद्धि के लिए देवता को रोट चढ़ाने का संकल्प लिया जाता है और कामना पूर्ण होने पर इसे चढ़ाया जाता है। रोट हनुमान जी, बाबा बालक नाथ, वीर देवता तथा कुलदेवता को चढ़ाया जाता है। इसका कुछ भाग आराध्य देवता को चढ़ाकर शेष को भक्तों में बाँट दिया जाता है। नई फसल के आने पर भी अपने कुलदेवता को नवान्न का रोट चढ़ाने की प्रथा है।

रोथङ : दे. चिड़ग।

लखदाता : एक वीर। गुग्गे के शरीर का ज़मीन में धंसा आधा अंश। दे. गुग्गा। यूँ तो लखदाता को संपूर्ण हिमाचल में वीर के रूप में पूजा जाता है परंतु कांगड़ा, ऊना, हमीरपुर और चंबा में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक गाँवों में इसके मंदिर हैं और हिंदू व मुसलमान समान रूप से इसकी पूजा करते हैं। हिंदू इसे यति लक्ष्मण के रूप में पूजते हैं और मुसलिम इसे ग्यारहवीं का पीर मानते हैं। इसे बड़ा दानशील माना गया है और धन-दौलत की इच्छा से इसे अधिक याद किया जाता है। लखदाता के मेलों में कुश्ती का आयोजन करना लोग बहुत पवित्र मानते हैं। कुश्ती में पहलवान आदि को भोजन करवाया जाता है और कुछ रकम दी जाती है, जो लखदाता को प्रसन्न करने का उपाय समझा जाता है। इसे घी-दूध का देवता भी माना जाता है। लोग वर्ष भर इसके नाम पर घी इकट्ठा करते हैं और इसके मेले में इसे अर्पण करते हैं।

लचे़ : दे. लबचे़।

लबदक : दे. गूर।

लबच़स : दे. लबचे़।

लबचे़ : स्थानीय लोगों द्वारा शिखरों पर निर्मित चार-पाँच फुट ऊँचा एक प्रकार का चबूतरा। इसका संबंध बोन संस्कृति से है। बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण अब लबचे़ के शिखरों पर पवन अश्व कही जाने वाली बौद्ध ध्वजाएँ भी लगाई जाती हैं। इनका निर्माण ऐसे पर्वत शिखरों तथा स्थानों पर किया जाता है जहाँ जन-साधारण का आना-जाना हो। इनके पास से गुज़रने पर लोग छोटे-छोटे पत्थरों को सोलो-सोलो का उच्चारण करते हुए इस क्षेत्र के अनाम देवों के नाम पर चढ़ाते हैं। ऐसा करने के पीछे मान्यता यह है कि ये देव यहाँ से गुज़रने वाले पथिकों की विपरीत परिस्थितियों से रक्षा करें या उन्हें बाधा न पहुँचाएँ। लबचे़ को किन्नौर के कुछ क्षेत्रों के लोग **लबच़स** और कुछ **लचे़** कहते हैं।

लाज-प्वाओ : देवता द्वारा बताया गया इलाज व उपचार। देवता के गूर से पूछने पर जब किसी व्यक्ति को 'खोट' निकलता है तो गूर उसे दूर करने का उपाय बताता है। इसमें संबंधित व्यक्ति या परिवार को निश्चित मनौती के साथ कुछ दंड भी देना पड़ता है।

लाठी : दे. गूर।

लाहू डालना : देवता द्वारा न्याय किए जाने का एक तरीका। हिमाचल प्रदेश के ऊपरी क्षेत्रों में लोग न्याय के लिए कोर्ट-कचहरी जाने के बजाए देवता के पास

ही जाते हैं और जो फैसला वह करता है, सबको मान्य होता है। यदि किसी कारणवश उन्हें देवता का फैसला ठीक न लगे तो उसका दूसरा तरीका है लाड्डू डालना। इसमें देवता के गूर के सामने पानी का एक लोटा रखा जाता है। गोबर के तीन पिंड, जिन्हें लाड्डू कहते हैं, बनाए जाते हैं। एक गोले में एक व्यक्ति के नाम पर चावल या जौ के दाने डाले जाते हैं और एक में दूसरे व्यक्ति के नाम के फूल डाले जाते हैं। तीसरे लाड्डू को पंच माना जाता है। लोटे के सामने धूप-दीप जलाकर देवता का ध्यान करके तीनों लाड्डू पानी के लोटे में डाल दिए जाते हैं। कुछ समय बाद उनमें से एक लाड्डू पानी के ऊपर तैर जाता है। जिसके नाम पर लाड्डू ऊपर तैर जाता है उस व्यक्ति को सच्चा माना जाता है और फैसला उसी के पक्ष में होता है। यदि तीसरा लाड्डू जिसे पंच माना जाता है, वह ऊपर तैर जाए तो दोनों को निर्दोष माना जाता है। इसी प्रकार किसी अन्य क्षेत्र में ये लाड्डू थाली या पाथे में घुमाकर देवरथ के सामने उलटा दिये जाते हैं। प्रश्नानुसार जो लाड्डू कतार से अलग निकलता है, उसी में देवता का फैसला निहित होता है। कभी-कभी देवरथ को कंधे पर उठाकर प्रश्न पूछा जाता है। इस विधि में 'छठाली' इन लाड्डूओं को एक सीधी रेखा में दूर-दूर रखता है। तब देवरथ को कंधे पर उठाया जाता है। रथ जिस लाड्डू के पास रुक कर थोड़ा झुक जाता है, वही देवता का उत्तर माना जाता है।

लाणा : भेंट। किसी विशेष उत्सव या पर्व पर भेंट में जो बर्तन देवता को अर्पित किए जाते हैं उन्हें लाणा कहते हैं।

लातुला वीर : दे. बकरशूना।

लिखणू : अहोई, दीवाली आदि पर्व-त्योहारों, उत्सवों, समारोहों इत्यादि मांगलिक अवसरों पर रंगीन पाउडर आदि से द्वार पर या आँगन के फर्श पर बनाये जाने वाले प्रतीकों को लिखणू, अल्पना, चौक पूरना, रंगोली आदि नामों से जाना जाता है। ये लिखणू कल्याण की कामना के द्योतक हैं। इनको बनाने, उकेरने का दायित्व प्रायः महिलाओं पर रहता है। इन प्रतीकों को उकेरने के लिए चावल के आटे, चोकर, बुरादा, पीली मिट्टी, गेरू, हल्दी, खड़िया आदि का प्रयोग किया जाता है। प्रायः घर के दरवाज़े पर आँगन में अल्पना अवश्य बनाई जाती है, जिसे विविध रंगों से संवारकर आकर्षक रूप दिया जाता है। प्रारंभ में गाय के गोबर से उस स्थान को लीपा जाता है फिर उँगली, सींक, रुई, ब्रश अथवा सलाई के सहारे अल्पना, रंगोली, लोक चित्रकारी आदि बनाने का कार्य प्रारंभ किया जाता है तथा अवसर के अनुकूल लक्ष्मी, स्वस्तिक, फूल, चौक आदि बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ बनाए जाते हैं। घर में चौक पूर कर मांगलिक कार्य के शुभारंभ में देव-स्थापना करके

सर्वांगीण कल्याण की कामना की जाती है। अनुष्ठान किये जाने वाले स्थान को पहले गाय के गोबर से लीपते हैं। उसके बाद सूप में गेहूँ, जौ या चावल का आटा ले कर बड़ी आकर्षक आकृति का चौक पूरा जाता है, जिसमें उंगलियों के सहारे आड़ी-तिरछी रेखाओं से मांगलिक प्रतीक बनाये जाते हैं।

लुमो : नाग देवता। जल प्रदान करने वाले नाग-नागिन लुमो के नाम से जाने जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि ये जलाशयों के आस पास रहते हैं तथा भूमि के नीचे के धन इनके अधिकार में होते हैं। इनके स्थानों को किसी भी प्रकार से प्रदूषित नहीं किया जाता और न ही इनके अधिकार क्षेत्र में पेड़ों को काटा जाता है। कहते हैं कि यदि ये किसी पर कुपित हो जाएँ तो उसको नाग रोग लग जाता है। किन्नौर में अपने घर के भूतल वाले कक्षों में से किसी एक कक्ष, जहाँ घास आदि रखा जाता है, की दीवार में प्रयुक्त किसी बड़े पत्थर को सफेदी करके लुमो को स्थान प्रदान करने की परंपरा है। वर्ष में एक बार इनको नाग बलि के रूप में सत्तू का पिंड भी अर्पित करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनकी पूजा करने तथा इनके स्थान को साफ-सुथरा रखने से व्यक्ति धन-धान्य संपन्न होता है।

लोंगोकरा : शिमला ज़िला के उपरी क्षेत्रों में फसल की अच्छी पैदावार के लिए कुल देवता को प्रति तीसरे अथवा चौथे वर्ष दी जाने वाली बलि को लोंगोकरा कहते हैं।

लोहे रा गीचा : देव न्याय की एक प्रणाली। इसमें प्रतिवादी दिन निर्धारित करके मंदिर में जाते हैं। वहाँ देवता के प्रबंधक देव-पूजा कर लोहे के गर्म फाल को उनके सामने रखते हैं। प्रतिवादी इसे बारी-बारी से उठाते हैं। देव कृपा से इस गर्म लोहे से निर्दोष व्यक्ति का हाथ नहीं जलता और दोषी का हाथ जल जाता है। तब उसके दोष के अनुसार देवता के कारदार दंड निर्धारित करते हैं और अपराधी को इसे स्वीकार करना पड़ता है। आज न्याय की इस प्रणाली को नहीं अपनाया जाता, जबकि अतीत में यह न्याय की एक आम विधि थी।

लौंकड़ा वीर : देवी का सेवक। लोकविश्वास के अनुसार लौंकड़ा वीर काली का मंत्री है। स्थानीय बोली में लौंकड़ा का अर्थ छोटा है इसलिए इसे देवी का पुत्र भी कहा गया है। अनेक काली मंदिरों में लौंकड़ा की मान्यता है, हालांकि इसकी कोई मूर्ति देखने को नहीं मिलती। सराहन ज़िला शिमला की भीमाकाली के साथ लौंकड़ा का नाम जुड़ा है, परंतु जिसे लौंकड़ा वीर का मंदिर कहा जाता है, उसमें कोई मूर्ति नहीं है, न किसी मूर्ति का संकेत है। मंदिर के बीच एक गहरा कुआँ है। विश्वास है कि पुराने समय में इस कुएँ में लौंकड़ा के नाम पर मानव-बलि

चढ़ाई जाती थी। बकरे की बलि तो अब भी दी जाती है। लोकगीतों में भी इसका ज़िक्र आया है–

हाला दे ढोल दे लागो भीमाकाली रो खांडो
लांकड़ो सराहणा रो थाम्बी न जांदो।

लौंकड़ा वीर के मंदिर अधिकतर शिमला ज़िला में ही हैं। सराहन के अतिरिक्त सरोग, बटोलीगढ़, समरकोट, अणु, घूंड, देलठ में इसके मंदिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

ल्हबब छोरतेन : भोट परंपरानुसार स्तूप के मुख्य आठ भेदों में से एक। भगवान् बुद्ध तुषितलोक में अपनी माता को आदेश देकर इस भूमि पर पधारे थे। यह स्तूप उसी का प्रतीक है।

वार : काली व नवग्रह पूजन। वार का दिन देवता द्वारा निश्चित किया जाता है। इस दिन मंदिर के शिखर पर चढ़कर चारों दिशाओं की कालियों का पूजन कर बकरों की बलि चढ़ाई जाती है। इसमें प्रायः सभी गाँवों के लोग अपने-अपने गाँव से बकरा या मेढ़ा लेकर आते हैं और एक बकरा देवता के मंदिर से खरीदा जाता है। बलि चढ़ाने के बाद कारकुन वहीं मांस पकाकर उसका सेवन करते हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी बलि पशुओं के मांस को मंदिर प्रांगण में पकाकर सहभोज करते हैं।

विष्णु पंची : देवता के पास कार्य सिद्धि हेतु प्रश्न पूछने का एक तरीका। इसके अनुसार एक लोटे में पानी भरा जाता है और गोबर के तीन पिंड बनाये जाते हैं, जिनमें से एक में फूल लगा होता है, दूसरे में दूब तथा तीसरा खाली रखा जाता है। फूल वाले का अर्थ होता है हाँ, दूब वाले का अर्थ होता है दुविधा तथा खाली का अर्थ न होता है। अब मन में प्रश्न लेकर प्रश्नकर्ता देवता के समक्ष इन तीनों पिंडों को पानी के लोटे में डाल देता है। अब यदि देवता की अनुमति हो तो फूल वाला पिंड पानी में ऊपर आ जाता है। यदि दुविधा की स्थिति हो तो दूब वाला पिण्ड तैरता है। इस प्रकार प्रश्न तीन बार डाला जाता है और हाँ की स्थिति में तीनों बार फूल वाला पिंड ऊपर उठ जाता है। पूछने की इस क्रिया को विष्णु पंची कहते हैं।

वीर : देवताओं की एक विशेष श्रेणी। भारतीय समाज की धार्मिक परंपराओं में बावन वीरों की मान्यता है। उन्हीं में से पहाड़ों के वीर भी हैं। लोक विश्वास के अनुसार इनमें से अनेक वीर स्थानीय बड़े देवता के अंगरक्षक या वज़ीर होते हैं। कैलू वीर नारायण के, लौंकड़ा वीर देवी के और भैरू शिव के अंगरक्षक माने जाते

हैं। इनके प्रायः रथ नहीं होते। प्रतीक रूप में विशिष्ट पत्थर को डेहरे में स्थापित करके इसे वीर रूप में पूजा जाता है। इनकी अपनी गाथाएँ हैं और इनके गूर या चेले मंत्रोच्चारण द्वारा इनकी पूजा करते हैं।

वीरनाथ : एक वीर। कुल्लू तथा मंडी ज़िला-के अनेक गाँवों में वीरनाथ या वीरूनाथ के नाम से अनेक देवता पूजे जाते हैं। ये सभी वीरों की श्रेणी में आते हैं। देवता कहने से इनके वीर होने में संदेह नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस प्रदेश में नाग, ऋषि, सिद्ध और महादेव भी देवता कहे जाते हैं। वीरनाथ का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंग्रेज़ी शासन में भी इनमें अनेकों के पास माफियाँ थीं। सभी वीरनाथ देवताओं के पास अपनी भूमि थी, जिसे वे मुज़ारों के माध्यम से काश्त करते थे। वीरनाथ के मानने वाले सभी राजपूत हैं। कहीं-कहीं हरिजन भी वीरनाथ के उपासक हैं। ये वीर नाथ-संप्रदाय के देवता नहीं हैं, क्योंकि इस संप्रदाय में वीरनाथ नाम का कोई योगी या महापुरुष नहीं हुआ परंतु सिद्धों में बिरूपा नाम के प्रसिद्ध योगी हुए हैं। इनका समय संवत् 900 (सन् 843) के आसपास रहा है। यह बिरूपा ही वास्तव में वीरूनाथ या वीरनाथ वीर देवताओं के प्रवर्तक हैं। इस तथ्य की पुष्टि एक और संदर्भ से भी हो जाती है। चौरासी सिद्धों में से अनेक सिद्धों जिनमें बिरूपा भी है, के नाम बावन वीरों में आते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि वीरनाथ की पूजा केवल एक देवता अर्थात् गहरी देवता की पूजा की प्रतिस्थापना में आरंभ हुई है। मूल में गहरी देवता कुल्लू के प्राचीनतम देवताओं में से है और हो सकता है कि वह अठारह करडुओं में से एक हो।

वीर वैताल : यह पाँच भाइयों का एकल रूप है। इनके बारे में लोकविश्वास है कि एक ब्राह्मण भक्त की माला एक दिन अकस्मात् हाथ से गिरी और एक पत्थर से टकरा कर उसके पाँच टुकड़े हो गए। उन्होंने बताया हम पाँच वीर भाई हैं। हमारी पूजा करोगे तो फल प्राप्ति होगी। ब्राह्मण ने वैसा ही किया और धीरे-धीरे वे सारे क्षेत्र में पाँच वीर वैताल के रूप में पूजे जाने लगे। एक मंत्र में कहा गया है—

जियापाल के बेटे, जमेर के दोहते
ससिपाल के पोते, पाँच भाईए वैताल
गढ़लंका के कोटाल, माता भेखली के जाए
भैणा पुन्या के भाई, इक्की बाटे आए
सहस्र बाटे जाणा, कह्या मनणा हमारा
मेरे बचन से टले, माता भेखली के दूध की दुहाई।

वीर हनुमान : रामायण का एक पात्र। हनुमान शक्ति के प्रतीक हैं। यह पहलवानों

के प्रमुख उपास्य देव हैं। पहलवानों का विश्वास है कि हनुमान जी के अनुकूल होने पर उन्हें विरोधी हरा नहीं सकता। अखाड़ों में प्रायः हनुमान की पूजा करके कुश्ती आरंभ की जाती है। भक्तों के लिए रामसेवक हनुमान बड़े कृपालु हैं। हनुमान जी को प्रसन्न किए बिना प्रभु राम की अनुकूलता प्राप्त नहीं की जा सकती। यह आत्मरक्षा का सबसे वीर योद्धा माना जाता है और हर तरह के भय आने पर उसे पुकारा जाता है– *हनुमान जोधा तेरी कार*। अनेक विद्वान् वीर हनुमान की तुलना वैदिक वृषाकपि से करते हैं। वृषाकपि इंद्र का मित्र था। यज्ञ भी उसके डर से बंद हो जाया करते थे। एक बार उसने इंद्राणी की वस्तुओं को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इंद्राणी ने इंद्र को उसे दंड देने के लिए कहा। इंद्र उसके पीछे दौड़े ज़रूर परंतु पकड़ने और सज़ा देने की नीयत से नहीं। इंद्राणी इस बात को भाँप गई। वह स्वयं उठी और एक श्वान को उसके पीछे लगाया। वृषाकपि इंद्र के हस्तक्षेप से बच गया परंतु एक अन्य मृग का शिरश्छेदन हो गया। तब वृषाकपि नीचे पृथ्वी लोक पर उतरने लगा तो इंद्र ने इंद्राणी के समक्ष उसकी उपयोगिता का उल्लेख किया और तीनों आराम से रहने लगे।

शंख : शंख। हिमाचल में देवी-देवताओं की स्थानीय रीति-रिवाज़ के अनुसार पूजा अर्चना की जाती है, जिसमें शंख वाद्य को प्रमुख रूप से बजाया जाता है। मांगलिक कार्यों का शुभ आरंभ शंख से ही होता है। धार्मिक अनुष्ठान शंख के बिना पूरे नहीं होते। कमलनेत्र विष्णु का यह प्रिय वाद्य रहा है। शंख को अमंगल का नाशक माना जाता है। यह वाद्य समुद्र से प्राप्त एक जीव के आवरण से निर्मित होता है। शंख की नाभि को खुदवाकर उसके शिखर में एक रंध्र बाहर से आधा अंगुल और अंदर से उरद के प्रमाण का किया जाता है। इसे दोनों हाथों से पकड़ कर पूर्ण बल से फूँक मार कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। भिन्न-भिन्न अवसरों पर शंख का वादन अलग-अलग ढंग से होता है। पूजा आदि में क्रमशः बाहर और अंदर को साँस का प्रवाह देना पड़ता है। भूत-पिशाच दैत्यादि का पलायन करवाने तथा क्षेत्र में शांति और पवित्रता की वृद्धि के लिए शंख वाद्य पहाड़ी जनमानस का एक अचूक उपाय है। ऐसा लोकविश्वास है कि *शंख बाजे राक्षस भाजें* अर्थात् जहाँ शंखध्वनि होती है वहाँ भूत-प्रेत का वास नहीं होता। बौद्ध तांत्रिक पूजा में इसका प्रयोग इष्ट देवताओं के आह्वान के लिए होता है। ऐसा माना जाता है कि शंख बजते ही सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं और पूजास्थल के लिए प्रस्थान करते हैं। पूजा में इसका प्रयोग शब्द के प्रतीक वाद्य के रूप में होता है। गोन्पाओं में इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। वहाँ इसका प्रयोग भिक्षुओं को जलपान, भोजन आदि के लिए आमंत्रण हेतु भी किया जाता है। सिरमौर में इसे **शांख,** कुल्लू में **शोंख** तथा किन्नौर में **दुङ** कहते हैं।

शकोथा : नई फसल आने पर सर्वप्रथम कुछ भाग देवता के निमित्त सुरक्षित रखा जाता है, इस भाग को शकोथा कहते हैं। बाद में शुभ दिन देखकर यह देवता को चढ़ा दिया जाता है। कुछ लोग उसका प्रसाद बनाकर देवता को अर्पित करते हैं। इसके लिए **चोखारा** शब्द भी प्रचलित है।

शगड़ी : लोहे की बनी अंगीठी, जिसे उठाने के लिए लोहे की ज़ंजीरें लगी होती हैं। देवयात्रा में इसे हरिजन उठाते हैं। इसमें आग के अंगारे रखे जाते हैं।

शजेर : दूषित देवस्थान, मकान या कोई व्यक्ति जो व्यभिचार के कारण दूषित हो गया हो, का शुद्धिकरण शजेर कहलाता है। इसे पंडित मंत्रोच्चारण से विधिपूर्वक करते हैं।

शड़ाथी : किसी व्यक्ति का अनिष्ट करने के लिए देवता की 'परौल़' पर लगाए गए पैसे। इन पैसों को कील की सहायता से द्वार पर ठोंक दिया जाता है और देवता से प्रार्थना की जाती है कि अमुक व्यक्ति का अनिष्ट हो जाए।

शहनाई : मुँह से फूँक कर बजाया जाने वाला एक प्रसिद्ध बाजा। इसे तुरही, छ़नाल और सहनाई आदि नामों से भी जाना जाता है। लाल चंदन की लकड़ी से निर्मित धतूरे के फूल के आकार का यह वाद्य लगभग एक हाथ लंबा होता है। यह पीतल या चाँदी की भी बनी होती है। इसमें एक-एक अँगूठे के अंतर पर छः रंध्र बने होते हैं। मुँख पर चाँदी निर्मित टुकड़ा होता है जिसे पी-पी कहते हैं। पी-पी में लगा सरकंडा पंपिका कहलाता है। ध्वनि बाहर निस्सृत करने के लिए पंपिका को पानी या थूक से गीला करना पड़ता है। पंपिका को शहनाई के ऊपर के भाग में जहाँ एक छल्ला चाँदी या हाथी दाँत का लगा रहता है, जोड़ देते हैं। शहनाई मांगलिक सुषिर वाद्य है। इसका वादन प्रातः-सायं देवपूजा, पुत्र जन्म, विवाह और शव यात्राओं में होता है। लोकनृत्य विशेष कर नाटी, डंडारस तथा लुड्डी आदि में तो लोकनर्तक के पाँव शहनाई की ध्वनि सुनते ही नाचने को विवश हो उठते हैं।

शांख : दे. शंख।

शांगल़ : शृंखला। लोहे की ज़ंजीरों का गुच्छा। इसमें तीन, पाँच, सात या नौ लड़ियाँ होती हैं और वे एक किनारे से लोहे के कड़े में जुड़ी होती हैं। शांगल़ की लंबाई 2 से 4 फुट होती है। देऊखेल में गूर इसका प्रदर्शन करता है। शांगल़, सांगल, संगल, सांगली या सांठ ये सभी शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। यह देवयात्रा में देवता के रथ के साथ मौजूद रहती है। अनेकत्र शांगल़ बड़े देवता के साथ चलने वाले सहायक देवता के निशान के रूप में भी होती है। चेले अथवा वीर लोग खेल-खेलते समय पीठ पर शांगल़ मारकर अपने देवी-देवता को प्रसन्न करते

हैं। यह प्रायः वीर संप्रदाय का प्रतीक है जो बाद में इस प्रकार के सभी संप्रदायों ने अपना लिया। गुग्गा पीर की मढ़ी पर इस शांगल के अतिरिक्त चमड़े की बारीक लड़ियों से बना कुछ लंबा और सुंदर शांगल होता है, जिसे **सांठ** कहते हैं।

शांत : शांति। यह शब्द कर्मकांड में प्रयुक्त संस्कृत शब्द शांति का अपभ्रंश रूप है। शिमला ज़िला के ऊपरी क्षेत्र में शांत नाम का यज्ञ किया जाता है। प्रमुख खूंदों के गाँवों में देवी-देवताओं की पूजा के उद्देश्य से शांतियज्ञ के रूप में इसे किया जाता है। इसमें चारों दिशाओं से देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है। विधिवत् हवनकुंड बनाकर हवन किया जाता है। आह्वान करने पर जो देवी-देवता मंत्रों द्वारा हवन को ग्रहण करने के लिए पहुँचते हैं, देशाचार के अनुसार उनके लिए बलि देना आवश्यक समझा जाता है। अतः अनेक बकरों व मेढ़ों की बलि दी जाती है। काली व दुर्गा को बकरे की तथा नारसिंह, भैरव, लौंकड़ा इत्यादि को मेढ़े की बलि विशेष रूप से दी जाती है। कुछ देवता दोनों की बलि लेते हैं। इन पशुओं को 'बिफ़ा कर' या मंदिर के चारों ओर घुमाकर बलि हेतु स्वीकार किया समझा जाता है, तदुपरांत उन्हें मंदिर की छतों या अन्य निश्चित स्थान पर काट दिया जाता है। छत पर वही लोग जा सकते हैं, जिन्हें देवता आज्ञा देता है।

पहले यह यज्ञ हर बारह वर्ष के बाद होता था, लेकिन अब आर्थिक स्थिति के दृष्टिगत अनुकूल समय में ही इसका आयोजन किया जाता है। जब मंदिर का नवनिर्माण या मरम्मत का कार्य समाप्त होने पर छत पर 'कुरड़' लगाया जाता है तथा जब देवी-देवता बद्रीनाथ-केदारनाथ आदि तीर्थों का भ्रमण करके लौटते हैं तब भी शांत होती है। स्वेच्छा से किसी कार्य की सिद्धि के लिए लोग अकेले या सामूहिक रूप से भी इसका आयोजन करते हैं। इस अवसर पर दूर-दूर से लोगों को आमंत्रित किया जाता है। हज़ारों की संख्या में लोग इकट्ठे होते हैं तथा सैकड़ों मन अनाज सहभोज में लग जाता है। शांत को **शांद** भी कहते हैं।

शांद : दे. शांत।

शाई धागा : सरसों को देखकर दोष निवारण हेतु रोगी को पहनाया जाने वाला ऊनी धागा। यह धागा लाल, सफेद और काले रंग के तीन ऊनी धागों को मिला कर बनाया जाता है। ऊन के कच्चे अनबटे धागे बीमार व्यक्ति की श्वास तथा अंगों से स्पर्श करा कर गूर को दिए जाते हैं। गूर उन्हें आपस में गूँथ कर एक डोरी बनाता है और उसे अभिमंत्रित करता है। मंत्र जाप करते हुए वह उस डोरी में बीच-बीच में गाँठें लगाता जाता है और डोरी के ठीक मध्य में सरसों की एक पोटली बाँध देता है। उस अभिमंत्रित डोरी को बीमार के गले में बाँधा जाता है और सरसों की धूनी दी जाती है, जिससे रोगी ठीक हो जाता है।

शाई भालणा : सरसों के दाने देखकर जादू-टोने का पता लगाना। असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति जब 'गूर' की शरण में जाता है तो वह सरसों के दानों को पीड़ित व्यक्ति के सांस तथा अंग से स्पर्श करा कर उस स्पर्श की गई सरसों को मुट्ठी में रखकर मंत्र के माध्यम से दोष का पता लगाता है कि क्या यह देव-दोष है या भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी का प्रभाव या जादू-टोना। कारण जानकर वह सरसों को पुनः अभिमंत्रित कर उपचार हेतु पीड़ित व्यक्ति को उसकी धूनी देता है या सरसों की पोटली बनाकर डोरी के साथ उसे पीड़ित के गले में बाँध देता है।

शाड़ी : दे. बागा।

शाल़ : देवता के नाम पर एकत्रित भेड़-बकरियों का समूह।

शाल़्ह : शाला। देवता के भंडार का एक सुरक्षित कक्ष जिसमें पुराने समय से लेकर जनता द्वारा देवता को भेंट में दिए गए सोने, चाँदी, ताँबे के सिक्के और अन्य आभूषण रखे जाते हैं। मेले-उत्सवों के दौरान जब कभी आवश्यकता पड़े तो देवता की आज्ञा से 'कटियाला' या पज़ियारे द्वारा आँखें बंद करके या हाथों को पीठ की ओर करके इस खज़ाने से ज़रूरत अनुसार वस्तु आदि निकाली जा सकती है।

शीख पूजा : शिखर पूजन। भुंडा उत्सव के समय देव स्थानों पर देवी-देवताओं का विधिवत् पूजन होता है। ऐसे अवसर पर अनेक स्थानों में मंदिरों की शिखा पर लगे 'कुरड़' पर बैठकर पुजारी 'धंगियारे' में अग्नि लेकर उसमें धूपादि डालकर मंत्रोच्चारण द्वारा आह्वान के साथ चारों दिशाओं से आ रहे देवताओं का पूजन करता है। उसी छत पर देवता का 'देवां' बैठा होता है। साथ ही आमंत्रित देवी-देवताओं के स्वागत में एक व्यक्ति पातल़ (आटा) को हवा में बिखेरता जाता है। उसी छत पर बलि के लिए एक बकरा रखा होता है। जब देवता आने लगते हैं तो देवां शिखर पर चीख देता हुआ, अपनी जटाओं को जिसे चूड़ा कहते हैं, बिखेरता हुआ खड़ा होकर उनके स्वागत में नृत्य सा करता है। इसी के साथ बकरा भी काट दिया जाता है। उसके बाद मंदिर के पास असंख्य बकरे काटे जाते हैं। मंदिर के शिखर पर किए जाने वाले इस पूजन को शीख पूजा कहा जाता है। इस अनुष्ठान को देखने के लिए गाँव के सारे घरों की छतें व अन्य स्थान हज़ारों दर्शकों से भरे रहते हैं।

शीव : देवरथ के शीर्ष भाग में बटलोही की शक्ल का ताँबे का एक पात्र लगाया जाता है, जिसे शीव कहते हैं। इसके ऊपर चुरू के बाल लगाये जाते हैं। इस पर टोप और टोप पर छत्र लगता है। इसे **शू चमनङ्** तथा **छतरङ्** भी कहते हैं।

शुंकूवीर : इस वीर का सर्वाधिक संबंध जंत्र-मंत्र, जादू-टोना से है। अनेक चेले

तांत्रिक उपचारों में शुंकू वीर की पूजा करते हैं। एक मंत्र में शुंकू वीर का आह्वान इस प्रकार से किया गया है–

एक ताई, दुई ताई, त्राई ताई...
एक छटांक पाणी, दूई छटांक भूत
त्रासी सिद्ध चौऊ कनारे री.खबर लाई।
दोऊ दोषे री कार पाई
शुंकू वीर ज़ौखा न पूरी प्रथम पूरी री खबर लेई।
जूंझी वीर खार समुद्र पार डियाई।
डाकणी शाकणी बे भस्म कराई...
श्री राम री दुहाई।

शुद्धि : शुद्धि। अनेक प्रकार की अपवित्रता को पवित्रता में परिवर्तित करने के लिए पशुबलि की प्रथा को शुद्धि कहते हैं। रजस्वला, हरिजनादि के स्पर्श से अशुद्ध हुए समझे जाने वाले देवस्थानों की शुद्धि बलि देकर की जाती है। जब नया मकान बनकर तैयार होता है तो उसे भी पशुबलि देकर शुद्ध किया जाता है।

शू आएश : देवता के निमित्त रखा बकरा। यह वह बकरा है जो किन्नौर के भेड़पालक अपने भेड़-बकरियों के रेवड़ में ग्राम्य देवता के प्रतिनिधि के रूप में रखते हैं। इन देव बकरों में एक काली के नाम पर, एक अपने ग्राम्यदेवता के नाम पर, एक अपने गृह रक्षक देवता के नाम पर, एक अपने कुल के बौद्ध विहार के धर्मपाल के नाम पर रखते हैं। काली के नाम पर प्रायः काला बकरा रखा जाता है। इन बकरों के बाल नहीं काटे जाते। विशेष अवसरों पर सभी प्रकार की परंपरागत पूजा-सामग्री तैयार करके इनकी पूजा की जाती है।

शू चमनङ् : देवता का शीश। दे. शीव।

शू पीरू पोवान : ग्राम्य देवी-देवताओं की भेड़-बकरियों को चराने वाले। इन्हें वेतन के रूप में भेड़-बकरी या एक निश्चित राशि देवता के खज़ाने से दी जाती है।

शेष : देवता के अक्षत। इसे देवता का गूर आशीर्वाद स्वरूप अपने प्रजाजनों को देता है। समसंख्या में आने पर यह गूर को लौटाया जाता है व विषम संख्या में प्राप्त होने पर शुभ माना जाता है और इसे शीश पर धारण किया जाता है।

शैगुड़ा : किसी भी रहस्य का पता लगाने के लिए लाहुल में जिस पद्धति का अनुसरण किया जाता है उसे शैगुड़ा या **छ्वाखंडी** कहा जाता है। इसके लिए गूर या भाट हाथ में थोड़े से जौ के दाने लेकर उन्हें ऊपर उछालकर हाथ में पकड़ता है और फिर हाथ में पकड़े गए उन दानों के आधार पर प्रश्नकर्ता के प्रश्न का उत्तर दिया जाता है।

शोंख : दे. शंख।

शोवल : लोहे का बरछा जिसे देवी-देवता की ध्वजा पर लगाया जाता है। इसे प्रायः देव संपत्ति की रक्षा हेतु और युद्ध के लिए भी प्रयोग में लाया जाता था। शोवल वह कील भी है जिसकी सहायता से 'कुरड़' पर 'आंडो' लगाया जाता है।

शौरू बारन : देवता का एक अनुष्ठान। यह वर्ष में एक बार सामान्यतः वैशाख मास में किया जाता है। पूर्व निर्धारित तिथि को देवता के सभी कारकुन तथा अन्य जनता मंदिर में एकत्र होते हैं। इस दिन गूर 'उभरता' है तथा हवन किया जाता है। लोग देवता से प्रार्थना करते हैं कि क्षेत्र में अतिवृष्टि, अनावृष्टि या अन्य किसी प्रकार का दैवी प्रकोप न हो।

संथंगः संथागार। किन्नौर के प्रत्येक ग्राम में यह एक सार्वजनिक स्थल होता है। इस स्थान पर ग्रामीण समाज समय-समय पर मनोविनोद और सामूहिक समस्याओं पर विचार करने के लिए एकत्र होता है। संथंग से ग्राम देवता का घनिष्ठ संबंध होता है। सभी त्योहार, उत्सव आदि संथंग में ही संपन्न होते हैं। जब भी देवता से परामर्श करना हो तो प्रजा संथंग में एकत्र होती है और देव पालकी को वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ यहाँ लाया जाता है। तब सारी देव कार्यवाही संथंग में ही संपन्न होती है। देवकार्य के अतिरिक्त ग्रामीण समाज के सांस्कृतिक व सामाजिक सभी सामूहिक कार्य भी संथंग में संपन्न होते हैं।

सङ्फोर : धूपदानी। सभी उत्सवों या पूजा में इसका प्रयोग होता है। यह धातु निर्मित एक चौकोर पेटिका होती है, जिसमें सुगंधित ज्वलनशील जंगली पत्तों से बने धूप को रखकर उसमें आग डाल देते हैं। किसी समारोह या उत्सव के जुलूस में भी इसका प्रयोग होता है। इस पेटिका में एक पतली रस्सी लगी होती है, जिस की सहायता से जुलूस में एक व्यक्ति इसे गले में लटकाए हुए चलता है।

सतनाजा : सात तरह के अनाजों का मिश्रण। आदित्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि आदि ग्रहों की पाप दृष्टि जब मनुष्य पर पड़ रही हो तो किसी भी प्रकार के सात अनाज के दानों को टोकरी में डाल, उसमें नाखून काटकर और लोहे की कील डालकर चौराहे पर फेंक दिया जाता है। ऐसा प्रायः शनिवार के दिन किया जाता है। इससे ग्रहों की शांति होती है। सात अनाजों का मिश्रण होने के कारण इसका नाम सतनाजा पड़ना उचित है।

सतरेणा : पूजा विशेष। देवी-देवता माघ मास की संक्रांति से फाल्गुन मास की संक्रांति तक इन्द्रलोक की यात्रा पर जाते हैं। यात्रा के पहले सप्ताह में उनकी पूजा जिस विधि से होती है उसे सतरेणा कहा जाता है। यह पूजा प्रातः ढाई-तीन

बजे के बीच आरंभ हो जाती है। पूजा में मात्र धूप अर्पित करने का पात्र प्रयोग में लाया जाता है, जिसमें जलते हुए अंगारों के ऊपर पाजा नामक वृक्ष के पत्तों को डाला जाता है। जलने पर ये पत्ते धूप की तरह सुगन्ध देते हैं। फूलों के स्थान पर इन्हीं पत्तों को देवता के मोहरे पर चढ़ाया जाता है। सतरेणा पूजा के पश्चात् पाजा वृक्ष के इन पत्तों को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है।

सधेउड़ : संध्याकाल। इस समय देवी-देवताओं की धूप-दीप से पूजा की जाती है। सधेउड़ में सोना, रोना, झाड़ू लगाना आदि अपशकुन माना जाता है।

सरगद्वारी : मंदिर की सबसे ऊपरी मंज़िल में बना दरवाज़ा जहाँ से छत पर निकला जा सकता है। इस द्वार से यज्ञ के दौरान दिशाओं की कालियों का पूजन करने के लिए बाहर छत पर आया जाता है। उस अवसर पर वही व्यक्ति इस द्वार से जा सकता है जिसे ब्राह्मण के द्वारा राशि देखकर मनोनीत किया जाता है।

सर्क्यम : एक विशेष प्रकार की पूजा जिसे वर्षा बंद करने के निमित्त किया जाता है। इसका विधान सामान्य पूजा के विधान से भिन्न होता है तथा इस पूजा को केवल दक्ष लामा ही करवा सकता है। केलङ् में शाशुर गोन्पा का भंडारी इसके लिए हवन करवाता है। इसके लिए प्रत्येक घर से अन्न दिया जाता है। यदि एक बार की पूजा से वर्षा बंद न हो तो दोबारा पूजा की जाती है।

सर्प : मंदिर के दरवाज़े की चौखट, स्तंभों और दीवारों पर लगे या कीलों से जड़े लोहे के साँप। ये उन लोगों ने भेंटस्वरूप चढ़ाए होते हैं, जिन्होंने किसी साँप को मुँह में गाल्ह अर्थात् चूहा, छिपकली या कीट पतंग आदि डाले देखा हो या दो साँपों को आलिंगनावस्था में देखा हो। साँप को इस स्थिति में देखना अपशकुन माना जाता है, जो भारी दुख और संकट (किसी निकट संबंधी की मृत्यु) का सूचक होता है। इसके निवारण के लिए इस तरह के धातु के सर्प मंदिर में भेंट किए जाते हैं। अनेक विद्वानों ने मंदिरों में इस तरह के सर्प लगे देखकर उस मंदिर के देवता को नाग देवता घोषित किया है जो उचित नहीं है। ऐसे सर्प शिव और नारायण के मंदिरों में भी देखे जा सकते हैं। इन्हें गाल्ह सर्प भी कहते हैं।

सांझी : मातृदेव आकृति। ज़िला सिरमौर में दशहरा त्योहार से पंद्रह दिन पहले स्त्रियाँ मिट्टी तथा गोबर के मिश्रण से एक स्त्री-आकृति बनाती हैं। इन आकृतियों को मिट्टी के बने आभूषण पहना कर भड़कीले रंगों से सजाया जाता है। पंद्रह दिन तक नित्य संध्या समय लड़कियाँ इसकी मातृ रूप में पूजा करती हैं। दशहरे के दिन सांझी का पूजन करके इसे जल में प्रवाहित कर दिया जाता है।

सांठ : दे. शांगल।

सारंदा : एक देव वाद्य। इसकी बनावट सारंगी से बिल्कुल भिन्न होती है। इसकी तबली सारंगी की अपेक्षा गोल होती है और आवाज़ में भारीपन होता है। यह देव वाद्य नाथ संप्रदाय के लोगों द्वारा पूजनीय समझा जाता है। नाथ संप्रदाय के गायकों में ही यह अधिकतर प्रचलित है। बिलासपुर में राम लीला करने वाले कलाकारों का भी यह प्रिय वाद्य है। गज से बजने वाले इस लोकवाद्य में लोहे के सत्ताईस तार लगे होते हैं। गूगा गाथा में इस वाद्य का प्रमुखतया प्रचलन देखने को मिलता है।

सावणियाँ : योगिनियाँ। सावणियाँ पर्वत शिखरों की रक्षक देवियाँ हैं परंतु इनका गाँवों में आना अपशकुन माना जाता है। प्रदेश के ऊँचे तथा जनजातीय क्षेत्रों में इन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेक उत्सव मनाये जाते हैं, जिनमें इनकी पूजा की जाती है और इन्हें गाँव में आने से रोकने के लिए सामूहिक रूप से अश्लील शब्द बोले जाते हैं।

सिंढू : एक वीर। यह जब भी प्रकट होता है, सीटियाँ बजाता हुआ आता है, इसीलिए सिंढू या शिंढू कहलाता है। यह बड़ा भयानक वीर है और जब भी इसकी सीटी सुनाई देती है तो लोग समझते हैं कि कोई न कोई विपत्ति आने वाली है, यथा– कोई अग्निकांड होगा, जिसमें मकान जल जाएँगे, खेतों में फसलें उजड़ेंगी, कोई बीमारी फैलेगी। इसके उपचार हेतु सिंढू का चेला इसका आह्वान करता है। इसे हलवा चढ़ाया जाता है और यदि अधिक रुष्ट हों तो भेड़ की बलि दी जाती है। अनेक विद्वान् सिंढू को रुद्र या शिव का रूप मानते हैं क्योंकि वेदों में रुद्र का भी ऐसा ही उग्र रूप रहा है। कुछ साधक इसे **दड़ियाला** और **कीड़ेवाला** कहकर भी पुकारते हैं। रुद्र-शिव के उपासक जोगी आज भी सीटी या सींग से ध्वनि करके इसकी आराधना करते हैं। सिंढू तूफान या आँधी का प्रतीक भी है। तब जो सीं-सीं की आवाज़ आती है इसे सिंढू की सीटी माना जाता है और तूफान से हुए नुकसान को सिंढू की रुष्टता का परिणाम माना जाता है। अकस्मात् पड़ी विपदा के निवारण हेतु सिंढू वीर की पूजा बड़ी लाभदायक मानी जाती है। यही नहीं, शत्रुता की स्थिति में लोग इसे विरोधियों को हानि पहुँचाने के लिए भी पूजते हैं। इसका चेला कुछ इस तरह का जाप करता है–

छत्रपाल, लोहपाल, अग्निपाल का
पोतरा सिंढू वीर चाले।
सांगलपाल चाले, ठीकरपाल चाले।

भूईपाल की पुतरी माँ कुंभारडी
का पुत्र चाले, पुन्या का भाई चाले।
ईशर गुरु की बाचा, महादेऊ की पड़े दुहाई।

मंत्र के अंत में महादेऊ शब्द से सिंदू वीर का रुद्र-शिव से संबंध सिद्ध होता है अन्यथा मंत्र गोरखनाथ, ईश्वर, नौलखा तारा, श्रीराम, नाहरसिंह आदि की दुहाई से बंद होता है। सिंदू वीर का प्रभावक्षेत्र हिमाचल से बाहर जम्मू, जौनसार बाबर तक फैला है। इसका मुख्य मंदिर जम्मू क्षेत्र के बसोहली में बताया जाता है।

कुछ क्षेत्रों में इसे **मामा पहाड़िया** के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसका वेश गद्दियों जैसा होता है। सिर पर लंबी टोपी पहनता है, जो पत्तों की बनी होती है। हाथ में नरेलू (नारियल का बना तंबाकू पीने का हुक्का) लिए प्रायः देखा जाता है। यह सुंदर स्त्री पर आसक्त रहता है और इससे दुर्व्यवहार करता है। इसके उपरांत स्त्री रोगग्रस्त अथवा पागल हो जाती है। इसे **ओपरा** कहा जाता है और इसका निवारण तांत्रिक द्वारा करवाया जाता है। सिंदू वीर को सिद्ध करने के लिए तांत्रिक विधि अपनाई जाती है।

एक विशेष मंत्र का रात्रि में नदी-तट पर, श्मशान में, पीपल, चंपा या चमेली के वृक्षों के नीचे या उन स्थानों पर जहाँ से महिलाएँ पानी भरती हैं, 21 दिनों तक 101 बार जाप करना पड़ता है। वीर के निमित्त शराब, मांस-मछली, तंबाकू, मिठाइयाँ, सुगंधित पुष्प, नारियल व नाना प्रकार के व्यंजन अर्पित किए जाते हैं। 21 वें दिन यह देव सीटी बजाता हुआ दर्शन देता है। सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् जब कभी भी साधक इसे पुकारे, यह दर्शन देता है और उसकी सहायता से संकटग्रस्त प्राणी को राहत पहुँचाता है।

सिंहठी : सिंहासन। छोरतेन का निचला भाग सिंहठी कहलाता है। इस पर सिंह, अश्व, गज, मयूर आदि की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। इसके अंदर सुख-समृद्धि की कामना से स्वर्ण, रजत, हीरक, अन्न, वस्त्र रखे जाते हैं। कुछ लोग शत्रुओं से सुरक्षा की कामना से इसमें अस्त्र-शस्त्र रख देते हैं। सिंहठी के नीचे बूम-पा (कलश) रखा जाता है, जिसमें ये सारी वस्तुएँ तथा अस्त्र-शस्त्र रखे जाते हैं। इन सबका निर्माण निर्धारित माप एवं आकृति के अनुसार किया जाता है। पूर्ण होने पर इनके चिरस्थायित्व के लिए प्राण-प्रतिष्ठा के रूप में रब्-नस् नामक पूजा की जाती है।

सिंह मुख : अनेक देवताओं की अर्गलाओं के सिरों पर चाँदी का एक उपकरण जुड़ा होता है। इनका आकार शेर के मुख की तरह होता है इसलिए इन्हें सिंह मुख कहते हैं।

सिगड़ी : ताँबे का गोलाकार पात्र जो केवल मंदिरों में ही होता है। यह विशेषतः जल-भंडारण के काम आता है। इसमें लगभग 60-70 लीटर पानी भरा जा सकता है।

सिलयन : यह धातु निर्मित वाद्य है जो बुगजल की तरह ही होता है, लेकिन यह बुक छल से आकार में छोटा तथा मध्य में ज्यादा उभरा होता है। आमतौर पर सिलयन शंख के साथ बजाया जाता है। बौद्ध तांत्रिक पूजा दो प्रकार की होती है। पहली, शांति से संबंधित कार्यों के लिए शांत इष्ट देवताओं की पूजा तथा दूसरी, विघ्न कारक भूत-प्रेत आदि को शांत करने हेतु तत्संबंधी देवताओं की पूजा। सिलयन वाद्ययंत्र प्रायः शांति से संबंधित देवताओं के आह्वान में प्रयोग में आता है।

सींग : यह शब्द संस्कृत शृंग से निस्सृत हुआ है। यह हरिण, बारहसिंगा, मेढ़े, भैंस के सींग से बनाया जाता है। इसका आकार हाथी की सूँड़ की तरह होता है। मुँह से फूँकने पर इससे घोर गर्जना उत्पन्न होती है। चंबा क्षेत्र में नाथ संप्रदाय के लोग शिव पूजा में इसे अन्य वाद्यों के साथ बजाते हैं।

सुआल़ा : नुआल़ा के विधिवत् विसर्जन के लिए उससे तीसरे दिन किया जाने वाला आयोजन सुआल़ा कहलाता है। तीसरे दिन यदि अशुभ नक्षत्र, ग्रह या तिथि आती हो तो इसको उसी रात भी संपन्न किया जा सकता है अथवा कुछ अन्य दिनों के लिए टाला जा सकता है। नुआल़ा की समाप्ति पर जोगी ब्राह्ममुहूर्त के समय माला को आधा ऊपर को लटकाकर, घट को साफ करके, केंद्र में कुंभ और दीपक रखकर चला जाता है और तीसरे दिन संध्या के समय आकर उस मंडप के स्थान पर नवग्रहों के लिए नौ कोष्ठक बनाकर उस पर सूत्र अथवा अन्य पकवान रखकर शिव के विसर्जन हेतु पूजा करता है। माला को उसी खूंटी पर लटकाने के लिए चंदोवा लगाया जाता है जो प्रायः गज वर्ग का होता है। धूप-दीप और नैवेद्य रखे जाने के बाद 'बंदे' विदाई ऐंचली गाते हैं, जिसके कुछ बोल इस प्रकार हैं–

सिव मेरे वर्धी चले, सिव वर्धे कैलास, सिव मेरे वर्धी चले।
खड़ा उठ घरे दे मोहिया, सिव मेरे वर्धी चले।
चिड़ुए चुरभुर लाया, सिव मेरे वर्धी चले।

इस प्रकार शिव को विदा किया जाता है।

सुक्खण : मनौती। किसी कार्य की सिद्धि या अनिष्ट के निवारण पर किसी देवता की पूजा करने का संकल्प सुक्खण कहलाता है। कार्य पूरा होने पर सुक्खण पूरी करना अनिवार्य है अन्यथा देवता कुपित हो सकता है।

सुदर्शन चक्र : एक चक्र। यह नारायण देवताओं का निशान होता है।

सुर्गणी : स्वर्ग के उतरी हुई अप्सराएँ। ये जोगिनियों की सहचरियाँ हैं। कुछ लोग इन्हें जोगिनियाँ ही मानते हैं परंतु यह धारणा उचित नहीं है। इनकी सोलह की संख्या होने का संकेत मिलता है क्योंकि काहिका के अवसर पर 'नौड़' सोलह सुर्गणियों की भारथा सुनाता है जिसके आरंभिक शब्द कुछ इस प्रकार हैं—

हे हाला हो सुर्गणियो, सोला भियारू हो
सुकेता हुए हो, हे हाला हो सुर्गणियो।

अनेक देवताओं के गूर भी ऐसी भारथा सुनाते हैं। कहीं इन्हें अठारह भी बताया जाता है। कुल्लू के निकट कलौण में पराशर ऋषि के सरोवर को इनका स्थान माना जाता है। ये स्वर्ग से सुकेत (वर्तमान सुंदरनगर) में उतरी थीं। वहाँ से ये कलौण-सर में ठहरीं और बाद में इधर-उधर बिखर गईं। ये वृक्षों और जंगलों की देवियाँ हैं और इनकी रक्षा करती हैं।

सूचा : दे. चोखारा।

सूढ़ा : तेज़धार वाला रजत निर्मित त्रिशूल। जब चेले पर देवता की छाया आती है और वह काँपने लगता है तो सूढ़े के अग्रभाग से वह जीभ को बींधकर तब तक लटकाए रखता है, जब तक उस पर देवता की छाया रहती है। निरामिष देवता के चेले के पास सूढ़ा नहीं होता।

सूत्र फेरना : मंदिर निर्माण पूर्ण होने पर छत डालने के बाद जब शिखर पर बदोर लगता है तो मंदिर के चारों ओर रक्षा सूत्र फेरा जाता है। यह सूत्र मूँज, सूत, भाँग के रेशों तथा मौली इत्यादि सात प्रकार के धागों से तैयार किया जाता है। विश्वास किया जाता है कि सूत्र के अंदर भूत-प्रेत प्रवेश नहीं करते।

सूरजपंखा : चाँदी की बनी लंबी छड़ी के सिरे पर लगा रंगीन कपड़ों का गोलाकार पिंड जिसमें गोटा-किनारी का काम किया होता है। इसमें सूरज का चिह्न अंकित रहता है। यह देवयात्रा में देवता के आगे-आगे चलाया जाता है।

सोह-कैसमी : सौगंध व कसम खा कर देवता से न्याय की फरियाद करना। इसमें सच्चा व्यक्ति देवता की कसम खा कर अपनी सचाई और निर्दोष होने का प्रमाण देता है। सोह-कैसमी की विभिन्न विधियाँ हैं। प्रथम यह कि सच्चा व्यक्ति देवता के मंदिर की ओर हाथ उठा कर कहता है कि मैं देवता को छू कर कहता हूँ कि मैं सच्चा हूँ। इस सौगंध को 'देऊ छुंगणा' कहते हैं। दोषी होने की स्थिति में यदि यह कसम खाई जाए तो देवता उसे अवश्य दंड देता है। दूसरी सौगंध साधारणतया

यह कह कर खाई जाती है कि **महादेऊ री सोह** अर्थात् महादेव की सौगंध मैं सच्चा हूँ। छोटी बात के लिए उक्त दो प्रकार की सौगंधें खाई जाती हैं। यदि गंभीर मामला हो तो देवस्थल पर जाकर देवता की ओर हाथ उठाकर या किसी देव वस्तु पर हाथ रख कर कसम खाई जाती है।

इस प्रणाली में वादी-प्रतिवादी दोनों पक्ष शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त एक-तरफा न्याय प्रणाली का भी चलन है। मानो अनाज की चोरी हुई हो। तब चोरी से बचे अन्न के कुछ दानों को देवता के आसन पर फेंक कर निवेदन किया जाता है कि जिसने चोरी की है उसे अमुक दंड इतने दिनों के भीतर मिलना चाहिए। इसे 'देऊ पाणा' कहते हैं। सौगंध का एक तरीका यह है कि आदमी हल के जुए को अपनी गर्दन में डालकर थोड़ी सी घास अपने मुँह में लेता है और शपथ खाता है कि यदि झूठा होऊँ तो मरने के बाद बैल बनूँ।

सौंरी : झाड़-फूँक करने वाला। दे. चेला।

सौई : यह गुजरमाला या शिवमाला भी कहलाती है, क्योंकि यह माला भगवान भोले नाथ को समर्पित होती है। कुल्लू और मंडी ज़िलों में इसे शिवजी मान कर शिवरात्रि के दिन पूजा जाता है। यह मूँज, सूत, भाँग के रेशों, मौली, ऊन का धागा आदि सात प्रकार के धागों से बनती है। इसमें खरशू वृक्ष के पत्ते, कैमटू नामक फल तथा नरगिस और गेंदे के फूल पिरोए जाते हैं। माला बनाने का कार्य पर्ची डाल कर निर्धारित किया जाता है। जिस व्यक्ति को यह कार्य सौंपा जाता है वह शुद्ध हो कर, स्वच्छ कपड़े पहन कर तथा उपवास धारण कर इसे बनाता है।

सौर : सर। पवित्र जलस्रोत सौर कहलाता है। इनका जल प्रायः देवपूजा आदि के काम आता है।

सौरग यात्रा : स्वर्ग यात्रा। पहाड़ों के समस्त देवी-देवता माघ मास की संक्रांति से फाल्गुन मास की संक्रांति तक इंद्रलोक की यात्रा पर जाते हैं। इसे सौरग यात्रा कहते हैं। इस यात्रा के पीछे ऐसा माना जाता है कि जब सती के पिता दक्ष प्रजापित ने महायज्ञ के आयोजन में शिव जी को नहीं बुलाया तो सती ने उसी यज्ञाग्नि में आत्मदाह कर लिया, जिससे अन्य आमंत्रित देवी-देवताओं को सती की मृत्यु का पातक अर्थात् अशुद्धता लग गई थी।

इसी पातक के निवारण के लिए उन देवताओं को स्वर्ग यात्रा पर जाना पड़ा। तभी से यह परंपरा प्रचलित है। माघ संक्रांति के दिन लोग ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नान के पश्चात् देवी-देवताओं की विधिवत् पूजा अर्चना करते हैं,

तत्पश्चात् देवी-देवता स्वर्ग को प्रस्थान कर जाते हैं। लोक विश्वास है कि उनके स्वर्ग चले जाने पर उनकी मूर्तियाँ शक्ति विहीन हो जाती हैं और उनके गूर, माली, देवां को भी खेल नहीं आती। फाल्गुन संक्रांति तक क्षेत्र के किसी भी मंदिर में देवी-देवताओं की आरती नहीं उतारी जाती, केवल आकाश की ओर जल व धूप उनके निमित्त अर्पित किया जाता है। इस काल के दौरान क्षेत्र में कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता। इंद्र की सभा में गए देवताओं को उनके क्षेत्र के लिए अच्छे-बुरे फलादेश बताए जाते हैं जो लौटने पर वे अपने गूरों के माध्यम से लोगों को सुनाते हैं।

सौह : देव प्रांगण। यह एक तरह का खुला मैदान होता है जहाँ मेले में देवता के रथ को नचाया जाता है। यहाँ बहुत संख्या में मेले में आए लोग एकत्र हो सकते हैं और नृत्य व गायन करते हैं। एक गीत में धीरे-धीरे नाचने का आग्रह तथा सौह टूटने का वर्णन है–

छिनकै-छिनकै नाचो ला जाचुओ, सौह चाली थारे चुटी।

हर देवता की एक सौह होना ज़रूरी है और कई बार यह मंदिर से कुछ दूरी पर भी होती है।

स्तोरमा : बलि। बौद्ध पूजा पद्धति में स्तोरमा का प्रयोग नैवेद्य के रूप में होता है। यह 'छोदपा' की तरह ही मक्खन और सत्तू का बना होता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक विशेष प्रकार के लाल रंग का प्रयोग होता है जो पहाड़ी जंगलों में पाए जाने वाले एक विशेष प्रकार के घास से बनता है, जिसे स्थानीय भोट भाषा में डिमोक कहते हैं। इस डिमोक को मक्खन में उबालने पर यह लाल रंग में परिवर्तित हो जाता है, जो बिल्कुल रक्त की तरह लाल होता है। स्तोरमा की आकृति एवं संख्या में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। भिन्न-भिन्न इष्ट देवताओं की पूजा के लिए स्तोरमा की आकृति एवं संख्या भिन्न प्रकार से निश्चित होती है।

इसीलिए गोन्पाओं में स्तोरमा एवं छोदपा की आकृति देखकर ही पता लग जाता है कि वहाँ उक्त समय में किस देवता की पूजा हो रही है या होने वाली है। बौद्ध भिक्षुओं को स्तोरमा बनाने की कला का विधिवत् अध्ययन करना पड़ता है। अनेक स्तोरमा-बलियों को तंत्र के इष्ट देवता का ही रूप माना जाता है। उन्हें पूजा के मध्य अग्नि में रखकर जला दिया जाता है या घर के बाहर फेंक दिया जाता है। कुछ स्तोरमाओं का निर्माण करके पूजा के पश्चात् उन्हें घर या विहारों की छत पर स्वच्छ स्थान पर सुरक्षित रख दिया जाता है।

हत्या : पूजिता मृता। यदि परिवार की किसी बेटी ने कभी किसी कारणवश परिवार से दुखी होकर या किसी भावना को लेकर जान दे दी हो तो कभी-कभी ऐसी आत्मा अपने परिवार के व्यक्तियों को कष्ट देती है। ऐसी स्थिति में उसकी हत्या का दोषी अपने आप को मानकर परिवार उसकी पत्थर की मूर्ति बनाकर किसी बावली पर स्थापित करता है और उसे 'कुलजा' की तरह ही पूजता है या उसकी चाँदी की मूर्ति बनाकर गले में धारण की जाती है।

हरणसिंघा : दे. नरशिंघा।

हलमंदी : देवता का एक कारकुन जिसे निम्न वर्ग में से चुना जाता है। इस पद का सृजन देवता की इच्छानुसार अनिश्चित काल के लिए किया जाता है। इसका कार्य मंदिर में लकड़ी आदि का प्रबंध, नगाड़ों आदि को उठाने की व्यवस्था तथा मंदिर में पूजा आदि के लिए अनाज तथा धन एकत्र करना व श्रमदान आदि के बारे में देवता की प्रजा को सूचना देना होता है।

हार : वह क्षेत्र जिसमें देवता विशेष को मान्यता प्राप्त है, जहाँ उसकी पूजा की जाती है या जिसे वह अपना क्षेत्र समझता है। यह ज़रूरी नहीं कि उस क्षेत्र में कोई और देवता न हों। अन्य देवता भी हो सकते हैं, परंतु यह उनका पुराने समय से एक निर्धारित क्षेत्र है। देवता अपनी हार में वर्ष-दो वर्ष में एक बार परिक्रमा करता है। इसका प्रयोजन यह है कि देवता अपने सारे क्षेत्र में घूम कर यहाँ की सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

हारका : 'हार' के लोगों की देवता की अध्यक्षता में की जाने वाली बैठक। देवता के प्रत्येक मेले और त्योहार से पहले इस प्रकार की बैठक अवश्य की जाती है जिसमें उसके कार्यक्रम की व्यवस्था निश्चित की जाती है। इसके अलावा यदि हार में अधिक सूखा, वर्षा, रोग-व्याधि फैल जाए तो विशेष हारका किया जाता है। यद्यपि इसमें हार के सभी लोग आमंत्रित होते हैं, फिर भी प्रत्येक गाँव में जो उपकारदार आदि कारकुन होते हैं, उन्हें आवाज़ देकर या शेष देकर बुलाया जाता है। यदि विपत्ति का समाधान न हो तो हारका में ही देवता अपने कारकुनों में से किसी एक को या सभी को बदल भी देता है।

हारगी : हारगी देवताओं का पारस्परिक संबंध है जब एक से अधिक देवता मिलकर कोई आयोजन करते हैं। कुछ देवताओं की स्थिति में हारगी से अभिप्राय देवता विशेष द्वारा अपनी हार के अंदर की जाने वाली परिक्रमा है। वह हार के सब गाँवों में जाता है और लोग देवता के निमित्त भेंट चढ़ाते हैं। हारगी में इकट्ठा किया गया अन्न देवता के आयोजन में खर्च किया जाता है।

हारचा : वह स्थान जहाँ बैठकर 'हारका' किया जाता है अर्थात् जहाँ देवता के आयोजन तथा लोगों की समस्याओं के संबंध में देवता के कारकुनों और अन्य लोगों की बैठक होती है।

हारशा : गूर की नियुक्ति के समय जब वह शांगल-घंटी लेकर नंगे पाँव पूरी हार की परिक्रमा करता है और वापस आकर अपने सिर पर लगी टोपी देवता के मुख्य वाद्य ढोल पर गिराता है तब उसके बाद देवता हारियान सहित गूर के घर 'भौती' पर जाता है। इसे हारशा कहते हैं।

हारियान : दे. हारीए।

हारीए : देवता की 'हार' के लोग। 'हारशा' और 'दरशोहा' में देवता का गूर इसी नाम से अपने लोगों को पुकारता है। इन्हें हारियान और **हारी बिंदरा** भी कहा जाता है।

हारी बिंदरा : दे. हारीए।

हिंगरना : दे. उभरना।

हीठ : देवता से प्रश्न पूछने की एक प्रणाली। इसमें रथ को कंधे पर उठाया जाता है और संभाव्य उत्तर की तीन पर्चियाँ बना कर कुछ-कुछ दूरी पर पत्थर के नीचे दबा कर रख दी जाती हैं। तब देव रथ इनमें से किसी एक पर्ची के पास जाकर झुक जाता है। देवता की ओर से उस पर्ची में लिखा उत्तर सही माना जाता है।

इसकी दूसरी विधि के अनुसार देवता के कम से कम तीन कारकुन प्रश्न का उत्तर चारों दिशाओं में निर्धारित करते हैं और इस बात को गुप्त रखा जाता है। तब इन कारकुनों के अतिरिक्त अन्य दो व्यक्ति देवरथ को कंधे पर उठाते हैं तो देवता स्वयं जिस दिशा में जाता है, उस दिशा में निर्धारित उत्तर सही माना जाता है।

हुल : बलि के लिए रखा गया मेमना।

हुलकी : देव नृत्य। यह देवता की प्रत्येक जाच अर्थात् मेले का प्रमुख अंग है, जो विशेष संगीत, लय और ताल में नाचा जाता है। मेले के अवसर पर देवरथ को रंग-बिरंगे कपड़ों, मोहरों और छत्र से सजा कर मंदिर से बाहर निकाल कर देव सौह में लाया जाता है। बजंत्री सौह में एक ओर खड़े होकर वाद्यों पर देव-धुनें बजाते हैं। इनके दोनों ओर मेले में आये लोगों की भीड़ जमा होती है। तब विशेष संगीत, लय और ताल में देवरथ और गूर दोनों का नृत्य होता है। सौह में आगे गूर 'घांडी-धौड़छ' के साथ एक किनारे से दूसरे किनारे तक नृत्य करते हैं और

उनके पीछे देवरथ को बाजे-गाजे के साथ तीन-पाँच-सात फेरे नचाया जाता है। इस उपक्रम को हुल़की कहते हैं।

हूड़ : बकरे के रक्त को देवता की मूर्ति पर चढ़ाने की क्रिया।

हूद : 'चाकर' का विपरीतार्थक शब्द। ज़िला कुल्लू के मलाणा गाँव में 'कोर' (संसद) के लिए जिस व्यक्ति को मत देने का अधिकार नहीं है, वह हूद कहलाता है। वह बैठक में भाग तो ले सकता है, परंतु मत नहीं दे सकता।

हूम : यज्ञ, होम, हवन।

विश्वास

विश्वास

अखवा : जादू-टोने का अनुमान लगाने के लिए प्रयुक्त अन्नकण। जादू-टोने का पता लगाने के लिए ओझा को जो अन्न कण दिये जाते हैं, उन्हें अखवा कहते हैं।

अद्ध मसाणिया : आधा भूत। इसका आधा शरीर मानव का और आधा कंकाल जैसा होता है। इसे कभी-कभी बिना सिर के भी देखा गया है। पीपल या सेमल का वृक्ष इसका निवास स्थल होता है। कहीं-कहीं किसी खंडहर के पास भी इसकी उपस्थिति मानी जाती है। आधी रात के समय कोई इसके वास के पास से गुज़रे तो वह उस व्यक्ति को मरोड़ देता है। ऐसा व्यक्ति मुश्किल से ही बच पाता है। छोटे-मोटे चेले-डाऊ इसके समीप नहीं जाते। इसको मनाने के लिए मुर्गे या मेढ़े की बलि दी जाती है तथा अनेक प्रकार के पकवानों से युक्त भक्ख (भक्ष्य पदार्थ) इसे दिया जाता है। यदि इसे भक्ख देने में कोई चूक रह जाए तो चेले या डाऊ की शामत आ जाती है। इसका मरोड़ा हुआ व्यक्ति तेज़ बुखार से ग्रस्त हो जाता है और उसका रंग काला पड़ जाता है। वह बेहोशी की हालत में ऊटपटांग बकता है, अचानक उठकर बाहर को भागता है। उस समय उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि कोई भी उस पर काबू पाने में असमर्थ हो जाता है। इलाज हो जाने पर वह निश्चल सा हो जाता है और कभी-कभी विक्षिप्त भी हो जाता है।

ओपरा : भूत-प्रेत का प्रभाव। ओपरे में व्यक्ति या बीमार रहता है या फिर अन्य किसी भी प्रकार की असामान्य हरकतें करता है। ऐसे रोगी को जब दवा-दारू देने पर भी रोग से छुटकारा नहीं मिलता तो इसे ओपरा मान कर इसका उपचार चिकित्सक के बजाए 'चेले' से करवाया जाता है।

औतरा एणा : मृत व्यक्ति की आत्मा का किसी जीवित व्यक्ति में प्रविष्ट होना। व्यक्ति जब किसी इच्छा या चिन्ता को लेकर मर जाता है तो उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में उसकी आत्मा किसी अन्य व्यक्ति में प्रवेश कर जाती है और वह व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर से काँपना और चिल्लाना शुरू करता है। पूछने पर अपने मन की व्यथा बताकर उससे छुटकारा पाने की बात करता है। कभी-कभी मृतक का कष्ट जानने के लिए किसी 'चेले' की आवश्यकता भी पड़ती है।

कंगलिंग : यह एक तांत्रिक महत्त्व का वाद्ययंत्र है। यूँ तो इसका प्रयोग बौद्ध विहारों और गोन्पाओं में केवल पूजा अर्चना में किया जाता है, परंतु बुछेन में पत्थर तोड़ते समय भूत-प्रेतों और डाकिनी-शाकिनियों के कुप्रभाव से बचने के लिए भी इसका उपयोग होता है। यह प्रायः गर्भवती मृत स्त्री की टाँग की हड्डी का बना होता है परंतु यदि किसी पुरुष अथवा महिला गायक की युवावस्था में मृत्यु हो जाए तो स्त्री की स्थिति में उसकी बाईं टाँग की हड्डी और पुरुष गायक की स्थिति में उसकी दाईं टाँग की हड्डी को निकाल कर उसे अंदर से खोखला और साफ करके मंत्र-तंत्र द्वारा शुद्ध किया जाता है। तत्पश्चात् वाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसके निचले छोर पर वायुनिर्गमन के लिए छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। इसका मुख रंध्र रजत या ताम्र जड़ित होता है तथा यह वाद्य मनका एवं चाँदी पट्टी से शृंगारित होता है। इसकी लंबाई 18 इंच के लगभग होती है। इसे मुँह से फूँक मारकर बजाया जाता है। यह अनेक प्रकार के रोगों और कष्टों के निवारण के लिए तांत्रिक विधि से प्रयोग में लाया जाता है। लोकविश्वास के अनुसार इसकी ध्वनि सुनकर मृतात्माएँ एकत्र हो जाती हैं और वादक यदि साथ में मंत्रोच्चारण कर रहा हो तो उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि इसे रात्रि में बजाया जाता है।

कंग्राटा : एक टाँग वाला भूत। लाहुल क्षेत्र में इस भूत की सत्ता मानी जाती है, जिसे लंगड़ा भूत या नरसिंह भी कहा जाता है। इसे शराबियों का मित्र समझा जाता है और कहा जाता है कि रात को जब शराबी लोग नशे में धुत्त होकर अपने घर का रास्ता भूल जाते हैं तो यह उनके साथ चलते हुए उन्हें घर तक छोड़ आता है, किंतु स्त्रियाँ इससे बहुत घबराती हैं। स्त्रियों में इसका नाम लेना वर्जित है। माना जाता है कि यह रात्रि के अंधकार में विवाहित स्त्रियों के पास उनके पतियों का रूप धारण करके चला जाता है और संभोग करके लौट आता है तथा अविवाहिताओं के वस्त्र का कोना छू जाने पर ही उन पर अपना पतित्व का अधिकार समझ लेता है और रात्रि में आकर उनके साथ संभोग किया करता है। इस संसर्ग से उत्पन्न संतान रूपाकृति हीन मांस के लोथड़े के रूप में उत्पन्न होती है। इस प्रकार के प्रसवों को कंग्राटा के संसर्ग से उत्पन्न संतति समझा जाता है।

करंगोर : दे. भेखल़।

काहलू : प्रेतात्मा जो पर्वतों पर रहती है। मान्यता है कि उसके क्रुद्ध होने से भूस्खलन होता है। तब उसे बलि देकर संतुष्ट किया जाता है।

कीलणा : कीलना। मंत्रादि के प्रयोग से भूत-प्रेत को वशीभूत करना। वामन शिवराम आप्टे ने संस्कृत-हिंदी कोश में कील का प्रयोग कील गाड़ना के अर्थ में

किया है। लोकोपचारों में कील की समानता कीलणा में देखी जा सकती है। जब कभी भूत-प्रेत के प्रकोप से हानि, रोग आदि अनायास ही आ पड़ते हैं तो तांत्रिक रात के समय मंत्रशक्ति द्वारा भूत-प्रेत को निर्जन स्थान पर ले जा कर वहाँ उसे कीलकर उसके प्रकोप को समाप्त कर देता है जिसे कीलणा कहते हैं।

खाधा : जादू-टोना करके किसी व्यक्ति को खिलाई गई वस्तु। यह जड़ी-बूटी, जंतर या अभिमंत्रित खाद्य सामग्री के रूप में दिया जाता है। इसे खाने से व्यक्ति बीमार हो जाता है और धीरे-धीरे कमज़ोर होता हुआ मरने की कगार पर पहुँच जाता है।

खाधा खेलणा : 'खाधा' के उपचार की एक विधि। जब खाधा से पीड़ित व्यक्ति जिसे 'डोली' कहते हैं, उपचार के लिए तांत्रिक के सामने बैठता है तो तांत्रिक की शक्ति से वह आप बीती सुनाता है कि किस प्रकार उसे फ़लाँ व्यक्ति ने 'खाधा' दिया। इस प्रकार 'डोली' जो अपनी बात बताता है, उसे ही खाधा खेलणा कहा जाता है। जिसने खाधा खेल लिया, लोकविश्वास के अनुसार उसका उपचार हो गया समझा जाता है।

खोरी छडणा : एक तांत्रिक उपचार। यदि किसी घर में कलह रहती हो, परिवार जन रोग से बार-बार ग्रस्त होते हों, माल-मवेशी मर जाते हों, निर्धनता हो तो यह समझा जाता है कि घर में कहीं जादू गड़ा है। वह 'चेले' से इस संबंध में पूछ डालते हैं और चुपके से कोई दिन निश्चित करके जादू की खोज आरंभ कर दी जाती है। चेला मंत्र बोलना आरंभ करता है। काष्ठ की माणी (अन्न मापक यंत्र) में जौ, सरसों तथा ताँबे के पैसे को मंत्रित करके डाला जाता है। पैसे पर हनुमान जी का चित्र बना होता है। एक व्यक्ति इस माणी को ज़ोर से पकड़े रखता है। मंत्रशक्ति से यह यंत्र गतिशील होकर चलना आरंभ कर देता है। जिसने माणी को पकड़ा होता है वह उस यंत्र के वेग से घिसटता चला जाता है। माणी जिस स्थान विशेष पर जाकर बार-बार रुके, अनुमान लगाया जाता है कि जादू यहीं दबाया गया है। इस तांत्रिक क्रिया में दो-तीन हड्डियों, सरसों, जौ, सिन्दूर, कोयले तथा सिर के बालों का प्रयोग होता है। अन्य सामग्री भी हो सकती है। इन सभी वस्तुओं को जूतों से कुचलकर प्रभावहीन करके अज्ञात स्थान पर फेंक दिया जाता है। कई बार चोरी का पता लगाने के लिए भी खोरी छोड़ी जाती है। माणी के अभाव में पीतल के लोटे का प्रयोग भी किया जा सकता है।

खुस्ती अपा : यह केलंग क्षेत्र की एक स्त्री प्रेतात्मा है। यह स्वयं एक सौ संतानों की माँ होने के कारण दयालु प्रकृति की है, इसलिए लोगों को परेशान नहीं करती। लोग भी फसल की मंडाई के अवसर पर की जाने वाली पूजा के बाद खुस्ती अपा के नाम पर प्रसाद अर्पित करते हैं। ग्रीष्म के प्रारंभ में गाँव के लिए कुल्या

निकालने के अवसर पर जलस्रोत पर जो भेड़ की बलि दी जाती है, उसका कलेजा तो बिलिङ् नाले के जलस्रोत के देवता को अर्पित कर दिया जाता है जबकि उसका आमाशय ख़ुस्ती अपा को भेंट किया जाता है। प्रथम दिन के जल को भी खेतों में न डालकर ख़ुस्ती अपा के नाम पर उसके आवास की ओर को प्रवाहित कर दिया जाता है।

गारड़ी : झाड़-फूँक करने वाले व्यक्ति को गारड़ी कहते हैं।

गीठू राखस : अंगीठी वाला राक्षस। दे. जलधीर।

गूंगा : एक भूत जो कई प्रकार की आधि-व्याधियों से पशुओं को तंग करता है। ऐसी बीमारी की दशा में लोग तुरंत ही उसके नाम पर एक तवा तब तक सुरक्षित रखते हैं जब तक गूंगा की विधिवत् पूजा नहीं की जाती। उसकी पूजा का निर्धारित दिन बीरवार होता है। उस दिन आगे से मुड़ी लोहे की एक छड़ को गूंगे का प्रतीक मानकर गोशाला में ले जाया जाता है और वहीं एक कोने में आग-जलाई जाती है। आग के समीप उस छड़ को रखकर एक बकरे की बलि दी जाती है तथा बलिपशु का लहू छड़ पर छिड़काया जाता है और सुरक्षित रखे तवे पर आटे की रोटियाँ पका कर गूंगे को चढ़ाई जाती हैं। कुछ रोटियाँ परिवार के किसी एक सदस्य को खिलाई जाती हैं, परंतु इस बात का ध्यान रखा जाता है कि एक से अधिक सदस्य रोटी न खा जाएँ क्योंकि ऐसी स्थिति में कष्ट दूर होने के बजाए गंभीर होने की शंका रहती है। शेष रोटियाँ मिट्टी में दबा दी जाती हैं। पशुओं को गूंगे के प्रकोप से बचाने के लिए ऐसी पूजा हर चौथे वर्ष करनी पड़ती है।

घटियालू : एक भूत जो पशुधन का शत्रु है। इसके नाम पर घर के किसी कोने में विशेष पत्थर रखा जाता है और समय-समय पर मेढ़े की बलि दी जाती है। कई बार यह आदमियों को भी तंग करता है। लोगों का विश्वास है कि यह मूलतः भज्जी रियासत का भूत है जो अब धामी क्षेत्र में पहुँच गया है।

घुंघणियाँ : भूत-प्रेत के प्रकोप के उपचार हेतु भूतों के निमित्त बनाया गया आहार। इसे गेहूँ के दानों को उबालकर उसमें थोड़ा नमक डालकर बनाया जाता है और भूत-प्रेत के आहार स्वरूप अन्य सामग्री के साथ चौराहे पर छोड़ा जाता है। दे. छाड़ छडणा।

चड़ेल : पुरुष के मरने पर जो स्थिति भूत की है, स्त्री के मरने पर वही स्थिति चड़ेल की है। पुरुषों को यह भड़कीले वस्त्र पहने सुंदर स्त्री के रूप में मिलती है और उसका नाम लेकर उसे पुकारती है। यदि आदमी इसके धोखे में आ जाए तो इलाज

न कराने पर उसकी मृत्यु निश्चित है। 'चेले' तथा 'डाऊ' उस व्यक्ति का इलाज करते हैं। श्मशान उनकी पूजा का स्थल होता है और वहाँ पर ही इसके लिए भक्षण दिया जाता है। इसकी स्पष्ट पहचान यह है कि इसके पैर उलटे अर्थात् पीठ की ओर होते हैं। स्तन बड़े-बड़े, लंबे और कंधों से पीछे की ओर लटकते हैं। किसी व्यक्ति की पत्नी अगर मरने पर चड़ेल बन जाए तो वह दूसरी पत्नी को बहुत कष्ट पहुँचाती है। उसे शांत रखने के लिए उसकी पत्थर की मूर्ति बनाई जाती है और उसकी पूजा की जाती है। कोई स्त्री यदि प्रसव के तुरंत बाद मर जाए और उसका बच्चा पीछे छूट जाए तो वह स्त्री चड़ेल बनकर बार-बार अपने बच्चे को प्राप्त करने के लिए दौड़ती है। चेले अपने तंत्र-मंत्र से उसके रास्ते का 'कार' द्वारा अवरोधन कर देते हैं।

चमार लांझा : 'मुट्ठ' की तरह का मारक अनुष्ठान जो शूद्र जाति के तांत्रिक से करवाया जाता है। यह माना जाता है कि चमार लांझा से प्रभावित व्यक्ति का यदि तुरंत उपचार न करवाया जाए तो उस को खून की उलटियाँ और दस्त होते हैं और वह मर जाता है।

चलौआ देणा : देव मंदिर या घर की भूत-प्रेत से सुरक्षा हेतु छत के ऊपर बकरा काटने की परंपरा को चलौआ देणा कहते हैं।

चिरिम : दे. तोर्मा।

चुंगू : यह चंबा क्षेत्र का भयानक भूत है जो प्रायः अखरोट और शहतूत के वृक्षों में रहता है। करंगोरा नामक स्थानीय झाड़ियाँ भी इसका प्रिय निवास हैं। यह दुधारू पशुओं के थनों से दूध पी जाता है। जब वह किसी पर प्रभाव डालता है तो गरी, छुहारे और बादाम भेंट करके उसकी पूजा की जाती है। रोट से भी इसे पूजा जाता है। कुछ ओझे इसके 'चेले' होते हैं जो इसकी विशेष प्रकार की पूजा करते हैं और एक बड़ा रोट बनाकर उस पर आटे के बने चौकोर दीपक में सरसों का तेल डालकर चुंगू को चढ़ाते हैं। जो चेला इसे अपने वश में कर लेता है, उसके लिए यह दूसरों के घरों से घी-दूध चुराकर ले आता है।

चेला : तंत्रविद्या के अंतर्गत चेला वह व्यक्ति होता है जो औषधियों की अपेक्षा तांत्रिक पद्धति से रोगी का उपचार करता है। वह अपने पास निम्नकोटि के देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों आदि की भटकी हुई आत्माओं को नियंत्रित रखता है। अपनी आराध्य रूहों की भाँति यह क्रूर एवं पैशाचिक वृत्ति का होता है और सभी भक्ष्य-अभक्ष्य का प्रयोग कर समाज में आतंक फैलाता है। श्मशान, चौराहा, संध्याकाल, अर्धरात्रि काल में जीवघात कर मांस, मदिरा अथवा अन्य ऐसी प्रकार

की निकृष्ट वस्तुओं की भेंट देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। चेले को डाऊ भी कहते हैं।

छलेडा : छल। जहाँ कोई दुर्घटना हुई हो या आदमी की अकालमृत्यु हुई हो ऐसे स्थान पर छलेडा होता है। इसके अनुसार मनुष्य को उस स्थान पर एकदम चीख-पुकार सुनाई देती है। यह घटना रात के समय या कभी-कभी दोपहर के समय भी घटती है। छलेडे से अचानक डरा व्यक्ति बीमार भी हो सकता है, जिसका उपचार 'गूर' या 'चेले' से करवाया जाता है।

छहापड़ा : एक प्रेत जो धवल वस्त्र पहनता है। यह बस्ती से दूर रहता है। यह अंधेरी रातों में किसी राही को रास्ते में मिल जाता है और दूर तक उसके आगे-पीछे चलता रहता है। कभी-कभी यह इतना लंबा दिखता है मानो आसमान को छू रहा हो तो कभी सामान्य दिखने लगता है। कभी राही के रास्ते में आर-पार लेटकर कहता है कि मैं बीमार हूँ, मुझसे हिला भी नहीं जा रहा है। इस चादर को मेरे ऊपर सिर से पैर तक ओढ़ा दो। राही जब चादर ओढ़ाने लगता है तो कभी चादर सिर की ओर छोटी पड़ जाती है तो कभी पैर की ओर। कहते हैं कि उस समय यदि राही के पास कोई हथियार हो तो वह उसे तंग नहीं करता। यूँ भी यह व्यक्ति को केवल डराता है, कोई विशेष हानि नहीं पहुँचाता।

छाउंरौ छाड़नौ : एक लोकोपचार। यदि कोई बच्चा या व्यक्ति अचानक बेहोश हो जाए, आँखें चढ़ जाएँ और हाथों की मुट्ठी भिंच जाएँ तो उसके ऊपर भूत-प्रेत या डाकिनी-शाकिनी की छाया पड़ने की शंका की जाती है। इस प्रकार के रोगी का उपचार तंत्र-मंत्र से किया जाता है। पंडित मंत्रोच्चारण के साथ भेखल़ की डाली को पीड़ित व्यक्ति के सिर पर से घुमा-घुमाकर सामने रखे जल से भरे पात्र पर पटकता है। यह क्रिया दो-तीन मिनट तक चलती है, जिससे भूत-प्रेत आदि भाग जाते हैं और रोगी ठीक हो जाता है। जल और डालियों को झाड़-फूँक के उपरांत शुद्ध स्थान पर फेंक दिया जाता है। छाउंरौ शब्द सं. छाया का तद्भव रूप है, अतः भूत-प्रेत के छाया छोड़ने के कारण उक्त उपचार का नाम छाउंरो छाड़नौ पड़ना उचित प्रतीत होता है।

छाड़ छडणा : यह एक तांत्रिक उपचार है जो किसी व्यक्ति को प्रेत बाधा से मुक्त करता है। तांत्रिक उस प्रेत से पीड़ित व्यक्ति का मिट्टी या आटे का पुतला बनाता है। उसे वस्त्र पहनाता है। साथ में अन्य पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ भी बनाता है तथा प्रेत के लिए खाद्यपदार्थ, जिसमें आटे का पेड़ा, एक तरफ से कच्चा और दूसरी ओर से जला हुआ छोटा रोट, गलगल के टुकड़े, उबले हुए चावल के दाने

और 'ठौड़ियाँ' विशेष रूप से रखता है। प्रेत को प्रसन्न करने के लिए उसके उपयुक्त सामग्री को एकत्र करके लकड़ी के चपटे पात्र या बाँस की टूटी-फूटी टोकरी, जिसे छाड़ कहते हैं, में रखता है। फिर संध्याकाल में तीन-चार व्यक्ति इस सामग्री को चौराहे पर रख आते हैं ताकि प्रेत प्रसन्न होकर वहीं से वापस चला जाए। मान्यता है कि जब छाड़ को उठाकर चौराहे पर छोड़ा जाता है तो मार्ग में कोई व्यक्ति नहीं आना चाहिए अन्यथा प्रेत उसी को लग जाता है।

जंतर : यंत्र। कागज़, भोजपत्र, ताम्रपत्र आदि पर अंकित वह मंत्र, चक्र, स्वस्तिक आदि अथवा मंत्रोपचारित कोई अन्य वस्तु जंतर कहलाती है जो सोने, चाँदी आदि के संपुट में बंद करके या यों ही गले, बाजू या कमर पर इस उद्देश्य से धारण की जाती है कि उसके चमत्कारिक प्रभाव से भय और व्याधि का शमन हो, दुःख दारिद्रय से छुटकारा प्राप्त हो अथवा अभीष्ट कार्य की सिद्धि हो। अनेक प्रकार के मंत्रसिद्ध पदार्थ भभूत, फूल, जड़ी, डोरा, वस्त्र तथा टोटके में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ रक्षाकारी जंतर हैं।

जलधीर : विशेष प्रकार के राक्षस। इन्हें **बेड़ावले़, डालू़-शालू़, जल्दसिरा** या **गीठू राखस** भी कहते हैं। कई बार अंधेरी रात में कुछ दूर जलती हुई एक मशाल दिखाई देती है। फिर तुरंत एक से दो, दो से चार और फिर अनेकों मशालों का प्रकाश दिखाई देने लगता है। धीरे-धीरे वे कम होने लगते हैं, तुरंत फिर अनेक मशालें बन जाती हैं और अंततः सभी बुझ जाती हैं। ये ऐसे राक्षस या भूत हैं जिन्हें हर कोई देख सकता है। इसलिए पढ़े-लिखे लोगों का कहना है कि जहाँ कोई मुर्दा या मृत शिशु दबाए गए हों वहाँ उनकी हड्डियों से फासफोरस निकलता है जो वायु के साथ टकराने से जलता है। यदि यह सच होता तो यह प्रकाश समीप से भी दिखाई देना चाहिए; परंतु निकट जाने पर ये दिखाई नहीं देते। लोगों का विश्वास है कि ये विशेष प्रकार के राक्षस होते हैं जो सिर पर जलती अंगीठियाँ लिए नाचते हैं। किंवदंतियों के अनुसार जलधीरों ने एक टोपी पहनी होती है, ये अपनी-अपनी टोपियाँ उतार कर एक स्थान पर रख देते हैं और मशाल जलाकर नाचने लगते हैं। यदि चतुराई से उनकी टोपी चुरा ली जाए तो वह जलधीर आजीवन उस व्यक्ति का सेवक बन जाता है और उस व्यक्ति के लिए लौकिक और अलौकिक कार्य करता है। एक विश्वास के अनुसार जो व्यक्ति किसी के माँगने पर आग नहीं देता वह मरकर जलधीर बनता है।

जलबताल़ : प्रेत। ये प्रेत नदियों में रहते हैं और रात के समय हाथों में मशालें लेकर ऊपर-नीचे घूमते रहते हैं। इनमें रूप बदलने की अलौकिक शक्ति होती है। रात्रि के समय यदि कोई व्यक्ति मछलियाँ, शादी-विवाह का भात आदि लेकर जा रहा

हो तो ये उसके पीछे लग जाते हैं। इसलिए रात को यदि इन वस्तुओं को लेकर चलना हो तो उन्हें जूठा करके ले जाया जाता है क्योंकि फिर ये पीछा नहीं करते। ये प्रेत वास्तव में अन्य प्रेतों की तरह भयानक नहीं होते और न ही किसी को कोई नुकसान पहुँचाते हैं। कभी-कभी ये स्त्रियों के गर्भ में पहुँच कर नन्हें शिशु के रूप में भी जन्म ले लेते हैं। ऐसे बच्चे की सूरत बहुत भयानक होती है। नाक के स्थान पर केवल दो छिद्र होते हैं। आँखों में तेज़ चमक होती है और दाँत भी होते हैं। ऐसे बच्चे मृत ही पैदा होते हैं, परन्तु यदि जीवित पैदा हों तो कुछ समय बाद मर जाते हैं।

जल्दसिरा : दे. जलधीर।

जौछण : यक्षिणी। यह यक्ष की पत्नी मानी जाती है। कई क्षेत्रों में इसकी पूजा की जाती है। इसकी छवि कामुक बताई गई है। यह रात को अनेक बार सुंदर वस्त्राभूषण पहन कर मिलती है। पुरुषों के साथ हास-परिहास करती है, परंतु स्त्रियों को डराती-धमकाती है।

झपट : ओपरा। झपट का उपचार देवता की आज्ञा से गूर द्वारा किया जाता है। इसे दूर करने की विशेष विधि होती है। पूजा की सामग्री झपट के अनुसार तैयार की जाती है और पूजा रात के दस-ग्यारह बजे की जाती है। यदि झपट हल्की हो तो रोटी तथा गुड़ से पूजन किया जा सकता है और यदि प्रकोप भारी हो तो कद्दू नारियल या गरी के गोले से पूजा की जाती है।

टाणा माणा : एक तांत्रिक उपचार। बौद्ध लोग घर में किसी के बीमार पड़ते ही उपचार के लिए किसी लामा को बुला लेते हैं और वह आकर उस घर में टाणा-माणा करता है। यह पूजा अनेक प्रकार से की जाती है, जिसके अलग-अलग नाम होते हैं, यथा—ग्यब्जी, छोग्जी, चुंदोस, ग्यल्दोस, त्यापो आदि। किस रोगी के लिए किस प्रकार का टाणा-माणा किया जाना है, इसका निर्णय मुख्य लामा द्वारा रोगी के जन्मवर्ष के आधार पर किया जाता है। इस बात का निर्णय हो जाने पर तदनुसार ही सत्तू की अश्वारोही मानव, भेड़, चूहा या मृग आदि की एक आकृति बनाई जाती है और इसे सामने रखकर पूजा की जाती है। इसके उपरांत इसे किसी चौराहे पर फेंक दिया जाता है या नदी में बहा दिया जाता है।

टौ़लना : टलना। जीव का अस्थाई रूप से देह छोड़ देना। भारी ग्रह-ग्रस्त होने या देवदोष के बढ़ जाने पर उस व्यक्ति की आत्मा कुछ समय के लिए शरीर में से निकल कर इधर-उधर भटकने लगती है। गूर और कुछ भावुक व्यक्ति रात को ऐसे आदमी को देख भी लेते हैं। हालांकि पहचानने में गड़बड़ी कर सकते हैं। गूर

'पौटड़ी पूज़' द्वारा ऐसे व्यक्तियों का उपचार करते हैं। यदि टौले़ हुए व्यक्ति का सिर न दिखाई दे तो ये उपचार काम नहीं आते, तब उसकी मृत्यु निश्चित है।

ठौड़ियाँ : भूत-प्रेत के प्रकोप के उपचार हेतु बनाया गया पकवान। इसके लिए माश और चने की दाल को भिगो और पीसकर पीठी बनाई जाती है। इससे बताशे से कुछ बड़े आकार की टिकियाँ बनाकर तवे में घी लगाकर कम आँच में उन्हें पकाया जाता है। दे. छाड़ छडणा।

डाऊ : दे. चेला।

डाग : फसलों और खेतों का भूत। यदि किसी समय अच्छी फसल होते हुए भी उपज कम हो जाए तो माना जाता है कि उसे डाग खा गया। सिरमौर क्षेत्र में डाग अत्यंत भयानक दुरात्मा है। यदि दो व्यक्तियों में लंबी शत्रुता चली आ रही हो तो उनमें से एक जो दूसरे का बुरा करना चाहे, किसी पावुच के माध्यम से डाग को उकसाता है जो उस व्यक्ति को कई प्रकार से कष्ट पहुँचाता है। इसका उपचार भी पावुच ज्योतिषी ही कर सकता है।

डायण : जादू करने वाली स्त्री। इसने कई मंत्र साधे होते हैं, जिससे यह दूसरों का रूप बदलने में कुशल होती है। कई डायनें पत्थर के छोटे-छोटे कंकरों को अभिमंत्रित करके जंगल में चीते या बाघ पर फेंकती हैं, जिससे वे भेड़-बकरियों और गाय, भैंसों को मार कर खाने के बजाय ग्वाले बन कर दिन भर उनको चराते हैं और कई डायनें ऐसी हैं जो दूसरों के घरों से दूध-घी को जादुई तार से अपने घर लाने में सफल होती हैं। ये देवताओं के साथ युद्ध करती हैं। लोक विश्वास के अनुसार काले रंग की लाल चोंच वाली जो चीलें आकाश में उड़ती दिखाई देती हैं, वे डायणें होती हैं।

डायणी रा छरा : डायनों का जलप्रपात। मंडी-पंडोह के मध्य भाग में ऊँचे पहाड़ से गिरने वाले एक बड़े जल प्रपात को डायणी रा छरा कहते हैं। ऐसा विश्वास प्रचलित है कि भादों मास की अमावस्या को डायनें यहाँ पर आकर नहाती हैं, फिर देवताओं के साथ युद्ध करने जाती हैं।

डाल़ी बाह्णा : आधिदैविक रोगों से पीड़ित व्यक्ति का उपचार करने की एक विधि। यदि कोई व्यक्ति जादू-टोने या भूत-प्रेत की छाया पड़ने से पीड़ित हो तो उसका उपचार केवल तंत्र-मंत्र द्वारा ही सम्भव होता है। ऐसा उपचार केवल गूर या तांत्रिक ही कर सकता है। गूर भेखल नामक कांटेदार झाड़ी की एक डाली, जो सिरे से टूटी हुई न हो, लेकर पीड़ित व्यक्ति को छुहाता हुआ मंत्र-जाप करता है फिर पानी का लोटा लेकर उसमें वह डाली डाल कर मंत्र-जाप करता है। उस

पानी के छींटे तीन बार उस व्यक्ति के मुँह पर फेंकता है तथा ज़ोर-ज़ोर से हट शब्द कहता है। यदि एक बार ऐसा करने पर भूत न भागे तो इस विधि को दो-तीन बार भी किया जाता है। यह सारी प्रक्रिया डाली़ बाहू्णा कहलाती है।

डाल़ू-शाल़ू : दे. जलधीर।

डाहरू : लाहुल क्षेत्र का एक प्रेत जिसके विषय में कहा जाता है कि यह स्त्रियों से अधिक संसर्ग रखता है। प्रेतसिद्धि करने वाली स्त्रियाँ इसे अपना पति बनाकर रखती हैं।

डेर्गोट : प्रेतात्मा। लाहुल वासियों का ऐसा विश्वास है कि डेर्गोट वह प्रेतात्मक शक्ति होती है जो एक हज़ार अन्य भूत-प्रेतों को परास्त करके उनकी शक्ति को स्वयं आत्मसात कर लेती है।

डोल़ी : रोगी। ऐसा पुरुष या स्त्री जो प्रायः शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक रूप से बीमार हो और 'चेले' से अपना उपचार कराए, उसे रोगी के बजाए डोल़ी कहा जाता है। 'चेला' डोल़ी का उपचार झाड़-फूँक, धागा-धूनी, यंत्र-मंत्र-तंत्र विधि से करता है। जिन डोल़ियों पर प्रेतछाया पड़ी हो वे रोते-चिल्लाते हैं। इस उपचार का सारा व्यय और चेले का पारिश्रमिक डोल़ी को ही देना पड़ता है।

डौगर : भूत व्याधि का उपचार करने वाला। यह यंत्र, मंत्र, तंत्र को जानने वाला होता है और इस विद्या से भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि का उपचार करता है।

तोर्मा : एक सार्वजनिक अनुष्ठान। ऊपरी लाहुल में मृत्यु का वारण करने के निमित्त एक सार्वजनिक अनुष्ठान किया जाता है, जिसे तोर्मा या **चिरिम** कहते हैं। यहाँ प्रचलित एक प्रथा के अनुसार गाँव में जब किसी की मृत्यु होती है तो लामा उस मृतक से संबद्ध घर या गाँव के लिए ग्रह नक्षत्रानुसार उस मृत्यु के शुभाशुभ लक्षणों पर विचार करते हैं। यदि मरण अशुभ नक्षत्रों में हुआ हो और फलस्वरूप गाँव में और मौतों की संभावना हो तो लोग उस दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए लामाओं से यह विशेष पूजा करवाते हैं। इसमें लामा लोग सत्तू को गूँथकर उसकी विभिन्न प्रकार की मानवाकृतियाँ बनाते हैं, जो अश्वारोही, वृषभारोही, त्रिमुखी, चतुर्मुखी आदि रूपों में होती हैं। इन मानवाकृतियों को तोर्मा के नाम से पुकारा जाता है और इन्हें एक स्थान पर स्थापित करके दिनभर पूजापाठ किया जाता है व सायंकाल के समय गाँव के सभी बूढ़ों और बीमारों को वहीं बुला लिया जाता है। जब सब लोग उस कमरे में बैठ जाते हैं तो सत्तू के इन पुतलों को वहाँ पर एकत्र प्रत्येक व्यक्ति के सिर के ऊपर से पहले तीन बार दाहिनी ओर को और फिर तीन बार बाईं ओर को फिराया जाता है। ऐसा करने से विश्वास किया जाता है

कि इन सबकी मृत्यु को इन सत्तू के पुतलों ने अपने ऊपर ले लिया है, फिर ढोल-ढमक्के के साथ इन्हें दूर ले जाकर इनका दाह संस्कार कर दिया जाता है। तोर्मा शब्द का प्रयोग प्यार में गालियों के अर्थ में भी किया जाता है।

त्या : भटकी हुई मृतात्मा की स्थापित प्रतिमा। दे. नेउवा।

थोजोर : दे. पुरक।

धूणी देणा : अनिष्ट निवारण के लिए किया जाने वाला एक कृत्य। यह भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी के आक्रमण से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है। इसके अंतर्गत लाल मिर्चें, गुग्गुल धूप, शुद्ध घी, छोटी इलायची, लौंग, सरसों के दाने, गुड़ और जड़ी-बूटियों को एकत्र करके आग में जलाया जाता है और रोगी को इससे उठने वाले धुएँ के पास बैठाया जाता है। इसे धूणी देणा कहते हैं। लोकविश्वास है कि धूणी की गंध से भूत-प्रेत रोगी को छोड़कर भाग जाते हैं।

नज़र : लाक्षणिक अर्थ में कुदृष्टि। लोकविश्वास के अनुसार सुंदर स्त्री, सलोने बच्चे, बड़े मकान, अधिक दूध देने वाले पशु को यदि नज़र लग जाए तो वह अपना प्रभाव कुछ ही क्षणों में दिखा देती है। घर के बड़े-बूढ़े इससे बचने के अनेक उपाय करते हैं, जैसे बच्चे के माथे में काजल का तिलक लगाना, मकान पर नज़रबट्टू टाँगना आदि।

नजराणा : कुदृष्टि पड़ना। यदि गौ-भैंस दूध न दे, बच्चा दूध पीने में आनाकानी करे या पीने पर उगल दे, दूध अकस्मात् ठोकर लगने से गिर जाए या घबराहट में किसी के आने पर या ध्यान विचलित होने पर हाथ में पकड़ा दूध का कटोरा या गिलास गिर जाए तो बुजुर्गों को एकदम भ्रम हो जाता है कि दूध पर किसी की नज़र पड़ गई है या देवी-देवता की मनौती पूरी नहीं हुई है। इस कोप को शांत करने के लिए 'गुग्गे' के 'चेले' या पुरोहित से उपचार करवाया जाता है।

नल्ली डाली : 'खाधा' के उपचार की एक विधि। इसमें तांत्रिक जिसे 'गारड़ी' भी कहा जाता है, मंत्रों द्वारा कई रोगियों का एक ही स्थान पर सामूहिक उपचार आरंभ करता है। रोगियों को एक पंक्ति में बैठाकर उनके ऊपर कपड़ा ओढ़ा दिया जाता है। तब तांत्रिक दुबातरा बजाते हुए गाना आरम्भ करता है। रोगी ताल और लय को सुनकर विभिन्न नृत्य क्रियाएँ करना आरंभ कर देते हैं। गारड़ी बारी-बारी से उनसे प्रश्न पूछता जाता है और गाता भी जाता है। यह क्रम तीन-चार दिन तक चलता रहता है। अन्त में रोगी उस व्यक्ति का नाम ले लेता है, जिसने उसे खाधा खिलाया होता है और यह भी कि किस क्रम से व कहाँ से खाधे की सामग्री जुटाई गई। ऐसा करने से रोगी का उपचार हुआ मान लिया जाता है।

निरवाह : निवारण। जहाँ कहीं भूतप्रेत आदि का निवारण करना होता है, वहाँ मेढ़े या बकरे की पूजा करके उस बलिपशु को किसी दूर स्थान पर ले जा कर उसे वहीं काटा, पकाया व खाया जाता है। कई स्थानों पर इसे **बाइठा** भी कहा जाता है। दूर से आए किसी देवता को भी इसी तरह निकाला जा सकता है यदि वह किसी को चिमटा हुआ हो। उस चिमटे हुए देवता या भूत-प्रेत को बलिपशु के साथ ही दूर किसी निर्जन स्थान में पहुँचाया जाता है। यह बलि उस व्यक्ति के हित हेतु दी जाती है जिसको पीड़ित करने के लिए वह भूतादि लगा होता है।

नेउवा : असंतुष्ट मृतात्मा। जब कोई व्यक्ति लावारिस मर जाए या कोई व्यक्ति दुर्घटना आदि में अकस्मात् मर जाए अथवा किसी व्यक्ति का विधिवत् संस्कार न किया जाए तो उसकी आत्मा दूसरा शरीर न धारण कर उसी प्रकार सूक्ष्म रूप में विचरण करती रहती है और दूसरों को सताने लगती है, ऐसी आत्मा नेउवा कहलाती है। विशेष रूप से यह आत्मा उस परिवार को, जिसने उसकी संपत्ति प्राप्त की होती है, हर समय दुःख देती है। तब परिवार के लोग प्रायः बीमार रहने लगते हैं और उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट और दुःख होने लगते हैं। घर में अशांति रहती है। इस से बचने के लिए लोग उस व्यक्ति के नाम की चाँदी, ताँबे या अन्य धातु की मूर्ति बनाते हैं और घर के अंदर ऊँचे स्थान पर स्थापित करते हैं। कई बार ऐसी मूर्तियाँ पत्थर की भी बनाई जाती हैं, जिन्हें बावली या चश्मों पर रखते हैं और उनकी समय-समय पर पूजा की जाती है।

पड़जौड़ू : बच्चे पर पड़ी ओपरी छाया। इसके प्रभाव से बच्चा नींद में बार-बार चौंक सा जाता है। ऐसा होने पर पड़जौड़ू का प्रकोप दूर करने के लिए बच्चे को आग के सामने बैठाकर आग में मुट्ठी भर पठाऔ (देवदार और चीड़ का पराग) ज़ोर से फेंकते हैं जिससे आग की लपटें उठती हैं। ये लपटें बच्चे को दिखाई जाती हैं। एक अन्य टोटके के रूप में पानी से भरी परात में कुछ बारीक लकड़ियाँ गोबर में टिकाकर जलाई जाती हैं। ऊपर से खाली घड़ा उलटा कर रखा जाता है। परात का सारा पानी घड़ा आहिस्ता-आहिस्ता सोख लेता है। पानी सोखते समय घड़े से गड़गड़ की ध्वनि आती है। बच्चे के हाथ से घड़े को थपथपाया जाता है। यह सारा कार्यक्रम देखकर बच्चा अचंभित सा होता है और ठीक भी हो जाता है।

पांगदग : एक तांत्रिक अनुष्ठान। दे. मिछब्स।

पाप : दे. नेउवा।

पापड़ा : एक प्रेत। जब किसी बूढ़े व्यक्ति की देखभाल न की जाए या उसकी अपेक्षित सेवा न की जाए, तो मरने पर उसकी आत्मा प्रेत बन कर अपने शरीकों

से बदला लेने के लिए उन्हें तंग करना शुरू कर देती है। तब ऐसे घर में लगातार कोई कष्ट, पीड़ा, दुःख चले रहते हैं। कभी फसलों का नुकसान तो कभी पशुओं या जन-धन की हानि होती है। यह जानने के लिए घर का स्वामी ज्योतिषी को बुलाता है। वह आधी रात के समय परिवार के सभी सदस्यों को बुला कर कार्यवाही करता है। मृत आत्मा का आह्वान करता है। तब किसी सदस्य में मृत आत्मा प्रवेश कर सारा कारण बता देती है। उपचार के रूप में प्रेत आत्मा की मूर्ति बना कर उसकी स्थापना करके समय-समय पर उसकी पूजा की जाती है। उसके नाम पर एक खेत निर्धारित किया जाता है और उसकी उपज प्रेत की पूजा पर खर्च की जाती है।

पाशा : पासा। चौसर के खेल में फेंका जाने वाला वह चौपहला लंबोतरा हड्डी या लकड़ी का बना टुकड़ा जिस पर बिंदियाँ बनी होती हैं। जुए के पासे जैसा हाथीदाँत अथवा काकादि शकुन विचारक पक्षी की हड्डी से बना पाशा पंडितों द्वारा अपने तंत्र ग्रंथ सांचा से प्रश्न फलादेश तथा किसी रुग्ण व्यक्ति के आधिदैविक कष्ट निवारण हेतु जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस पाशे पर 0,00,000,0000 इस क्रम में अंकित बिन्दुओं को 1,2,3,4 के क्रम से क्रमशः दा, दुआ, त्रीक, चौक पढ़ा जाता है। विशेषज्ञ पंडितों का कहना है कि इस प्रकार का पाशा तैयार करने के लिए विशेष मुहूर्त की दिन-महीनों ही नहीं कई बार वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

पितर : पितृदेव। प्रेतत्व से छूटे हुये पूर्वज जिन्हें पिंडा-पानी दिया जाता है। हर वर्ष उनके निमित्त आश्विन मास के कृष्णपक्ष में उस तिथि को जिसमें उनकी मृत्यु हुई होती है, ब्राह्मणों को भोजन करवाया जाता है।

पिशाच : यह देव योनियों में सबसे निम्न श्रेणी मानी जाती है। वेदों में इसका नाम राक्षसों से भी नीचे है। इसलिए दुष्ट और दुराचारी दुरात्माओं में पिशाच सबसे खतरनाक है। मानव समाज में ये सबसे घृणित आत्माएँ हैं। इनके जन्म के बारे में मतैक्य नहीं है। ब्राह्मण और महाभारत के अनुसार समुद्र मंथन में जो द्रव्य सबसे अंत में प्रकट हुआ, उसी से पिशाच पैदा हुए हैं। पुराणों के अनुसार ये कश्यप ऋषि की पत्नी पिशाचा की संतानें हैं।

सामान्य व्यक्ति भूत, प्रेत, राक्षस और पिशाच के बीच स्पष्ट भेद नहीं कर सकता, परंतु देवता का गूर, पावुच, ओझा आदि टाणगिरी (जादू-टोना के विशेषज्ञ) ऐसा भेद स्पष्टतः जानते हैं। इसके अतिरिक्त उपचार की दृष्टि से भी पिशाचों का अन्यों से भेद प्रकट हो जाता है। भूत, प्रेत, राक्षस को भेड़, बकरा, मेमना, मेढ़ा आदि की बलि दी जाती है, परंतु पिशाच के लिए उनकी बलियाँ नहीं दी जातीं।

उसे केवल पनशाकड़ा की बलि दी जाती है। यह कछुवे की जाति का एक छोटा जीव होता है जो कम-गहरे और अधिक गंदले पानी में रहता है। भेड़-बकरी आदि की बलियों का शेष भाग मनुष्य स्वयं खा जाते हैं, परंतु पनशाकड़े को लोग नहीं खाते। उसे जादू-टोने की अन्य सामग्री की तरह गाँव के चौराहे पर फेंक दिया जाता है, जिसे पिशाच स्वयं या कुत्ते, गीदड़ आदि खा जाते हैं।

पुतलौ बणाउणौ : जादू करने का एक तरीका। जिस व्यक्ति पर जादू किया जाना हो उसका पुतला बनाकर तांत्रिक विधि से कहीं पानी के किनारे दबा दिया जाता है ताकि उसे भारी कष्ट हो।

पुरक : किन्नौर में भूत-प्रेत आदि अमानुषी तत्त्वों को रोकने के लिए एक के ऊपर एक पत्थर रखकर तीन पत्थरों का बनाया गया कूट। जहाँ इन पुरकों को बनाया जाता है, मान्यता है कि वहाँ भूत-प्रेत अपना अधिकार नहीं जमा सकते। पुरक बनाने के लिए कुछ क्षेत्रों में ज़मीन पर रखा जाने वाला पहला पत्थर और उसके ऊपर रखे जाने वाले दूसरे पत्थर के बीच में एक कंकड़ को फोड़कर चूर-चूर करने की भी परंपरा है। किन्नौर के स्पीलो, पूह आदि क्षेत्रों में पुरक को **थोजोर** कहते हैं।

प्रेत : वह योनि जिसमें प्राणी मरने के उपरांत सपिंड होने तक रहता है। वे प्राणी जिनका मृत्यु कर्म उचित रूप से न किया गया हो, प्रेतयोनि में जाते हैं। हिंदू धर्म के अनुसार प्रत्येक प्राणी की मृत्यु पर उसके मृत्यु-संस्कारों को उचित रीति से करना चाहिए। शास्त्रोक्त विधि से गति न होने के कारण हैं– अकाल मृत्यु, आत्महत्या, जल में डूबकर तथा लड़ाई-झगड़े में मरना आदि। किसी इच्छा को लेकर मरने वाला प्राणी भी प्रेतयोनि को प्राप्त होता है। इस प्रकार से मिली प्रेतयोनि बहुत भयंकर होती है। लोकविश्वास के अनुसार प्रेतयोनि को प्राप्त प्राणी जीवित प्राणियों को कष्ट देते हैं। जिस समय प्राणी पर भूत-प्रेत का आक्रमण होता है, उस समय उसकी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो जाती है। वह उसी के संकेतों के अनुसार कार्य करता है। इनके आक्रमण से बचने के लिए उनकी पौष, माघ, भादों में देवी-देवताओं की भाँति पूजा की जाती है।

फुरपा : यह एक सिर तथा तीन तीक्ष्ण अंगों वाला तांत्रिक उपकरण है। इसके तीन सिरे नीचे की तरफ झुके होते हैं। यह बौद्ध तांत्रिक देवता वज्र-किलाया का शस्त्र माना जाता है। यह अहंकार को समाप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। बौद्धों का विश्वास है कि मनुष्य की सभी बुराइयों की जड़ अहंकार है अतः इनसे छुटकारा पाए बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। बाधक तत्त्वों के प्रतीक के रूप

में सत्तू की एक मानवाकृति बनाकर वे फुरपा से उसके वक्षस्थल पर प्रहार किया करते हैं। लाहुल में इस परंपरा के साधक अब नगण्य हैं।

फेरू : बलि पशु। जादू-टोने के उपचार में बलि इत्यादि का विशेष महत्त्व है अतः ऐसा उपचार करते समय भेड़ के चितकबरे या काले मेमने की आवश्यकता होती है। उसे तांत्रिक विधान के अनुसार प्रभावित व्यक्ति के सिर के गिर्द पाँच या सात बार उलटा और सीधा घुमाया जाता है। इस मेमने को फेरू कहा जाता है। इसे सुरक्षा-पूर्वक पाला जाता है, बेचा या काटा नहीं जाता।

बला़ : एक प्रकार की भटकती प्रेतात्मा जो पानी के पनिहार या जल प्रवाह के आस-पास भटकती पाई जाती है।

बाइठा : दे. निरवाह।

बाईलूणू : एक विशेष प्रकार की पूजा। यदि किसी कारणवश मृतक की आत्मा को मुक्ति नहीं मिलती और वह प्रेतयोनि में भटकती रहती है तो उसकी शांति के लिए किसी तांत्रिक से विशेष पूजा करवा कर शवयात्रा के मार्ग पर बकरी की बलि दी जाती है।

बाणमुठ : मंडी ज़िला के करसोग क्षेत्र का एक भूत। इसके मानने वाले लोग इसे अपने शत्रुओं को कष्ट देने के लिए प्रायः काम में लाते हैं। ओझा मंत्र द्वारा इसे उकसा कर शत्रु के घर भेजता है। यह कई तरह से तंग करता है और शत्रु मर भी सकता है। इससे रक्षा के लिए अनेक मंत्र हैं जिनमें से निम्नलिखित शाबर मंत्र बहुत लाभदायक है—

हनुमान पहलवान बारह बरस का जवान
मुख में बीड़ा हाथ में कमान
लोहे का द्वार वज्र का कीला
जहाँ बैठे हनुमान हठीला
बाल राखो सीस राखो
आगे जो गणी राखो
जो कोई छल करे
तिनकी बुद्धि-मति बाँधो
दोहाई हनुमान वीर की
शब्द साँचा, पिण्ड काँचा

बीश देणा : हिमाचल प्रदेश के ज़िला शिमला के ऊपरी भाग में बीश देना एक

अद्भुत परंपरा है। सामान्यतः बीश देने का अर्थ है किसी व्यक्ति पर मंत्र शक्ति का प्रयोग करना। जिस व्यक्ति पर इसका प्रयोग किया जाता है, अकसर उसकी मृत्यु हो जाती है। बीश के बारे में लोकविश्वास है कि बीश बनाने के लिए मेंढक, छिपकली, साँप, बिच्छू का रक्त मिट्टी के एक घड़े में किसी आभूषण के साथ घर की दीवार में रख दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् यह मंत्रशक्ति के रूप में परिवर्तित होकर प्रभाव में आता है तो घर की महिला का हाथ रोटी बनाते समय तवे से चिपक जाता है या उसे चूल्हे पर साँप की आकृति नज़र आती है। कहते हैं कि तवे से चिपका हाथ तभी छूटता है जब वह उस शक्ति को बलि देने का वादा करती है। बलि भी उसी व्यक्ति की दी जानी होती है जो किए गए वादे के बाद सबसे पहले उस स्त्री के सम्मुख आता है। बीश के रूप में केवल रोटी ही नहीं अपितु कोई भी खाद्य वस्तु, यहाँ तक कि पानी का गिलास भी हो सकता है। उस वस्तु को खाने के पश्चात् कुछ देर में ही व्यक्ति के पेट में अफारा और दर्द होना शुरू हो जाता है जिसका कोई डाक्टरी इलाज भी नहीं होता और व्यक्ति धीरे-धीरे कमज़ोर होने लगता है। बीश का उपचार जानने वाले देवता या विशेषज्ञ के पास जाकर समय पर यदि उसका इलाज न करवाया जाए तो उस की मृत्यु हो सकती है। बीश देने के पीछे मान्यता यह है कि जिस घर में बीश हो उसमें अचानक समृद्धि आ जाती है।

बुक : यह धातु का बना कटोरानुमा वाद्ययंत्र है। बौद्ध तांत्रिक पूजा का यह अभिन्न वाद्य है। इसका प्रयोग प्रायः सभी तांत्रिक पूजा में होता है। तांत्रिक नृत्यायोजन में भी इसका प्रयोग अधिकाधिक होता है। देवताओं के आह्वान तथा विघ्नों के नाश के लिए इसका प्रयोग होता है।

बेखुन : दे. भेखल़।

बेड़ावल़े : दे. जलधीर।

भांतर : जादू टोना। भांतर करने के लिए एक अनूठा ढंग अपनाया जाता है। किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा होने पर स्त्रियाँ प्रायः धूप जलाकर बाबा भोगत का ध्यान करती हैं और फिर सिल्ल (सूखी काँटेदार झाड़ी विशेष) हाथ में लेकर शत्रु का नाम लेते हुए बाबा से प्रार्थना करती हैं कि वह उसे खा जाए। इस प्रकार भांतर हो जाती है और बाबा बीमारी के रूप में उसे खाना शुरू कर देता है। यदि भांतर का उपचार शीघ्र न किया जाए तो व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। उपचार के लिए दोनों पक्षों का समझौता होने पर 'खेलपात्तर' डाला जाता है। इसमें 'गारड़ी' गुरबाणी गा-गाकर सुनाता है और भांतर से पीड़ित व्यक्ति 'बैसक' पर खेलता है। दोनों ओर से मनौतियाँ मनवाई जाती हैं, फिर सभी को इकट्ठे बिठाकर प्रसाद

खिलाया जाता है। घर पर भांतर मनवाने के बाद भोगत के मुख्य थड़े पर जाकर भेंट चढ़ानी पड़ती है।

भिरठी : अघोरी साधु। कहा जाता है कि वह अपने सिर का हिस्सा चीते या शेर का बनाकर वीरान या एकांत स्थान में बच्चों या बड़ों को पकड़कर खा जाता है। तत्पश्चात् वह ढाई पलटे खाकर फिर साधु के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

भुगति छङ्जिमि राग : लाहुल क्षेत्र में भूत भगाने का एक राग। यह तब बजाया जाता है जब गूर या भट किसी अनुष्ठान के बाद भूत-प्रेत, राक्षस-पिशाच आदि के लिए बलि स्वरूप काठू के आटे का बना पिंड बाहर फेंकने जाता है। जब तक वह लौट कर नहीं आता, यह राग बजता रहता है।

भूत : भूत-प्रेत। एक मत के अनुसार जब कोई व्यक्ति कुँवारा मर जाता है तो वह भूत बनता है। एक दूसरे विश्वास के अनुसार जो व्यक्ति बिस्तर पर ही मर जाए और प्राण निकलने से पहले बिस्तर से नीचे न उतारा गया हो तो वह भूत बन जाता है। यह सुनसान जगहों, गहरी खड्डों व अंधेरे स्थानों में रहता है और रात के समय गाँवों में आता है। बच्चों को इसका नाम ले कर डराया और धमकाया जाता है। उसके बड़े-बड़े दाँत, लंबी-लंबी टाँगें और लंबे हाथ होते हैं। उसके पाँव में पंजे नहीं होते। उसके शरीर की छाया भूमि पर नहीं पड़ती। वह पल-पल में कुत्ता, भैंसा, साँड़ तथा इसी प्रकार के अन्य जंतुओं का रूप धारण करता है। रंग काला होता है। रात में चलने वालों को डराता है और उन्हें पीछे से नाम लेकर पुकारता है। जो उसकी आवाज़ का उत्तर देता है वह घर पहुँचने तक बेहोश हो जाता है। उसे प्रसन्न या संतुष्ट करने के लिए तुष-भौसा रा पिंदला (धान के ऊपर के छिलके और भस्म का गूँथा हुआ पिंड) मंत्रित करके दिया जाता है। विष्णु पुराण के अनुसार भूत क्रूर और भयंकर आत्माएँ होती हैं और वे मांस खाती हैं। इन्हें प्रजापति ने किसी समय तब उत्पन्न किया जब वह किसी कारण क्रुद्धावस्था में था। वायु पुराण के अनुसार भूत दक्षराज की पुत्री और कश्यप ऋषि की पत्नी क्रोध की संतानें हैं। ये शिव के अंगरक्षक हैं। इसीलिए शिव को भूतनाथ भी कहा गया है।

भिन्न क्षेत्रों में इनके बारे में भिन्न विश्वास प्रचलित हैं। मंडी ज़िला के सरकाघाट क्षेत्र में बकर खड्ड और खड़तासली नाला भूतों के आकर्षक स्थान हैं। वहाँ अनेकों भूत रहते हैं। आधी रात को वे खड्डों के किनारों पर इकट्ठे होकर अपना भोजन तैयार करते हैं। भोजन पकाने के लिए वे मानव के सिर की खोपड़ी को पतीले के रूप में प्रयुक्त करते हैं। लोग रात को इन खड्डों से नहीं गुज़रते।

भूतनी : भूत योनि प्राप्त स्त्री। लोक विश्वास के अनुसार यह मृत स्त्री की सताई

हुई आत्मा होती है। यह भूत से भी अधिक भयानक होती है। इसकी लंबी जीभ होती है जिससे यह दूर से ही अपने आहत-व्यक्ति को अपने मुँह में खींच लेती है। इसके पैर पीछे की ओर मुड़े होते हैं। जब यह किसी व्यक्ति का पीछा करती है तो पीछे से पत्थर मारती है, परंतु पत्थर व्यक्ति को नहीं लगते, इधर-उधर पड़ते हैं। कई बार यह व्यक्ति का नाम ले कर उसे रुकने को कहती है। ऐसे समय पर न पीछे मुड़कर देखा जाता है और न उसकी आवाज़ का जवाब दिया जाता है। भूतनी के लंबे-लंबे सफ़ेद बाल होते हैं जिन्हें वह शरीर पर बिखेर कर रखती है। यह प्रायः नंगी रहती है। यदि कोई चेला तथा डाऊ इसे प्रसन्न करके अपने वश में कर ले तो यह उसे लौकिक तथा पारलौकिक जानकारियाँ देती है।

भूत भजणा : भूत का गिरना। लोकविश्वास है कि कहीं अकेले व्यक्ति को एकांत में भूत मिल जाए तो वह यदि उससे न डरे और वहीं रुक जाए तो उसे डराने के लिए भूत अपना क़द बढ़ाता जाता है और अंत में बहुत लंबा होकर गिर पड़ता है। उसके गिरने पर बंदूक के चलने जैसी ध्वनि उत्पन्न होती है जिसे भूत भजणा कहा जाता है।

भेखल़ : एक झाड़ी विशेष। इसके पत्ते लंबोतरे होते हैं। जगह-जगह पर एकल काँटा होता है जो सामान्य काँटों से लंबा और तीखा होता है। यह सदाबहार झाड़ी है और सर्वदा हरी रहती है। इसकी शाखाएँ बीच से खोखली होती हैं। हर प्रकार की बाधाओं और कष्टों को हटाने और तांत्रिक उपचार में इसका बहुत प्रयोग होता है। लोग इसे अपने घरों के दरवाज़ों पर लगाना शुभ मानते हैं और ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसके कारण न तो दुरात्माएँ हानि पहुँचा सकती हैं और न ही किसी की कुदृष्टि का भय रहता है। इसे चंबा क्षेत्र में **करंगोर** तथा रामपुर क्षेत्र में **बेखुन** कहते हैं।

मड़छल़ : मृतक द्वारा किया जाने वाला छल। यदि किसी व्यक्ति को इस बात का पता न हो कि अमुक व्यक्ति की मृत्यु हो गई है और घर पर उसका शव पड़ा हो तो मृतक जीवित व्यक्ति की तरह उस आदमी के साथ बातें करता, हँसता हुआ चलता है और मौका मिलते ही मार भी सकता है।

मशाण : यह श्मशान का पहरेदार भूत होता है। श्मशान भूमि के पास से निकलने अथवा वहाँ दूध की वस्तु खाकर जाने वाले व्यक्ति पर यह हमला करता है। कई बार यह मानव रूप धारण करता है, परंतु बड़ा काला, बदसूरत और भयानक दिखाई देता है। यह श्मशान भूमि की रक्षा करता है परंतु यदि शव श्मशान में बड़ी देर तक न आए तो यह भूख मिटाने के लिए दूर भी निकल पड़ता है। तब यह असुरक्षित किसी भी व्यक्ति को खा जाता है। ऐसा विश्वास है कुछ ऐसी

डाइनें हैं जो किसी मशाण को अपना दास बना लेती हैं और जब चाहें दूसरों पर, विशेषतया बच्चों पर छोड़ देती हैं। बच्चा रोने-चिल्लाने लगता है और बीमार हो जाता है। उपचार के रूप में बच्चे को किसी वृक्ष की जड़ों के बीच से गुज़ारते हैं और फिर वहीं पर तीन बावड़ियों या चश्मों से लाए पानी से नहलाते हैं तो बच्चा स्वस्थ हो जाता है। मंडी ज़िला के पांगणा आदि क्षेत्रों में मशाण के पत्थर के बने छोटे-छोटे देहरे हैं, जहाँ लोग बुरे काम करने के लिए उसकी पूजा भी करते हैं। वह अपने भक्तों के लिए उनके शत्रुओं को हानि पहुँचाता है। ऐसा होने पर ओझे द्वारा इलाज करके उन्हें कष्टमुक्त कर दिया जाता है।

मशाणिया : मशाण जगाने वाला व दिवंगत आत्माओं को बुलाने वाला। मशाणिए द्वारा तंत्र की अघोर सिद्धि की गई होती है। इस सिद्धि के अंतर्गत साधक श्मशान में बैठकर शव की साधना करता है। इसे नीच सिद्धि माना जाता है। यदि कोई गर्भवती स्त्री मंगलवार को दिवंगत हुई हो और उसी दिन उसका दाह संस्कार हुआ हो तो ऐसी स्त्री की बाईं टाँग की नलिका का प्रयोग तंत्र द्वारा किए जाने वाले उपचार के लिये विशेष उपयोगी होता है।

माणी : अन्न मापक काष्ठ पात्र जिसे जादू-टोने के उपचार के लिए प्रयोग में लाया जाता है। दे. खोरी छडणा।

मानशारी : एक कुख्यात पिशाच। यह प्रायः श्मशान में रहता है। इसके डर से लोग भरी-दोपहर में श्मशान के पास से नहीं गुज़रते। वह उनके साथ घर तक आ जाता है। उसकी चपेट में आया व्यक्ति घर आने पर बेहोश हो जाता है। उसे तेज़ बुखार आता है। बेहोशी मे उलटा-सीधा बोलता है। ओझा इसके उपचार में सफेद सरसों का उपयोग करता है। ऐसी सरसों को अभिमंत्रित करके उसका धुआँ रोगी को दिया जाता है। अमावस और पूर्णिमा को इसका प्रभाव अधिक पड़ता है।

मिछब्स : रोगी के स्थान पर किसी पशु या मानव के पुतले को उसका प्रतिनिधि बनाकर यमराज अथवा देवदूतों को धोखा देना। यह दो प्रकार का होता है। हिंदू लोग किसी गूर को बुलाते हैं। वह सत्तू की एक मानवाकृति बनाता है और उसे काले कपड़े पहनाता है। एक भेड़ लाई जाती है। हवन कुंड में अन्न, तेल और छङ् (शराब) से हवन किया जाता है। भेड़ को मंत्र-बल से जड़ कर दिया जाता है तथा सत्तू की बनाई मानवाकृति को हवन कुंड में आधा जलाकर एक काले वस्त्र में लपेटकर उस भेड़ की पीठ पर बाँध दिया जाता है। उसे एक कंबल से ढक कर उसकी अरथी बनाई जाती है। घर के लोग रोने-पीटने का अभिनय करते हुए उसे श्मशान में ले जाते हैं। गूर भी साथ जाता है। वहाँ जाकर उसे चिता

में रखकर उसमें आग लगा दी जाती है। सम्मोहित की हुई भेड़ चुपचाप पड़ी-पड़ी जल जाती है। साथ गए हुए लोग ज़ोर-ज़ोर से उस रोगी का नाम लेकर चिल्लाते हैं— फलाँ व्यक्ति ठीक नौ वर्ष पूर्व मर गया था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इससे मृत्यु का देवता धोखे में आकर रोगी के प्राणों को छोड़ देता है। यह प्रथा विशेषकर पट्टन के लोगों में पाई जाती है।

लामाओं द्वारा कराए गए मिछव्स का रूप कुछ भिन्न होता है क्योंकि ये लोग बलि नहीं दे सकते। इसलिए ये दो लकड़ियाँ लेकर उन्हें क्रॉस के रूप में आड़ी-तिरछी बाँध कर उस पर सत्तू से आदमी का पुतला बनाते हैं। उसे सफेद कपड़े पहनाते हैं और यदि पुतला किसी स्त्री के निमित्त हो तो उसे आभूषण भी पहनाए जाते हैं। इसके बाद विशेष पूजा करके उसे रात के समय लामा-वाद्यों के साथ रोते-पीटते हुए शवयात्रा के रूप में ले जाते हैं और गाँव से बाहर किसी तिराहे में ले जाकर उसका दाह-संस्कार करते हैं। उसके वस्त्र उतार कर लुहारों को दे देते हैं। उसे जलाते समय एक व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहता है कि फलाँ व्यक्ति नौ वर्ष पूर्व मर गया था। इसके उपरांत सभी लोग यह धारणा लेकर घर लौट आते हैं कि रोगी की मृत्यु टल गई और वह शीघ्र स्वस्थ हो जाएगा।

मीखा : भूत-प्रेत के प्रभाव को दूर करने के लिए किसी व्यक्ति को दिये गए भूत के रूप को मीखा कहते हैं। किन्नौर क्षेत्र में भूत-प्रेत, जादू-टोने, कुदृष्टि से प्रभावित व्यक्ति का तीन-चार लामा संयुक्त रूप से उपचार करते हैं। इनमें से एक लामा को भूत की भाँति भयंकर रूप दिया जाता है और अन्य लामा तांत्रिक पूजा करते हैं। पूजा के उपरांत ये पूजन सामग्री को तिराहे पर छोड़ आते हैं, जिससे विश्वास किया जाता है कि पीड़ित व्यक्ति आधिदैविक बाधा से मुक्त हो गया है।

मुड्ढ : जादू-टोने से किसी की जान लेने की क्रिया। जब कभी किसी शत्रु अथवा विरोधी से बदला लेना हो तो प्रायः लोग उस पर मुड्ढ चला देते हैं। इसका विधान बड़ा जटिल तथा परिश्रम साध्य है। शुभ मुहूर्त, दिन, वार तथा जिस व्यक्ति पर मुड्ढ चलाई जानी हो, उसकी राशि के अनुसार विभिन्न वस्तुएँ तथा कई प्रकार के जीव-जंतुओं का मांस एकत्र करना पड़ता है। तांत्रिक इस सामग्री से अपने इष्ट को प्रसन्न करके काँसे की थाली में तीक्ष्ण धार वाला चाकू रखकर मंत्रशक्ति द्वारा उस व्यक्ति पर छोड़ देता है। मुड्ढ से प्रभावित व्यक्ति के हृदय में असह्य वेदना होती है और वह तड़प-तड़प कर कुछ ही क्षणों में अपने प्राण त्याग देता है। दूसरी ओर थाली कलेजा लिए तांत्रिक के सम्मुख आ जाती है, जिससे जादू की सफलता का विश्वास हो जाता है। यदि किसी कारणवश मुड्ढ उस व्यक्ति

पर अपना प्रभाव न डाल सके, जिसके लिए वह छोड़ी गई हो तो वापस आ कर भेजने वाले पर ही अपना प्रहार कर देती है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है।

मोह : दबाव। कभी-कभी व्यक्ति को नींद में लगता है कि कोई उसकी छाती पर बैठा है और गला घोंट रहा है। ऐसे में वह सहायता के लिए चिल्लाने की कोशिश करता है लेकिन उसके मुँह से स्पष्ट आवाज़ नहीं निकलती और हूँ-हूँ की ध्वनि आती है। जब तक उसे नींद से जगाया न जाए, वह दबी हुई आवाज़ निकालता रहता है। लोकविश्वास है कि मृतात्मा कभी-कभी इस प्रकार का दबाव डालती है। सोने से पहले हनुमान-चालीसा पढ़ना,सिरहाने के पास जल से भरा लोटा रखना, तावीज़ बनवाना तथा तकिये के नीचे चाकू रखकर सोना इसके उपाय हैं।

राखस : राक्षस। ये भूत-प्रेत के साथी हैं। किसी स्थान विशेष पर नहीं ठहरते, हर जगह घूमते हैं। बहुरूपिये होते हैं। कभी रस्सी का गोला बनते हैं और अंधेरे में पथिक की टाँगें बाँध देते हैं। कभी मार्ग के आर-पार टाँगें फैलाकर खड़े होते हैं, जो बीच से गुज़रने का यत्न करता है उसे दबोच लेते हैं। कभी किलटा लेकर मुसाफिर बनते हैं और लोगों को किलटे के अंदर डालकर ले जाते हैं। यदि खाना खाते हुए रोशनी बुझ जाए तो थाली में भोजन को दोनों हाथों से ढक देना चाहिए अन्यथा विश्वास किया जाता है कि वहाँ पहुँच कर राखस खाना आरंभ कर देते हैं। यदि कोई साहस करे तो वह राखस को पकड़ सकता है। ऐसे उदाहरण बताए जाते हैं कि किसी ने राखस को पकड़ा और उसे नौकर बनाकर उससे खूब काम लिया। परंतु एक त्योहार में घर की स्त्री ने तुष-भस्म के बजाए राखस को भोजन के लिए ऊखल में रोटी और बड़े रखे, जिन्हें देखकर वह भाग गया।

रोलांग : बेताल। रोलांग का शाब्दिक अर्थ है शव का उठना। लोकविश्वास है कि मृतात्मा की कुछ इच्छाएँ अतृप्त रहने पर उसकी आत्मा फिर से शव में प्रवेश कर जाती है और शव उठ कर चलना आरंभ कर देता है। यह झुक नहीं सकता अतः सीधा ही चलता है। रोलांग का उठकर चलना सभी के लिए अशुभ होता है। इसलिए अगर कोई शाम को या रात को मर जाए तो रात को शव की रखवाली के लिए ग्राम के हर घर से एक-एक पुरुष मृतक के घर आता है। ऐसी मान्यता है कि धर्म ग्रंथ और सरसों के दानों से रोलांग के ऊपर आसानी से विजय पाई जा सकती है।

लग ङा : यह लकड़ी का बना ढोलक के आकार का वाद्य होता है। इसके दोनों सिरे चमड़े से मढ़े होते हैं। यह ढोलक से आकार में छोटा होता है। इसे बायें हाथ में रखकर दायें हाथ से एक लकड़ी की छड़ी से बजाया जाता है। यह प्रायः तांत्रिक

पूजा में प्रयोग होता है। भिन्न-भिन्न तरह से चोट करने पर इसकी आवाज़ भिन्न-भिन्न होती है। आमतौर से इसकी आवाज़ तीव्र होती है।

लबुर तेते : लाहुल में बिलिङ् नाले के ऊपर चट्टान पर रहने वाली एक प्रेतात्मा। यह प्रेत जिनको मिला है उनका कहना है कि यह एक बूढ़ा गद्दी है जिसके साथ लाल रंग का एक बहुत बड़ा गद्दी कुत्ता होता है। इस क्षेत्र में जो भी कार्य किया जाता है, उसे पहले लबुर तेते खेन (सर्वज्ञ लबुर दादा के लिए) कहकर उसे अर्पित किया जाता है। यदि कोई भोजन भी करेगा तो वह सर्वप्रथम लबुर तेते खेन कहकर एक ग्रास उसे अर्पित करके तब भोजन करता है।

शिङ डाये : मृतक की आत्मा जो अपने सगे-संबंधियों को बाधा पहुँचाती है। इसे प्रेत माना जाता है। शिङ डाये प्रायः उस व्यक्ति को तंग करता है, जिसके साथ उसकी अत्यधिक घनिष्टता रही हो और मरते समय उसने उसी को याद किया हो। इसका दोष दूर करने के लिए विशेष सामग्री से उसकी पूजा की जाती है। सामग्री में सत्तू की नमकीन वाड़ी (उबलते पानी में आटे को घोल कर तैयार किया पकवान) होती है जिसे गर्म-गर्म ही थाली में डालकर उसके बीच में गड्ढा बनाकर उसमें मक्खन डाला जाता है। एक लोटे में शुद्ध जल और एक पात्र में जलते अँगारे होते हैं। पात्र सहित वाड़ी को उठाकर पीड़ित व्यक्ति के ऊपर तीन-चार बार घुमाते हुए मुख से शिङ डाये को पीड़ित व्यक्ति को छोड़कर जाने के लिए कहा जाता है। इसके बाद वाड़ी, जल और अँगारों के पात्र को गाँव में या गाँव से बाहर ऐसे स्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ से उस क्षेत्र में बहने वाली खड्ड का पानी दिखता हो। खड्ड की तरफ मुँह करके वाड़ी के बीच पिघले मक्खन में थोड़ा-थोड़ा वाड़ी का टुकड़ा डुबो-डुबो कर उसे जलते अँगारे पर डालते हुए मुख से अशिष्ट भाषा में शिङ डाये को पीड़ित व्यक्ति को छोड़ने के लिए कहा जाता है। फिर उसे जल अर्पित किया जाता है और इसके बाद माना जाता है कि पीड़ित व्यक्ति को शिङ डाये से मुक्ति मिल गई है।

शब्द संकलन

अश्विनी कुमार गर्ग (ऊना); डॉ. गौतम शर्मा व्यथित, रमेशचंद्र मस्ताना, हरिकृष्ण मुरारी (कांगड़ा); विद्या सागर नेगी, डॉ. डी.डी. शर्मा (किन्नौर); एम.आर.ठाकुर, सूरत ठाकुर, दीपक शर्मा (कुल्लू); अमर सिंह रणपतिया (चंबा); रामलाल पाठक (बिलासपुर); केशव चंद्र, कृष्ण चंद्र महादेविया (मंडी); तोबदन, सतीश कुमार लोप्पा (लाहुल स्पीति); रवीन्द्र चौहान, भूपसिंह रंजन (शिमला); डॉ. अमर देव आंगिरस (सोलन); डॉ. ओम प्रकाश राही, विद्यानंद सरैक (सिरमौर); रत्नचंद्र रत्नाकर (हमीरपुर)।

संदर्भिका

• सांस्कृतिक प्रतीक कोश : शोभनाथ पाठक– प्रभात प्रकाशन दिल्ली 4/11 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

• दिल्ली प्रदेश की लोक सांस्कृतिक शब्दावली : डॉ. धर्मवीर शर्मा– राजेश प्रकाशन, जी-62, गली नं.5, अर्जुन नगर, दिल्ली-110051

• हिमाचल प्रदेश, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. पद्म चंद्र काश्यप– हिमाचल पुस्तक भंडार, जगत निवास, निकट महावीर चौक, गांधीनगर, दिल्ली-110031

• हिमाचल लोक संस्कृति के स्रोत : डॉ. वंशीराम शर्मा– आर्य प्रकाशन मंडल, महावीर चौक, गांधी नगर, दिल्ली-110031

• किन्नर लोक साहित्य : डॉ. बंशी राम शर्मा– ललित प्रकाशन, लैहड़ी सरेल, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश

• सतलुज घाटी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : शास्त्री लोकनाथ मिश्र– आजाद हिंद स्टोर्ज़ (प्राइवेट) लिमिटेड, ए.सी.ओ. 34, सैक्टर 17 ई, चण्डीगढ़

• हिमाचल की देव भार्थाएं : डॉ. सूरत ठाकुर– अक्षर धाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल-136027 (हरियाणा)

• हिमाचल दर्पण, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन : हरविन्द्र सिंह चोपड़ा– शिवहरि प्रकाशन, ए-136, गली नं. 3, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-110094

• कांगड़ा इतिहास संस्कृति एवं विकास : डॉ. गौतम व्यथित– जयश्री प्रकाशन, 4/115, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32

• हिमाचल प्रदेश इतिहास संस्कृति व प्रशासन : नेम चन्द अजनबी– एच. जी. पब्लिकेशन्स, 77, मदनगिर गांव, नई दिल्ली-110062

• हिमाचल प्रदेश का इतिहास, संस्कृति और अर्थिक परिवेश : मीयां गोवर्धन सिंह, प्रो. चमनलाल गुप्त– मिनर्वा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, शिमला

• पब्बर इतिहास एवं संस्कृति : जया चौहान– सुरेन्द्र कुमार एण्ड सन्ज़ 30/21 ए-22ए, गली नं. 9, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110032

• हिमाचल की जनजाति गद्दी देव परंपरा और संस्कृति : डॉ. गौतम शर्मा व्यथित– साहित्य रत्न 30/35, गली नं. 8-1/2, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032

• पहाड़ी संस्कृति मंजूषा : एम.आर. ठाकुर– रिलायेन्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

हिमाचल की लोक कलाएं और आस्थाएं : मौलू राम ठाकुर– निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

• कुल्लू दशहरा और देव परम्पराएँ : मौलू राम ठाकुर– देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम (रजि.), देवप्रस्थ भवन, ढालपुर, कुल्लू

• हिमाचल के पूजित देवी-देवता : मौलू राम ठाकुर– ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति, नई दिल्ली-2

• Myths, Rituals and Beliefs in Himachal Pradesh : M.R. Thakur- Indus Publishing Company, FS-5, Tagore Garden, New Delhi

• हिमाचल की देव संस्कृति : डॉ. सूरत ठाकुर– एच.जी.पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-110062

• हिमाचल के लोकवाद्य : डॉ. सूरत ठाकुर– अभिषेक पब्लिकेशन्ज़, एस.सी.ओ. 157-159, सैक्टर-17, चण्डीगढ़

• देवता की उत्पत्ति एवं लोक-विश्वास : अमर देव आंगिरस –दयावन्ती आंगिरस, अंगिरा शिक्षण संस्थान, देव फलोद्यान, दाड़लाघाट, सोलन-171102

• हिमाचल प्रदेश में गुग्गा परम्परा : सचिव, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला 171001

• गद्दी जनजातीय लोकसंस्कृति एवं कलाएं : अमर सिंह रणपतिया– सचिव हिमाचल कला संस्कृति भापा अकादमी, शिमला 171001

पत्रिकाएं

सोमसी, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला-171001

हिमप्रस्थ, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश-171005